हिन्दी

शीराज़ा

(कांफ्रेंस विशेषांक)

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लेंग्वेजिज

जम्मू

ISSN : 2279-0330

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

अक्तूबर–नवम्बर, 2016

कांफ्रैंस अंक

प्रमुख संपादक

अज़ीज़ हाजनी

संपादक

अज़रा चौधरी
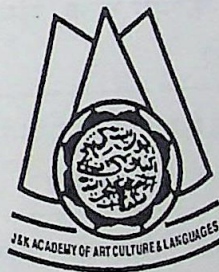
जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 October-November, 2016

वर्ष : 52 अंक : 4 पूर्णांक : 235
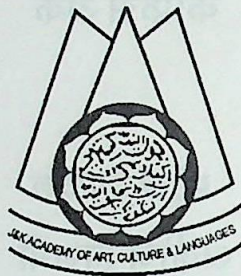
★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर दूरभाष -94191-49293, 94176-74910

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी को अस्तित्व में आए लगभग साठ साल होने को हैं, तभी से अकैडमी अपना दायित्व एवं कर्तव्य पालन बड़ी निष्ठापूर्वक निभा रही है। अकैडमी के संविधान में जिन सिद्धांतों को पारित किया गया, उनका सतत निर्वहन करती आ रही है। अकैडमी के बैनर तले राज्य की विभिन्न भाषाओं हिन्दी, डोगरी, पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी, पहाड़ी, गोजरी, लद्दाखी तथा अंग्रेज़ी आदि में 'शीराज़ा' शीर्षक के अंतर्गत पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इसके अतिरिक्त 'हमारा साहित्य' शीर्षक के अंतर्गत एक अन्य वार्षिक प्रकाशन किया जाता है जो राज्य संबंधी संस्कृति एवं गतिविधियों पर आधारित होता है। अकैडमी ने देश की महान विभूतियों, वरिष्ठ हस्ताक्षरों, लोक साहित्य एवं संस्कृति की विशिष्टताओं पर आधारित शीराज़ा के अनेक विशेष अंक प्रकाशित किए हैं जो हिन्दी साहित्य जगत को जम्मू-कश्मीर की अनुपम देन हैं।

अकैडमी मात्र प्रकाशन कार्य ही नहीं करती बल्कि भाषाओं के उत्थान के लिए गोष्ठियां, सेमीनार, सम्मेलन, निबंध लेखन प्रतियोगिता तथा अनेक प्रकार के उत्सवों का आयोजन भी करती रहती है। इसके साथ ही कला, संस्कृति एवं भाषा के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान करने वाले साहित्यकारों एवं कलाकारों को सम्मानित करना भी नहीं भूलती। इस उत्कृष्ट कार्य के लिए अकैडमी ने प्रसार भारती रेडियो कश्मीर जम्मू के सहयोग से एक अनूठा सिलसिलेवार कार्यक्रम आरंभ किया है जिसे हर माह की चार तारीख को 'झरोखा' शीर्षक के अंतर्गत आयोजित किया जाता है। जिसमें जम्मू-कश्मीर राज्य की किसी न किसी महान विभूति को सम्मानित किया जाता है। जिससे साहित्य एवं कला को समर्पित लोग अपना मूल्यांकन होने पर गौरवान्वित अनुभव करते हैं। उपरोक्त कार्यक्रम राज्य भर में लोकप्रिय एवं बहुचर्चित हुआ है।

'साढ़े परौह्ने' अर्थात् हमारे अतिथि कार्यक्रम अकैडमी की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जिसके अंतर्गत अतिथि साहित्यकारों एवं कलाकारों की कला पर आधारित कार्यक्रम आयोजित किया जाता है तदुपरांत उन्हें सम्मानित भी किया जाता है।

नव लेखकों को अकैडमी द्वारा मंच प्रदान करना, उनकी रचनाओं को प्रकाशित कर उन्हें लेखन के लिए प्रोत्साहित करना भी अकैडमी का एक प्रमुख ध्येय है। यही कारण है कि हमारा राज्य जो विभिन्न भाषा-भाषियों का प्रदेश है में प्रत्येक भाषा फल-फूल रही है। भाषाओं के उत्थान के लिए अकैडमी एक सराहनीय एवं विशिष्ट भूमिका निभा रही है।

विभिन्न भाषाओं के साहित्य के मूल्यांकन हेतू अकैडमी संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों का आयोजन करती रहती है। अभी 27-28 मई 2016 को अकैडमी ने 'वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य' विषय पर दो दिवसीय 'अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन' का भव्य आयोजन किया, जिसमें विभिन्न राज्यों से आए साहित्यकारों ने भाग लिया तथा अपने साहित्यिक योगदान के साथ-साथ बहुमूल्य सुझावों से अवगत कराया। समय-समय पर अकैडमी ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन इसी मंशा हेतू करती रहती है ताकि अपनी कार्यप्रणाली में उत्तरोत्तर सुधार करती रहे।

दो दिवसीय हिन्दी लेखक सम्मेलन संबंधी गतिविधियों को शीराज़ा का प्रस्तुत विशेषांक स्वयं व्याखित करेगा। सम्मेलन की समग्र कार्यवाही को भीतर समेटे शीराज़ा का प्रस्तुत अंक आपके हाथों में सौंपते हुए अकैडमी गौरव अनुभव कर रही है। विकास पथ पर अग्रसर आप के सुझावों की प्रतीक्षा में।

अज़रा चौधरी
मुख्य संपादक

दो दिवसीय अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन

इस अंक में

वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य

प्रथम दिवस 27 मई, 2016

उद्घाटन समारोह

अध्यक्षता : प्रो० वेद कुमारी घई

मुख्य अतिथि : डॉ० पवन कोतवाल, आई.ए.एस.
(मंडल आयुक्त, जम्मू)

बीज व्याख्यान : डॉ० नरेन्द्र मोहन

स्वागत भाषण : डॉ० अज़ीज़ हाजनी (सचिव)

धन्यवाद प्रस्ताव : डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'
(अतिरिक्त सचिव)

मंच संचालन : अज़रा चौधरी

सत्र की रिपोर्टिंग : यशपाल निर्मल

उद्घाटन सत्र
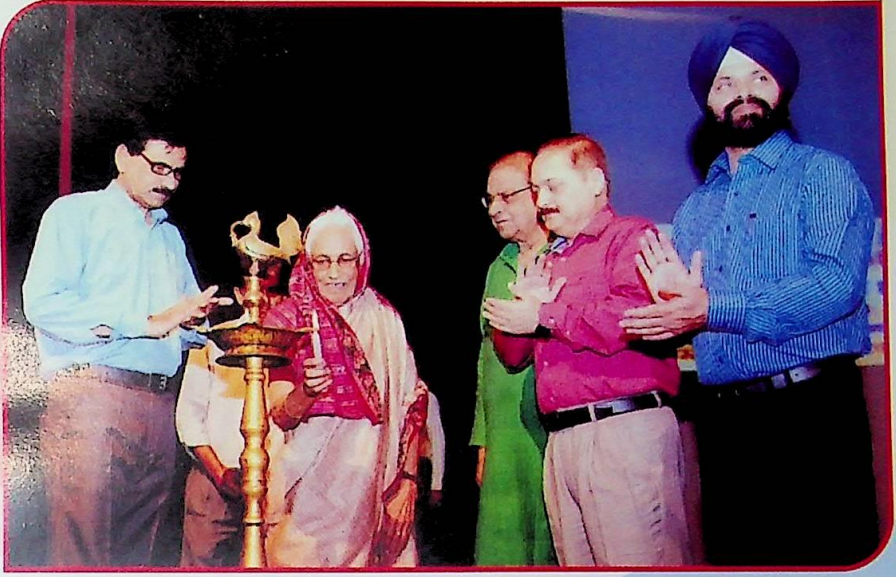
दीप प्रज्वलित करते हुए प्रो० वेद कुमारी घई

दीप प्रज्वलित करते हुए डॉ० पवन कोतवाल (मंडलायुक्त जम्मू)

उद्घाटन सत्र

अध्यक्ष प्रो० वेद कुमारी घई को पुष्प भेंट करते हुए अकैडमी के सचिव डॉ० अज़ीज़ हाजनी

मुख्यातिथि डॉ० पवन कोतवाल (मंडलायुक्त जम्मू) को पुष्प भेंट करते हुए अतिरिक्त सचिव डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'

उद्घाटन सत्र

डॉ० नरेन्द्र मोहन को पुष्प भेंट करती हुई हिन्दी शीराज़ा की संपादिका अज़रा चौधरी
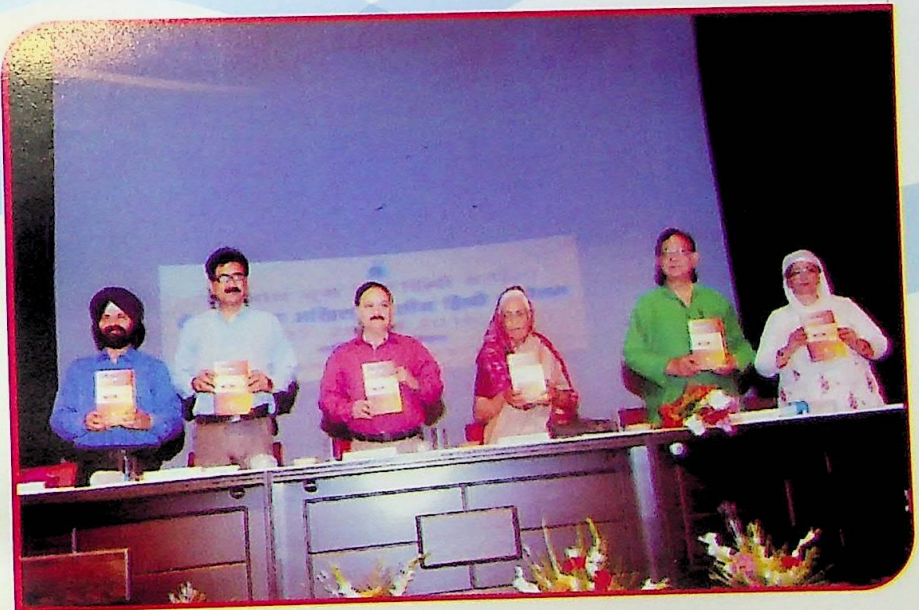
सम्माननीय मंच 'नीलमत पुराण' का विमोचन करते हुए।

उद्घाटन सत्र
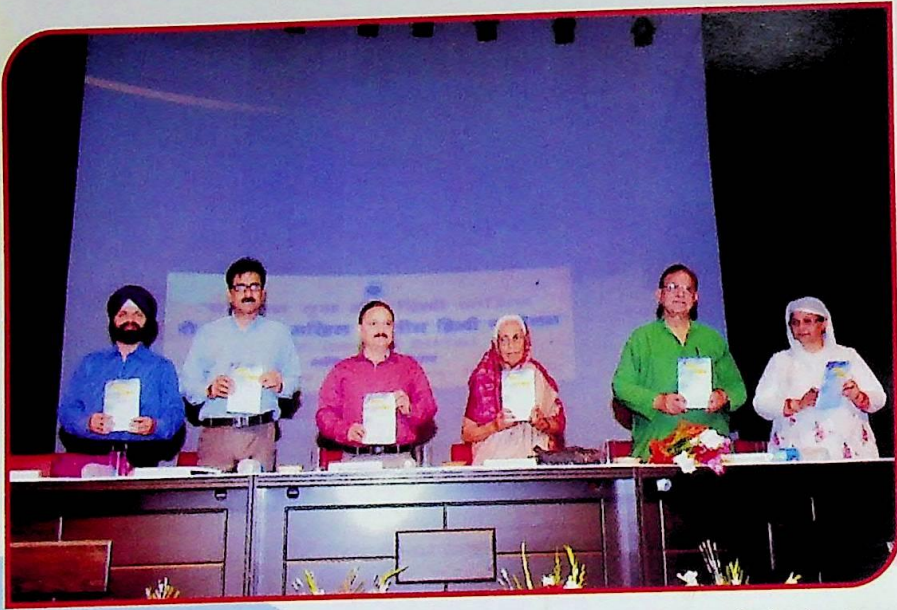
सम्माननीय मंच 'हमारा-साहित्य'-2015 (गुज्जर विशेषांक) का विमोचन करते हुए।
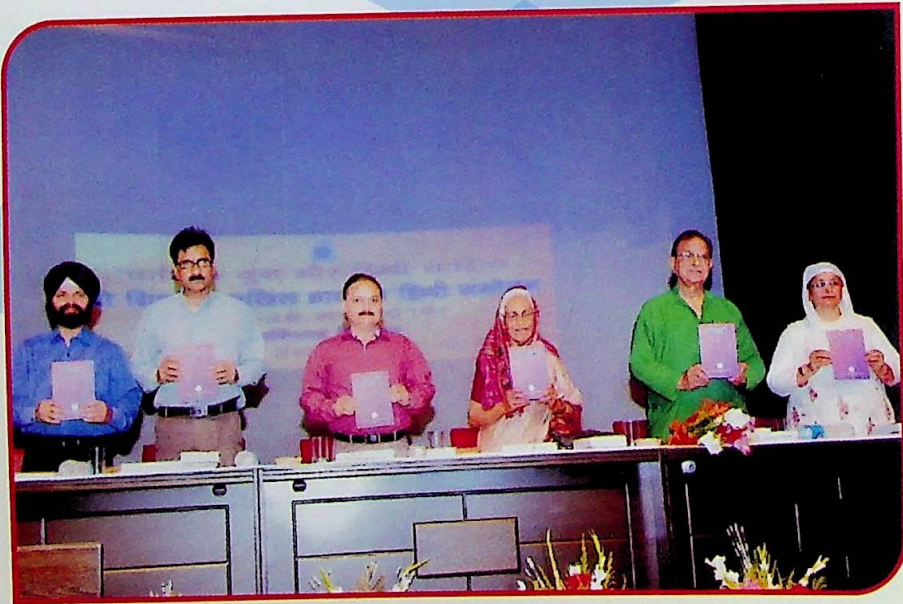
सम्माननीय मंच 'शीराज़ा' हिन्दी के अप्रैल-मई 2016 अंक का विमोचन करते हुए।

उद्घाटन सत्र

अध्यक्षीय वक्तव्य : प्रो० वेद कुमारी घई
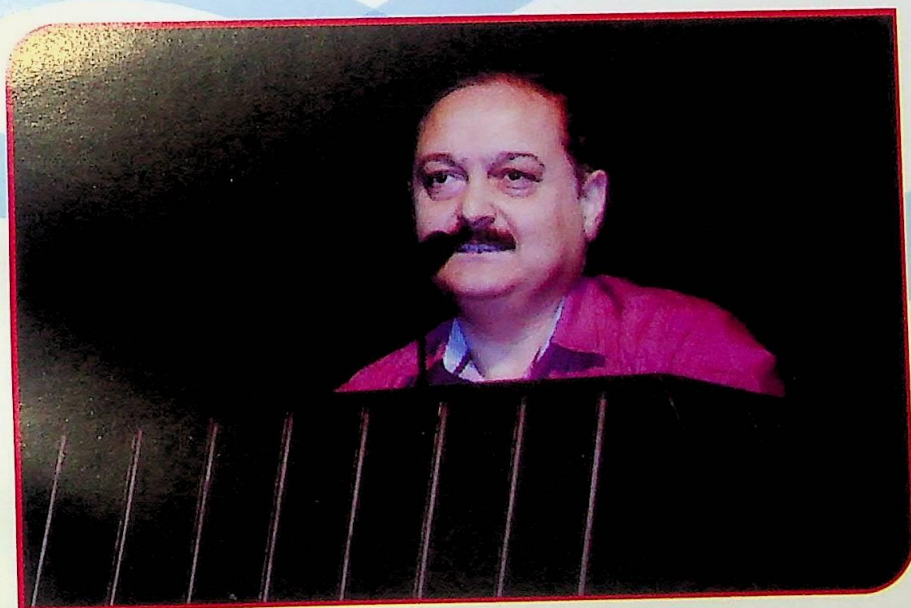
मुख्यातिथि का वक्तव्य : डॉ० पवन कोतवाल (मंडल आयुक्त, जम्मू)

उद्‌घाटन सत्र

स्वागत भाषण : डॉ० अज़ीज़ हाजनी (सचिव अकैडमी)

बीज व्याख्यान : डॉ० नरेन्द्र मोहन

उद्घाटन सत्र

धन्यवाद प्रस्ताव : डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन' अतिरिक्त सचिव

मंच संचालन : अज़रा चौधरी (संपादक : हिन्दी शीराज़ा)

उद्घाटन सत्र

सभागार में उपस्थित अतिथि गण

उद्घाटन सत्र
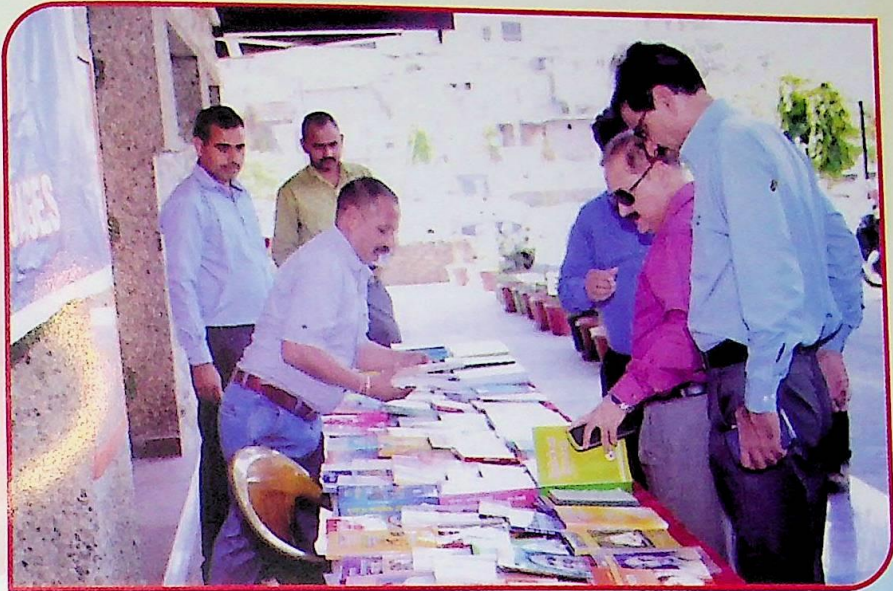
अकैडमी प्रकाशन का अवलोकन करते मुख्य अतिथि डॉ० पवन कोतवाल, सचिव डॉ० अज़ीज़ हाजनी तथा अतिरिक्त सचिव डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'

प्रेक्षकों की रजिस्ट्रेशन करते अकैडमी के कर्मचारी

स्वागत भाषण

❑ डॉ० अज़ीज़ हाजनी (सचिव)

मैं बहुत ही फ़ख्र महसूस कर रहा हूं आप सबका इस दो रोज़ा हिंदी कान्फ्रैंस में स्वागत करते हुए। भाषाओं का आपस में कोई भेद भाव नहीं होता है। यह बहनों की तरह होती हैं। जो Institutions और organizations हैं उनका यह काम है कि हर भाषा को उसका जो जायज़ मुकाम है वो दें और उस भाषा के जो अधिकार हैं उसे देना हमारा फर्ज़ है। हमारी रियासत संस्कृतियों और भाषाओं की दृष्टि से एक Mini India है। अकैडमी में बैठ कर हम 11 भाषाएं देखते हैं। इन सभी भाषाओं का साहित्य भी बहुत अच्छा है। परंतु हिन्दी भाषा की फिर भी एक अलग खासियत है। यह राष्ट्रभाषा है और इस भाषा में जो काम अकैडमी में हो रहा है, बहुत अच्छा काम हो रहा है। यहां हमारी साथी संपादक हिन्दी श्रीमती अज़रा चौधरी जी बैठी हुई हैं। जब मैंने पिछले साल ज्वाइन किया था तो मेरे लिए यह परेशानी हुई थी कि हमारा जो शीराज़ा छपता था वो Timely नहीं छपता था। खास कर कश्मीर में जो भाषाएं हम देखते हैं जैसे उर्दू हो, कश्मीरी हो। कश्मीरी में अधिक परेशानी थी, काफी पीछे चल रहा था। मैंने सबसे पहले यही काम किया कि हमारा शीराज़ा Timely छपे, हमारा, अदब Timely छपे। इसी प्रकार हमारा साहित्य जो हिन्दी में छपता है वो Timely छपे तो आज यह खुशी हो रही है कि तकरीबन हर भाषा में यह Timely छप रहे हैं। आज हम यहां पर हिन्दी 'शीराज़ा' का अप्रैल-मई अंक, 'हमारा अदब' और 'नीलमत पुराण' का विमोचन करने जा रहे हैं।

मुझे उम्मीद है कि इस दो दिवसीय कान्फ्रैंस में उन मुद्दों पर उन चुनौतियों पर बात होगी जो इस भाषा को हमारे राज्य में दरपेश हैं और उन चुनौतियों का कैसे सामना किया जाए, और किस प्रकार हम नई पीढ़ी में हिन्दी साहित्य के हवाले से, हिन्दी भाषा के हवाले से शौक और ज़ौक पैदा करें और उन्हें Inspire करें। क्योंकि एक चैलेंज हमारे सामने आ गया है अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी संस्कृति Dominate करती जा रही है हमारे Local Culture

को चाहे वो हिन्दी हो, डोगरी हो, कश्मीरी हो, पंजाबी हो, उर्दू हो। इस चैलेंज का मुकाबला करने के लिए साहित्यकारों को, बुद्धिजीवियों को Intellectual level पर सोचना होगा कि हम कैसे इसका मुकाबला करें और कैसे नई नस्ल को जोड़ें और शानदार मुस्तकबिल के साथ और अच्छे लेखक पैदा करें, कवि पैदा करें ताकि हमारी जो सदियों से एक परंपरा चली आ रही है अच्छा साहित्य लिखने की, अच्छा Culture अपनाने की वो लिंक कहीं बीच में टूट न जाए। मुझे उम्मीद है कि जितने भी यहां लेखक आए हैं, शायर आए हैं। यहां खुलकर बहस होगी। इन सैमीनारों में जरूरी नहीं है कि हज़ारों लोग आएं। लेकिन जो लोग यहां बैठते हैं वो एक-एक व्यक्ति अपने आप में एक-एक अंजुमन होता है। मैं अपने साथियों से निवेदन करता हूँ कि कान्फ्रैंस की सारी कार्यवाही को रिकार्ड करें और फिर उनें प्रिंट भी करें। ताकि हमारे पास एक रिकार्ड भी रहे और भविष्य में हमारे लिए Guideline का काम भी करे। जिस पर चल कर हम हिन्दी भाषा की तरक्की के लिए काम करें। मैं एक बार फिर आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूँ। इस उम्मीद के साथ कि यह कान्फ्रैंस एक कामयाब कान्फ्रैंस रहेगी। बहुत-बहुत शुक्रिया।

वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य
(बीज व्याख्यान)

❑ डॉ० नरेन्द्र मोहन*

दोस्तों, आज के समय में बहुत मुश्किल हो गया है जीना और लिखना। जीने और लिखने के बीच, यकीन और इंकार के बीच इतना कुछ घटित होता रहता है कि हम चकित से देखते रह जाते हैं। बीच बाज़ार में एक आदमी की हत्या होती है या सैंकड़ों लोग मुठभेड़ों में मारे जाते हैं और हम कहते हैं हुआ क्या है ? एक लम्बी अवधि में लेखन कार्य करते हुए मुझे महसूस हुआ है कि जितनी मार-धाड़, कत्लो ग़ारत, मूल्य विरोधी वारदातें इन दिनों हो रही हैं, उतनी पहले शायद ही हुई हों। नि:संदेह, मूल्य विघटन और मूल्य ह्रास के दिन पहले भी आते रहे हैं, लेकिन मौजूदा समय में मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया अपने चरम पर है। ऐसे में मुझे याद आती है बँटवारे पर लिखी मंटों की कहानी **'टोबा टेक सिंह'**। कहानी के अंत में बिशन सिंह उर्फ़ टोबा टेक सिंह नो मेन्स लैण्ड पर पछाड़ खाकर गिरता है और उसके गिरने की ध्वनियाँ सरहदों के आर-पार गूँजती रहती हैं। हर संवेदनशील व्यक्ति के लिए और लेखक के लिए यह एक मेटॉफर की तरह है- एक ऐसी जगह जहाँ वह जीता-मरता है। आज का लेखक अपने 'होने' की जगह, अपनी 'स्पेस.' तलाश रहा है। दो दिवसीय भारतीय लेखक सम्मेलन का केंद्रीय विषय **'वर्तमान युग और भारतीय साहित्य'** आज के संदर्भ में इसी लेखकीय तलाश का हिस्सा है।

ज़ाहिर है यह विषय बहुत विशाल कालावधि में एक बड़ी रेंज तक फैला हुआ है। इसके असंख्य आयाम हैं जो साहित्य-संस्कृति-समाज-राजनीति के लगभग सभी पक्षों को घेरे हुए हैं। लेकिन मैं एक छोटी-सी कविता से प्रारंभ करके आगे बढ़ना चाहता हूँ। महाराज कृष्ण संतोषी की एक कविता है 'ताँबे की नाक' जो उसके नए कविता-संग्रह **'आत्मा की निगरानी में'** संग्रहीत है। यह कविता मैंने साल पहले जम्मू-कश्मीर अकादमी द्वारा आयोजित एक कविता गोष्ठी में सुनी थी और तब से यह कविता मेरी अंर्तात्मा का हिस्सा है। कितनी बड़ी विडम्बना है यह वह नाक है जो देखने में सुंदर होते हुए भी जीवन की सुंदरता नहीं सूँघ सकती। यही हाल वर्तमान युग में टेक्नॉलजी और मीडिया द्वारा बाज़ार में आ गई चीज़ों

---

* *नरेन्द्र मोहन, 239-डी, एम०आई०जी०फलैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027 (मो० 9818749321)*

का है जो देखने में सुंदर हैं मगर जिनमें ज़िंदगी का ताप नहीं है। भरी-पूरी ज़िंदगी के उल्लासों और उमंगों से जैसे उन्हें कुछ लेना देना न हो। मेरे लिए ताँबे की नाक आज की मानव विरोधी परिस्थिति पर एक सार्थक टिप्पणी ही नहीं है, वर्तमान परिस्थिति की विसंगति और विद्रूप को समेटने वाला एक रूपक भी है।

आइए, इस रूपक के बहाने किन्हीं अन्य प्रसंगों और संदर्भों की तरफ चलें। किसी भी भाषा और देश का कवि/लेखक हो, वह अन्याय और अत्याचार का विरोधी और मानवीयता का पक्षधर होता ही है। कहते हैं कि जब आक्रमणकारी आते थे तो लाइब्रेरियाँ जला दिए जाने के भय से सहम जाती थीं और जब कोई कवि वहाँ प्रवेश करता तो लाइब्रेरियां हँसने लगतीं। साइबेरिया का एक प्रसंग याद आता है। वहाँ की जेल में एक कवि युद्ध बंदी के रूप में पाँच साल तक रहा। जब वह रिहा हुआ तो उसकी जेब से कविताएँ मिलीं। उसे दोबारा जेल में ठूँस दिया गया। कविता भी खतरनाक हो सकती है, डर पैदा कर सकती है, यही वजह है कि सत्ता कवियों को प्रलोभन या दमन से काबू में रखने का प्रयत्न करती है। इन प्रसंगों और टिप्पणियों से कविता की परिवर्तनकारी क्षमता और उसे कुचलने की सत्ता की क्रूरता का पता चलता है। ध्यान से देखें तो हम एक भयावह ख़बर और लेखकीय सपने के बीच दबोच लिए गए हैं।

आधुनिकता के ढलान में आने के बाद उत्तर-आधुनिक समय में नए युग का प्रारंभ सन् 1980 के आस-पास हुआ। टेक्नॉलजी, सूचना-तंत्र और विश्वव्यापी अर्थतंत्र जैसी उत्तर--आधुनिक स्थितियों के आने के साथ ही वर्तमान दौर की शुरुआत हुई और एक नई हलचल का प्रारंभ हुआ। संप्रेषण के पारिवारिक माध्यमों को पहाड़ हम एक नई दुनिया में दाखिल हुए। टेक्नॉलजी ने जहाँ हमारी जिंदगी के अंधेरे कोनों में उजाला भर दिया वहीं भयावह अंधेरों की शुरुआत भी वहीं से हुई। एटम बमों से हज़ारों गुना ज़्यादा ख़तरनाक बमों के ढेर पर बिठाने का काम भी टेक्नॉलजी ने किया। इसी तरह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया-चैनल, दूरदर्शन, कम्प्यूटर में संपन्न ई-मेल, फेसबुक, मोबाइल ने नई दुनिया और सोच के द्वार हमारे सामने खोल दिए। इससे हमारी ज़िंदगी में देखते-देखते नए आयाम जुड़ गए। लगा जैसे दुनिया एक 'ग्लोबल विलेज' में बदल गई हो और एक साँस की मॉनिन्द सिमट गई हो। दुनिया करीब ज़रूर आ गई मगर आदमी छोटा होता गया। साम्प्रदायिक दुष्काण्ड बढ़ते गए, असमानता बढ़ती गई, गरीबी बढ़ती गई, आत्महत्याएं बढ़ती गईं, असुरक्षा बढ़ती गई, आतंकवाद बढ़ता गया, विचार और कल्पनाशक्ति कुंठित होती गई। इससे हमारे आचरण और व्यवहार, संवेदना और विचार का प्रभावित होना स्वभाविक था। इससे हमारी कला संबंधी सोच और साहित्यिक दुनिया का विस्तार तो हुआ ही, चिंतन और भाषा के पैटर्न भी टूटने लगे। हर भाषा और साहित्य में यह दौर आया, किसी न किसी रूप में, कहीं कम, कहीं ज्यादा। प्रचलित चिंतन प्रणालियों के खिलाफ़ यह एक नया चिंतन था जिसने

हमारी संवेदना के आधारों में ज़बरदस्त परिवर्तन किए जिन्हें इधर का लेखक समझ रहा है और नए रास्तों की खोज में है।

यह तो है ही कि उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद ने सभी को बुरी तरह अपने चंगुल में लपेट लिया है। सभी कुछ बिकाऊ हो गया है–जीवन-प्रसंग, धर्म और जनतंत्र भी। क्या विडंबना है कि जो बिके वही बड़ा और जो बड़े से बड़ा पुरस्कार झपट ले वही बड़ा लेखक। देखिए न विकास के नाम पर विनाश भी बिक रहा है- आदिवासी क्षेत्रों में कॉरपोरेट द्वारा भूमि अधिग्रहण, अफसपा (ऑम्ड फॉरसेस स्पेशल पावर एक्ट) के ज़रिए फर्जी मुठभेड़ों में कश्मीर, मणिपुर की बदहाली, शर्मिला ईरोम की त्रासदी। लगता है दमन के आगे प्रतिरोध कमज़ोर पड़ गया हो, मगर प्रतिरोध जारी है, सपना देखने की क्षमता भी। यथार्थ और स्वप्न आज के लेखक के चिंतन में दाख़िल हो चुका है और उसकी अभिव्यक्ति का हिस्सा है।

शब्द में सभ्यता, संस्कृति और मनुष्यता का वास है। शब्द ही हमारी मूल्यवत्ता का मेरुदण्ड है। करुणा, प्रेम, संघर्ष और विद्रोह जैसे मूल्यों के ज़रिए हमने शोषण-मुक्त समाज की कल्पना की है और स्वाधीनता, समता और मुक्ति की तरफ़ बढ़े हैं। कोई वक्त था जब यह मूल्य सर्वोपरि थे। कबीर ने अपने जीवन में, दोहों और साखियों में इन मूल्यों के केंद्रीय महत्त्व को रेखांकित किया है।

'कबीरा खड़ा बज़ार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर मारे आपनो, चले हमारे साथ।।

× × × ×

'कबीर यहु घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुइ धरे सो पैसे घर माहिं।।'

आज स्थिति उलट गई है। अपना घर जलाकर संघर्ष और सच की राह पर चलने वाले कितने रह गए हैं ? विजयदेव नारायण साही ने इन दोहों को डी-कोड करते हुए इनकी मार्फ़त अपनी कविता 'अब' में आप की भयावह स्थिति का बेबाक चित्रण किया है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''वे बाज़ार में लुकाटी लिए खड़े हैं। मेरा घर भी जलाते हैं। और मुझे साथ भी पकड़ ले जाते हैं। अब/वे बाज़ार लूटते हैं और रमैय्या की जोरू की इज़्ज़त भी/नर भी। नारी भी। देवता भी। राक्षस भी/उन्होंने हाहाकार मचा दिया है। अब ? मैंने जो प्रेम का घर बसाया था/ठीक उसके सामने/उन्होंने मेरा सर उतारा/और भूमि पर रख दिया/फिर मेरे घर में बैठ गए/ जैसे ये उनकी ख़ाला का घर हो। अब ?''

यह एक विकट समय है जिसमें से आम-आदमी और लेखक गुज़र रहा है। नई परिस्थिति नित नए रूपों में अपने को खोल रही है। टेक्नॉलजी, सूचना-तंत्र और ग्लोबल अर्थ-तंत्र ने इस विकटता को और गहरा दिया है। इससे हमारी संवेदना और विचार में बेशक इज़ाफ़ा हुआ हो, मगर संवेदना को छीजते जाते देखना तथा विचार और कल्पना-शक्ति को काठ मार जाना, जीने के स्तरों का सिकुड़ते जाना तो है ही, सृजन और साहित्य के लिए भी घातक है। आइए, एक लोक कथा के ज़रिए इस पर विचार करें-

'एक था राजा। उसका एक नाई था। एक बार नाई राजा के बाल काट रहा था कि उसे बालों के झुरमुट के बीच दो नुकीले सींग दिखाई दिए। वह थर-थर काँपने लगा। कैंची उसके हाथ से छूट गई। राजा को समझने में देर न लगी कि नाई को उसके बालों के बीच छिपे सींगों का पता चला गया है। राजा ने उससे कहा 'अगर तूने यह बात किसी को बताई तो मैं तुझे फाँसी पर चढ़ा दूँगा।' नाई ने कहा 'नहीं, मैं किसी को नहीं बताऊँगा'। नाई क्या करे-एक सच उसने देख लिया था और उसे अभिव्यक्त किए बिना उसे चैन न था। वह जंगल में घूमता रहा और आख़िर एक पेड़ के साथ लिपटकर रोने लगा, 'राजा के सिर सींग, राजा के सिर सींग।' पूरा वातावरण गूँजने लगा 'राजा के सिर सींग, राजा के सिर सींग।' तभी एक बाँसुरी वादक वहाँ से गुज़र रहा था। उसकी बाँसुरी से भी यही आवाज़ गूँजने लगी 'राजा के सिर सींग, राजा के सिर सींग।' छोड़िए, इस बात को कि नाई का क्या हुआ, बड़ी बात यह है कि जब आप कोई सच देख लेते हैं तो उसे अभिव्यक्त किए बिना रह नहीं सकते। लेखक लोककथा के नाई की मानसिकता वाले ही होते हैं जो सच के लिए बड़ी से बड़ी सत्ता से टकरा जाते हैं। एक बायज़ीद, एक मंसूर, एक ग़ालिब, एक कबीर, एक मंटो, एक शर्मिला ईरोम आदि सच की ख़ातिर जान गँवा देते हैं मगर उफ़ तक नहीं करते। कलाकार, चित्रकार, नर्तक, नृत्यांगना आदि अपने-अपने माध्यमों के साथ एक तरह के लेखक ही हैं जो अपनी राख में से फीनिक्स पक्षी की तरह उड़ान भरते हैं। ठीक है कि आप ज्यादातर राख ही राख है और उड़ान भरने वाले कम, लेकिन उन्हीं का भरोसा है जो दहाड़ते आतंक के बीच फटकार कर सच कहते हैं। मुझे याद आता है बीस साल पूर्व कत्थक नृत्यांगना माया कृष्णा राय का मंटो की कहानी 'खोल दो' पर दिल्ली के त्रिवेणी के ओपन एयर थियेटर में एक नृत्य। माया कृष्णा राव ने मार्मिक चेष्टाओं और देहभाषा के ज़रिए सराजुद्दीन और सकीना के अंत: संबंधों की यातना को मूर्त कर दिया था।

दोस्तों, आप के लेखकों के सामने बड़ी चुनौती यह है कि सूचना को ज्ञान में, ज्ञान को संवेदना में और संवेदना को ज्ञानात्मक संवेदना में कैसे बदलें ? सूचना की आँधी को ज्ञान की आँधी में कैसे बदले ? एक प्रसंग याद आ रहा है, एक बार मेरा एक दोस्त घबराया-सा मेरे पास आया। कहने लगा -'मैं क्या करूँ' ? मेरा बेटा पागलों-सा व्यवहार करने लगा है। पता नहीं दीवारों पर क्या ऊल-जलूल लिखता रहा है। मैंने कहा 'घबराओ नहीं, किसी

मनोचिकित्सक से सलाह करते हैं।' अगले दिन मैंने एक मनोचिकित्सक को बुला लिया। उसने पहला सवाल मेरे दोस्त और उसकी पत्नी से यह किया कि 'वह क्या काम करते हैं और कब घर लौटते हैं ?' दोनों ने बताया कि 'वे एक ऑफिस में काम करते हैं, शाम को घर लौटते हैं।' डॉक्टर ने पूछा, 'उसके बाद ?' दोनों ने कहा- 'छिट-पुट काम करते हैं और टेलिविज़न देखते हैं', 'कब तक ?' डॉक्टर ने पूछा, 'दस-ग्यारह बजे तक', दोनों ने कहा। डॉक्टर ने कहा, ईलाज तो आपका होना चाहिए। आपकी विचार और कल्पनाशक्ति कुंद हो चुकी है जबकि आपका बेटा बिल्कुल नॉर्मल है। वह अपनी कल्पना से दिवारों पर चित्र बनाता है।

आज से प्रारंभ हो रहे दो दिवसीय साहित्य सम्मेलन में 'वर्तमान युग और हिंदी साहित्य' के अंतर्संबंधों पर कविता, कहानी, नाटक, रंगमंच, राष्ट्रभाषा, बाल-साहित्य और अनुवाद आदि मुद्दों पर निश्चय ही सार्थक और व्यापक चर्चा होगी और कई केंद्रीय मुद्दों पर बातचीत एकाग्र भी हो सकती है। आज हम बेशक बेचैनी के आलम से घिरे हैं लेकिन इसी में से नई और बड़ी रचनाएँ (कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएं) आएँगी जिनका हमें इंतज़ार रहेगा। 'इंतज़ार' कहते ही मुझे एक बार फिर मंटो की याद आ गई जिसे मैंने अपने वक्तव्य के प्रारंभ में उद्धृत किया था। वह मेरे लिए महज़ एक लेखक नहीं एक मिथक बन चुका है। पिछले दिनों बम्बई के मेरे एक दोस्त मुहम्मद असलम परवेज़ ने कहा कि अगर आपको मंटो से एक सवाल पूछने की इजाज़त दी जाए तो आप क्या सवाल पूछना चाहोगे? मैंने कहा 'मंटो से मैं कई सवाल पूछना चाहता हूँ, लेकिन अगर एक सवाल पूछने की ही इजाज़त है तो सिर्फ़ यह सवाल ''मंटो तुम कब आओगे ? तुम्हारे जैसे लेखक के दोबारा आने का हम कब तक इंतज़ार करें ?'' सवाल तो मैंने पूछ लिया मगर सवाल की ध्वनियाँ कुछ ऐसी हैं कि मैं अंदर तक काँप गया। डरा-डरा सा सोचता हूँ कि मंटो अगर सचमुच हमारे बीच आ गए और उसने अपने अफ़सानों द्वारा मज़हबी कठमुल्लापन और सियासी कारगुज़ारियों का परदाफ़ाश करना शुरू कर दिया तो क्या उसके अफ़सानों को बर्दाश्त किया जाएगा ? क्या उसे ज़िंदा रहने की भी इजाज़त होगी ?

दोस्तो, यह सवाल एक चुनौती के रूप में आपके सामने है। निर्णय आप पर छोड़ता हूँ।

*

वक्तव्य : मुख्य अतिथि

❒ डॉ० पवन कोतवाल *(आई.ए.एस.)*
मंडल आयुक्त, जम्मू

'वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य अपने आप में बहुत ही अच्छा विषय है यह। जब भी कोई समाज उन्नति करता है, जैसे मनुष्य की ही अगर हम बात करते हैं तो मनुष्य जिसे हम Homosapiens कहते हैं, जो हम हैं। दो टांगों पर चलने वाले। यह Homosapiens लगभग एक लाख साल पहले इस दुनिया में आए, जैसा कि सांइस कहती है बाकी तो हर एक धर्म में अलग-अलग तरीके से बताया गया है कि हम इस संसार में कैसे आए। लेकिन आधुनिक समाज की जो सोच है वह यही है कि लग-भग एक लाख साल पहले Homosapiens इस धरती पर आए। नब्बे हजार साल तो वह जंगलों में ही घूमते रहे। कौन सी बोली बोलते थे इसका कोई पक्क़ा पता नहीं है। क्या भाषा उनकी थी? वह Communicate कैसे करते थे क्योंकि वह शिकार करते थे। शिकार झुंड में ही किया जा सकता है। एक आदमी एक जंगली जानवर के पीछे भाग नहीं सकता। तो 90 हज़ार साल आपने यह किया या फल तोड़ते होंगे तो पेड़ पर चढ़ने के लिए भी दो तीन आदमियों की जरूरत होती होगी। इसलिए Communicate तो जरूर करते होंगे। भाषा तो जरूर होगी, बोली होगी, बोलते होगें। लिखने का System अभी Develop नहीं हुआ था। लगभग दस हज़ार साल पहले हमने एक जगह बैठना सीखा, Agriculture बीज कहां है, फलों के पेड़ कैसे उगाए जाते हैं, फसल कैसे लगाई जाती है, सिंचाई कैसे की जाती है ? किसी को मालूम नहीं था। प्रकृति ने ऐसा कमाल किया जिसे हम Fertile Crecent कहते हैं आजकल। आप समझ लें जिस में कुछ इलाका ईराक का, कुछ तुर्की का, कुछ सीरिया का, कुछ लेबनान का इसे Fertile Crecent कहते हैं। कहते हैं इसी क्षेत्र में Agriculture की शुरूआत हुई। वहां जंगल में एक घास होता था जिसके छोटे-छोटे दाने होते थे। जब वह दाने पकते थे तो हवा से उड़ जाते थे। जब कोई चीज़ उड़ जाती है तो वह दूर-दूर फैलती है। इस प्रकार वह दाने उड़ते थे, फिर फैलते थे। आप उनको इकट्ठा नहीं कर सकते थे क्योंकि वह बहुत छोटे थे, प्रकृति ने एक ऐसा काम किया कि वह घास Diploid से Tetra Ploid हो गया, अब दाना मोटा हो गया। जब दाना मोटा हो गया तो वह अब हवा से उड़ता नहीं था। जब पकता था वहीं गिरता था। आप उसे इकट्ठा कर सकते थे। यहीं से Agriculture की शुरूआत थी। हो सकता है इसी दौरान शुरूआत हुई हो बात की। लगभग 4 हज़ार साल

पहले कहते हैं वहां लिपि का जन्म हुआ। जिससे uniform script आया। जिसे हम civilization कहते हैं। उसी दौरान हमारे यहां मोहंजोदाड़ो सभ्यता भी थी। हालांके Uniform Script, Decipher हो गई है। हमारी वाली Indus Valley Civilization की Script आज तक Decipher नहीं हो पाई। अब मैं समझ रहा हूं कि यह क्यों नहीं हो पाई। क्योंकि यह दोनों Contemporary थे। हमारी मोहंजोदाड़ो हड़प्पा की कितनी बड़ी Civilization थी जो कि पूरे के पूरे सिन्ध में फैली हुई थी। अब पता चलता है जब हम पढ़ते थे बताते थे कि यह तीन चार है। यह हडप्पा है, यह मोहंजोदाड़ो है, यह लोथाल है बगैरा-बगैरा।

अब तो हरियाणा, यू० पी० और कंधार तक यह फैला हुआ है। हमारी Script का आज तक decipher नहीं हुआ है। कितने हमारे पास लेखक है। कितने विद्वानों से भरा हुआ यह देश है। लेकिन जो हमारी मूल लिपि है, original script है उसे आज तक Decipher नहीं कर पाए हैं। शायद आने वाले समय में हो जाए। लेकिन उन्होंने जिस लिपि Uniform script में लिखा वह Decipher हो गई। मेरे कहने का मतलब यही है कि उसी प्रकार भाषा का उद्भव और विकास हुआ होगा। पहले हमारे यहां जितना भी साहित्य था वह श्रुति और स्मृति पर ही निर्भर करता था। विद्वान अपने शिष्यों को कुछ बोलते थे। शिष्य श्रवण करते थे और याद रखते थे। exact same चीज याद रखते थे और फिर वह आगे अपने शिष्यों को बताते थे तो ऐसे ही यह जो हमारे जितने भी ग्रन्थ हैं यह श्रुति और स्मृति के द्वारा आगे चलते गए। लिखा कभी नहीं गया। हमारी जो oldest script है आप सभी बुद्धिजीवी हैं, हो सकता है मैं थोड़ा सा गल्त हूँ जो मेरी थोड़ी सी जानकारी है कि हमारी जो पुरातन लिपि है वह खरोष्ठी लिपि है। उसके बाद आती है ब्राह्मी, फिर शारिका फिर देवनागरी का जन्म हुआ। तब जाकर लगभग 1200 ई० पू० हमने अपने ऋग्वेद लिखे। लेकिन ऋग्वेदों से पहले के जिस तरह होमर की ओडीसी और जूलिसियस बहुत पहले से, लगभग 1500 ई० पू० से हैं। लोग सुनते थे। होमर ने भी सुना किसी से, लेकिन उसने सिर्फ इसे कलमबद्ध किया। Think he was also not a highly educated man. मैने कहा इस प्रकार लेखन की शुरूआत हुई। पहले Uniform Script फिर Script ग्रीक आई। ग्रीक में बहुत सारा साहित्य लिखा गया है। यह जो सारा western world है वह ग्रीक साहित्य पर है। पुरानी ग्रीक भी बहुत कठिन थी, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार हमारी संस्कृति। यही कारण है कि संस्कृत प्रचलित नहीं हो पाई। फिर संस्कृत के बाद प्राकृत आ गई, जैसे पाली। जो बोल-चाल का रूप है। हिन्दी भी प्राकृत का ही एक रूप है। शुद्ध संस्कृत प्रचलित नहीं हो पाई। Original ग्रीक भी प्रचलित नहीं हो पाई। फिर उन्होंने common ग्रीक रखी। उसी प्रकार Original लेटिन भी बहुत मुश्किल है। भाषा वही प्रचलित होती है जो सरल हो। जिसे जनसाधारण समझ सके प्रयोग कर सके। हिन्दी जो है वह एक ऐसी भाषा हमारे पास आ गई जो सरल है और जिसे जन-साधारण ने अपनाया है। हमारी हिन्दी भाषा विज्ञानक (Scientific) है। एक Perfect भाषा है। जिसे लोग आसानी से समझ सकते हैं। इतनी

Scientific भाषा दूसरी और कोई नहीं है। यह नहीं हैं कि दूसरी भाषाओं में कोई कमी है। हर एक भाषा का अपनी-अपनी जगह महत्व है। वर्तमान समय में हम अंग्रेज़ी की जकड़ में है। पूरा विश्व अंग्रेज़ी की जकड़ में है। वर्तमान समय में हमें हिन्दी को Promote करने की बहुत ही ज्यादा जरूरत है और यह Promote तब होगी जब हम बोलेंगे। हम बोलते नहीं हैं। हम बच्चे को कहते हैं कि हिन्दी की किताब पढ़ो। और कोशिश हमारी रहती है कि बच्चा बात अंग्रेज़ी में करे। आजकल मैं रेख रहा हूं बच्चे इंगलिश में आसानी से पास हो रहें है और हिन्दी में उनके Marks कम आ रहे हैं। आज अगर आप बच्चों से पूछो कि सबसे मुश्किल सब्जैक्ट कौन सा है तो वह कहेंगे-हिन्दी। इसलिए मेरा मानना है कि वर्तमान समय में हिन्दी का बोलने में प्रयोग करना अनिवार्य है। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्यकारों पर भी जिम्मेवारी है। हिन्दी बोलना जरूरी है। जब हम बोलेंगे तभी तो Books पढ़ेंगे। भाषा की परिभाषा यही है कि मैं बोलूं और आपको समझ आ जाए। इसलिए हिन्दी लेखकों को भी चाहिये कि वह अपने लेखन में सरल भाषा का प्रयोग करते हुए अपने लेखन को आकर्षक और नए तरीके से पेश करें ताकि पाठक अपने-आप जुड़ जाए। हिन्दी हमारी Identity से जुड़ी हुई है। यह हमारी राष्ट्रभाषा है। इस भाषा के साथ हमारा मान-सम्मान जुड़ा हुआ है। इसलिए इसको Promote करना हमारा कर्तव्य है। हिन्दी का किसी धर्म से कोई लेना-देना नहीं है जिस प्रकार उर्दू का किसी धर्म से लेना देना नहीं है। हिन्दी राष्ट्र की भाषा है। इसलिए इसको Promote करना हमारा फर्ज है। यह जो दो दिन की कान्फ्रैंस की जा रही हैं इसके लिए आप सभी को बधाई।

*

प्रथम सत्र

मंचासीन : प्रो० चंचल डोगरा, प्रो० परमेश्वरी शर्मा, श्री गौरी शंकर रैणा तथा अज़रा चौधरी (संपादिका)

पत्रवाचक : कमलजीत चौधरी

प्रथम सत्र

पत्रवाचक : प्रो० रजनी बाला

पत्रवाचक : डॉ० सतीश विमल

अध्यक्षीय वक्तव्य

❑ प्रो० वेदकुमारी घई

जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी ने कश्मीर के नीलमत पुराण का हिन्दी अनुवाद करवा कर कश्मीर के प्राचीन इतिहास और संस्कृति की इस धरोहर को हिन्दी जगत तक पहुंचाने का सराहनीय कार्य किया है। इस पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन और इसका अनुवाद दोनों अंग्रेज़ी भाषा में (प्रो० वेदकुमारी घई कृत) दो संस्करणों के माध्यम से उपलब्ध हो चुके हैं। भारत से बाहर के विद्वान् भी इनसे आकृष्ट हुए और जापान के प्रो० यासुके इकारी ने अपने सहयोगियों के साथ अनेक संगोष्ठियां करके विद्वानों के ग्यारह लेखों का संग्रह – ए स्टडी आफ़ दी नीलमत– एस्पैक्टस आफ़ हिन्दूइज़्म इन एन्शैन्ट कश्मीर'' शीर्षक से क्योटो विश्वविद्यालय जापान से सन् 1994 में प्रकाशित किया।

अब राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रस्तुत नीलमत के सांस्कृतिक अध्ययन तथा संस्कृत पाठ का अनुवाद हिन्दी के लेखकों पाठकों और विद्यार्थियों को कश्मीर के अतीत को पहचानने में सहायता देगा। कश्मीर घाटी से निर्वासित हुए लेखकों की कृतियां जैसे अग्निशेखर का कविता संग्रह ''मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'' जिस संवेदना को जगाती है उसकी गहराई नीलमत में निहित नदियों, पर्वतों, नागों के स्रोतों और सरोवरों के आस्थापूर्ण वर्णनों से और अच्छी तरह समझ में आती है।

छठी शताब्दी ई० के इस ग्रन्थ नीलमत की लघुकथाएं कश्मीर के भूभागों को देवत्व भी प्रदान करती हैं और उनके माध्यम से धार्मिक समन्वय और भारत की सांस्कृतिक एकता का प्रमाण भी देती हैं। इन कथाओं में शिव, विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध, यक्ष, नाग, पिशाच सभी ने घुलमिल कर एक ही संस्कृति का ताना बाना तैयार किया है। नाग देवता हिन्दू धर्म का अंग बने हैं और हिन्दू देव भी नागों के रूप में उपस्थित हुए हैं। हर, शम्भु, महादेव, वासुदेव, जनार्दन, नारायण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, अंगद, इन्द्र, अर्जुन, भीष्म, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर ये सब नीलमत पुराण की नाग सूची में है।

महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार ते पुराणों में कहा गया है परन्तु बौद्ध धर्म के प्रति जैसा उदार भाव नीलमत पुराण में दिखाई देता है वैसा किसी अन्य पुराणों में नहीं मिलता। बुद्ध को इसमें असुरों का उपदेशक नहीं अपितु जगद्गुरु कहा गया है। बुद्ध के जन्म दिन के उत्सव पर बुद्ध की मूर्ति की पूजा शाक्योक्त वचनों से करने का, बौद्धों के विहारों की

सफेदी कराने का, चैत्यों को चित्रांकित करने का तथा शाक्यभिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, पुस्तकें आदि देने का विधान है। ये सब तथ्य नीलमत के समय में कश्मीर में धार्मिक समन्वय की भावना को प्रकट करते हैं।

कश्मीर में नारियों के महत्त्वपूर्ण स्थान का प्रमाण भी नीलमत देता है। वह घर की चारदीवारों में बन्द नहीं है अपितु घर से बाहर मनाये जाने वाले उत्सवों में भी अपने पति, बच्चों, सेवकों तथा पति के मित्रों सहित सम्मिलित होती है। बीजारोपण जैसे कृषि उत्सवों में वह पति के संग खेतों में पहुंच कर गीत नृत्य से युक्त उत्सव मनाती है। उपवनों में जाकर फलद्रुमों की पूजा करना, श्रावणी में जलक्रीड़ा करना, महीमान में सजधज कर पुरुषों के साथ खेलना, मार्गशीर्ष, पूर्णिमा में अपने भाई भतीजों तथा पति के मित्रों से भी वस्त्रादि के उपहार स्वीकार करना, ये सब तथ्य कश्मीर में नारियों की सम्मान जनक स्थिति को प्रमाणित करते हैं।

नृत्य संगीत और नाटकों का अभिनय कश्मीर के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का प्रमुख अंग थे। चार प्रकार के पेशेवर गायकों, अनेक वाद्ययन्त्रों वीणा, वेणु, पटह, आदि का उल्लेख नीलमत में हुआ है। प्रेक्षा और प्रेक्षणक शब्दों का प्रयोग नाट्याभिनय की ओर संकेत करता है। कई उत्सवों में यथाविधि प्रेक्षादान करने का विधान है जिससे प्रतीत होता है कि कश्मीर में ऐसी नाट्यमण्डलियां होती थीं जो किसी व्यक्ति या संस्था से प्रबन्धन व्यय प्राप्त कर नाटकों का प्रदर्शन रंगमंच पर करती होंगी तभी प्रेक्षादान के साथ-साथ रंगजीवियों को भी धन से सम्मानित करने को कहा गया है। दर्शकों को भी ताम्बूल पुष्पहार आदि से सम्मानित करने का कहा गया है। नीलमत के अनुसार आषाढ मास के शुक्लपक्ष के अन्तिम पांच दिनों में देवप्रस्वादन उत्सव होता है जिसमें त्रयोदशी को नाट्याभिनय करवाया जाता है। उसके चार मास पश्चात् कार्तिक मास के शुक्लपक्ष के अन्तिम पांच दिनों में देवोत्थान उत्सव होता है। उसमें नाट्याभिनय का तथा त्रयोदशी के दिन अभिनेताओं, मल्लों और स्तुतियां गाने वाले भट्टों को सम्मानित करने का विधान है। कश्मीरी कवि बिल्हण भी कश्मीर की स्त्रियों के नाट्याभिनय की प्रशंसा करते हुए कहता है कि नाटकों में उनके अभिनय कौशल को देखकर स्वर्ग की अप्सराएं रम्भा, चित्रलेखा और उर्वशी भी विस्मित तथा लज्जित थीं। इस प्रकार प्रतीत होता है कि नीलमत के समय की कश्मीरी जनता अपनी अपनी धार्मिक आस्थाओं में विश्वास रखती हुई, भौतिक सुख सुविधाओं के प्रति भी उपेक्षा भाव नहीं रखती थी। अतीत के उस शान्त और सौहार्दपूर्ण वातावरण में कश्मीर के आनन्दमय जनजीवन की झलक सम्भवतः आज के कश्मीर की दुखती रगों पर मरहम लगा सके। राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस ग्रन्थ को उपलब्ध कराने के लिए जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकादमी को धन्यवाद।

*

धन्यवाद प्रस्ताव

❑ डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन' *(अतिरिक्त सचिव)*

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी की ओर से आयोजित इस हिन्दी कान्फ्रैंस के उद्‌घाटन समारोह में मंच पर बैठे हुए श्री पवन कोतवाल जी, मंडलायुक्त जम्मू जिन्होंने अपने भाषण में यह साबित किया है कि वह बहुत बड़े स्कालर हैं। जिनका प्रशासन के साथ-साथ साहित्य के साथ भी जुड़ाव रहा है और जिस खूबसूरत अंदाज में उन्होंने यहां पर अपना भाषण दिया, अपने विचार रखे, खास कर कान्फ्रैंस के विषय ''वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य'' के हवाले से बात करें तो यह हमारे लिए एक Extension Lecture था। इन्होंने जो बातें कहीं वह भविष्य में हमारा मार्गदर्शन कर सकती हैं। सर आपने इस दो दिवसीय कान्फ्रैंस के उद्‌घाटन के लिए समय निकाला और हमें इतने खूबसूरत विचारों से परिचित करवाया। हम अकैडमी की ओर से आपका आभार व्यक्त करते हैं। धन्यवाद करते हैं पद्‌मश्री प्रो० वेद कुमारी घई जी का, इनके बारे में मैं अधिक न कहते हुए क्योंकि यह हमारा एक ऐसा स्रोत हैं, एक ऐसा Symbol हैं जिसका नाम ही अपने आप में काफी है। इनका हमारी इस कान्फ्रैंस में आना, हालांकि इनकी सेहत इजाज़त नहीं देती थी। पिछले काफी अर्से से यह किसी कार्यक्रम अथवा प्रोग्राम में नहीं गईं। उन्होंने इस उद्‌घाटन सत्र में अध्यक्षता का हमारा आग्रह कबूल किया और वह आईं इसके लिए तो उनका धन्यवाद है ही। लेकिन मैडम हम सबसे ज्यादा शुक्र-गुजार हैं आपके, आपके ऋणी हैं कि आपने इतने बड़े कार्य को सेहत के न ठीक होने के बावजूद पूरा किया और हम 'नीलमत पुराण' जैसी महान कृति को इस उद्‌घाटन सत्र में विमोचन करने में कामयाब हो सके। हम आपका बहुत-बहुत आभार व्यक्त करते हैं।

नरेन्द्र मोहन जी, मैंने इनको जब भी एक दो बार सुना तो वह एक बात बड़े फख्र के साथ कहते हैं कि अस्सी पार करने के बाद। हमें भी बहुत अच्छा लगता है जब हम आपको अस्सी पार करने के बाद अपने से ज्यादा जवान और Energetic देखते हैं। सर आपने हमारी विनती कबूल की और हमारे इस उद्‌घाटन सत्र में जो Key Note Address प्रस्तुत किया और जो एक स्तर, मयार और Directions अपने भाषण के दौरान इस दो रोजा कान्फ्रैंस

के लिए दी वह हमारे लिए मूल्यवान हैं। हमें उम्मीद है कि जब यह दो रोजा कान्फ्रैंस समाप्त होगी तो ऐसे मुद्दों पर हम किसी निर्णायक Decision पर पहुँच चुके होंगे जिससे हमें हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य और Literature in Totality में हमने क्या-क्या कदम उठाने है, उन नतीजों के साथ इस हाल से निकलेंगे। मैं सचिव, जम्मू-कश्मीर कला संस्कृति और भाषा अकैडमी डॉ० अज़ीज़ हाज़नी का भी धन्यवाद करना चाहता हूं जिन्होंने अपनी व्यस्तता से समय निकाल कर इस उद्घाटन सत्र पर कश्मीर से आए। सभी पत्र-वाचकों, साहित्यकारों, मीडिया का बहुत-बहुत धन्यवाद। बुद्धिजीवियों एवं श्रोताओं का भी बहुत-बहुत धन्यवाद।

*

27 मई, 2016

प्रथम सत्र	:	पत्रवाचन
अध्यक्षा	:	डॉ० चंचल डोगरा
अध्यक्ष मंडल	:	प्रो० परमेश्वरी शर्मा, श्री गौरी शंकर रैणा
पत्र वाचक	:	कमलजीत चौधरी प्रो० रजनी बाला डॉ० सतीश विमल
मंच संचालन	:	अज़रा चौधरी
सत्र की रिपोर्टिंग	:	यशपाल निर्मल

जम्मू कश्मीर में हिन्दी कविता और युवा कवि : एक अवलोकन

❑ कमल जीत चौधरी*

अग्रज उदय प्रकाश की एक कविता मुझे बहुत प्रिय है, इसे आलेख पढ़ने के बाद भी ध्यान में रखा जाए–

आदमी मरने के बाद कुछ नहीं बोलता
आदमी मरने के बाद कुछ नहीं सोचता
कुछ न बोलने और कुछ न सोचने से
आदमी मर जाता है

इधर के परिदृश्य में संवाद और असहमति के लिए जगह कम हुई। हम एक दूसरे को जानना नहीं चाहते। दूसरे का दु:ख हमें सालता नहीं। उसके सुख से हम दुखी होते हैं। जनतंत्र एक हाई टेक जाल बन गया है। कविता चूहे की तरह यह जाल कुतरने की सामर्थ्य रखती है। ऐसे में कविता की भूमिका पर बात की जानी चाहिए। मैं किसी को बड़ा या छोटा होने का प्रमाणपत्र देने की पात्रता या अधिकार नहीं रखता। मैं यहाँ कवियों की सूची नहीं बनाऊंगा। यह भ्रामक होगा और इसके अपने खतरे हैं। इस आलेख का उद्देश्य जम्मू-कश्मीर राज्य में पिछले कुछ सालों में उभरी काव्य प्रवृत्तियों से परिचय करवाना है। लिखने की जिम्मेवारी समझता हूँ। प्रवृत्तियाँ गिनाते हुए मेरा नाम या काव्य पंक्तियाँ आयें तो इसका सरलीकरण न किया जाए। वैसे मैं इससे बचूंगा।

हिन्दी कविता में एक स्थापित मुख्यधारा है। मुख्यधारा से मेरा आशय इससे अलग कुछ और है। आम आदमी का साथ देती और एक प्रतिपक्ष रचने वाली हिन्दी कविता मेरी दृष्टि में मुख्यधारा है। मानवीय मूल्यों वाली इस कविता की शर्त कोई भूगोलिक हदंबदी नहीं होनी चाहिए। जिसमें रहने की अनिवार्य शर्त गुणवत्ता और ईमानदारी है। दिल्ली के बाहर भी दिल्लियाँ हैं। इसे प्रवृत्ति की तरह देखा जाए। इस तरह सीमांतों में भी अच्छी कविता के साथ जो एक साहित्यिक सत्ता रहती है। जो एक तेज चमक होती है। इससे अछूता रहकर लिखना आसान काम नहीं है।

---

* *काली बड़ी, साम्बा, जे० एण्ड के० (184121), दूरभाष-9419274403*
ई मेल-kamal.j.choudhary@gmail.com

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं,
सीस उतारी हत्थी रखे फिर पैठे घर माहिं
–कबीर

यह बात जम्मू कश्मीर की कविता पर भी लागू होती है। यहाँ भी सत्ता, पद प्रतिष्ठान और पुरस्कार लेखकों की परीक्षा लेते हैं, इस परीक्षा में कम ही लेखक सफल होते आए हैं।

युवा कवि एक भ्रामक शब्द है। प्रगतिशील होना ही युवा होना है। प्रगतिशील कविता छाया में सन ग्लासेस नहीं पहनती। प्रेम करना खूब जानती है। यह रात को रात और दिन को दिन कहना जानती है। इस शर्त के साथ हिन्दी के पास चन्द्रकांत देवताले, नरेश सक्सेना, मंगलेश डबराल, हरीश चन्द्र पाण्डेय, देवी प्रसाद मिश्र, बिष्णु नागर, अरुण कमल, राजेश जोशी, आलोकधन्वा, हुकुम ठाकुर, ज्ञानेन्द्रिपति, विष्णु खरे, कुमार अम्बुज आदि चिर युवा कवि हैं। जम्मू कश्मीर में महाराज कृष्ण संतोषी, निर्मल विनोद, अग्निशेखर, अशोक कुमार, रमेश मेहता, श्याम बिहारी, पवन खजूरिया, राजेश्वर भाखड़ी, शकुन्त दीपमाला, डॉ० राजकुमार, डॉ चंचल डोगरा, मनोज शर्मा, श्याम बिहारी आदि अग्रज कवियों को इस कसौटी पर परखना चाहिए। यह सभी कवि पचपन की उम्र पार कर चुके हैं। इस आलेख में प्रदेश में लिखी जा रही नयी सदी की कविता मेरी प्राथमिकता में रहेगी।

पिछली सदी का अंतिम दशक दक्षिणपंथी ताकतों के उभरने का है। जो आज घिनौनी राजनीति द्वारा सिंचित पोषित होकर अख़लाक आदि के कत्ल पर फल फूल रही हैं। इसने आम हिन्दू मुस्लिम की दुनिया को पहले से भी बुरा बना दिया है। 1990 में कश्मीरी पण्डितों के विस्थापन और 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस को राजनेताओं ने खुलकर भोगा। हिन्दू-मुस्लिम तुष्टिकरण शुरू हुआ। जो अबाध गति से जारी है। अफसोस यह है कि निम्न मध्यवर्ग धर्म का झुनझुना बजा रहा है। लोग इसकी तलवार के आशिक हो गए हैं। मसलोनी और हिटलर के वंशज दुनिया को एक यातनाघर में बदल देने का उपक्रम कर रहे हैं। निजता खत्म हो गई है। हम एक नम्बर बन गए हैं। किसी भी समय हैंग या हैक किए जा सकते हैं। हम फासीवाद के बदले हुए रूप को प्रगति समझने की भूल कर रहे हैं। ऐसे भयावह समय में सच्चा कवि कलाकार और एक्टिविस्ट संघर्षों में लिप्त है। वह इन ताकतों के खिलाफ लिख, बोल कर लड़ रहा है। वह समझता है कि दुनिया को सुन्दर बनाने का सपना मेहनतकशों के साथ होकर ही पूरा हो सकता है। अरुण कमल कहते हैं कि कविता अंतिम मोर्चा है जहां से मनुष्यता के लिए लड़ाई जारी रखी जा सकती है। असली कविता अभी भी चूकी नहीं है। यह बात जम्मू कश्मीर की कविता पर भी लागू होती है।

रीतिकालीन कवि दत्त को जम्मू कश्मीर का पहला हिन्दी कवि माना जाता है। लम्बे अन्तराल के बाद उनकी वीर रस परम्परा से अलग एक नया मोड़ आया। पण्डित नीलकंठ,

जिंदा कौल, पृथ्वीनाथ पुष्प आदि ने रहस्यवाद, श्रृंगार, प्रकृति चित्रण जैसी काव्य प्रवृत्तियों से कविता को आगे बढ़ाया। 1960 के बाद डॉ० ओम प्रकाश गुप्त, देशबंधु डोगरा नूतन, डॉ० ओम गोस्वामी, पद्मासचदेव जैसे कवि सामने आते हैं। गुप्त को छोड़कर अन्य डोगरी में लिखने लगे। साठ से सत्तर के बीच नयी कविता के भाव बोध और शिल्प को पकड़ने का प्रयास हुआ। इस बीच निर्मल विनोद और सुतीक्ष्ण कुमार आनंदम् जैसे कवि छायावादी प्रवृत्तियों को जगह देते हैं। आगे चलकर डॉ० गुप्त, रमेश मेहता और सुभाष भारद्वाज की कविताओं में कमाधिक छायावादी, प्रयोगवादी और प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। अग्रज कवि अशोक कुमार अपने पहले कविता संग्रह की भूमिका में लिखते हैं–'जम्मू कश्मीर में हिन्दी कविता को छायावाद के चंगुल से छुड़ाने की दिशा में सबसे पहला प्रयास प्रोफेसर सुभाष भारद्वाज ने किया– ' वे इसे ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं। यह 1980 की बात है। अशोक कुमार के संग्रह 'डूबे हुए सूरज की तलाश' में भी नयी काव्य प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इसमें वे प्रयोग आग्रही हैं। इन्हीं दिनों ज्योतिश्वर पथिक भी इन्हीं प्रवृत्तियों के साथ लिख रहे थे। रमेश मेहता के 'खुले कमरे बंद द्वार' (1972), और 'तिनका तिनका घोंसला' (1987) कविता संग्रह प्रकाशित हुए। वे अज्ञेय से इस कद्र प्रभावित रहे कि बरसों तक अज्ञेय व्याख्यान शृंखला करवाते रहे। पिछली सदी तक अधिकतर कवियों ने निराला, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, बाबा नागार्जुन, धूमिल आदि की परम्परा से मात्र हिट एंड रन वाला सम्बन्ध रखा। दरअसल हिट एंड रन इनका वर्गबोध रहा।

उन्नीस सौ नब्बे के बाद एक बड़ा बदलाव आता है। कश्मीर से पण्डितों का विस्थापन हुआ। धार्मिक कट्टरता ने पण्डितों से उनके घर छीन लिए। यह एक बड़ी ट्रेजडी थी। कविता के लिए इसे टर्निंग पॉइंट कहते हुए मुझे ज़रा भी खुशी नहीं हो रही। घर और अपनी मिट्टी छोड़ने के दर्द को भुलाया नहीं जा सकता। विस्थापन ने कुछ यादगार कविताएँ दीं। जिहाद और जीनोसाइड के खिलाफ खूब लिखा गया। देश विदेश ने इस कविता और उनके दुःख को अपना समझा। इसी दौरान महाराज कृष्ण संतोषी के 'बर्फ पर नंगे पाँव', 'यह समय कविता का नहीं' और डॉ० अग्निशेखर के 'किसी भी समय' और मुझसे छीन ली गयी मेरी नदी नामक संग्रह आए। इनका मूल स्वर विस्थापन का दर्द और स्मृतियाँ हैं, 'पुल पर गाय' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ देखें–

छींकती है जब भी मेरी माँ/यहाँ विस्थापन में/
उसे याद कर रही होती है गाय...

यहाँ एक टीस है। विस्थापित कवियों में अपनी मिट्टी और पूर्वजों के प्रति गहरा प्रेम और प्रतिबद्धता है, अग्निशेखर लिखते हैं–

मैं लड़ता रहूँगा पिता/स्मृतिलोप के खिलाफ...

पिता, मैं साँस साँस जी रहा हूँ/
गाँव अपना/तुम स्वीकार करो तर्पण।

विस्थापन की कविताएँ लल्लद्यद की नाव सी हैं। ऐसी कविताएँ विश्व कविता में एक स्थान रखती हैं। स्मृतियाँ इस कविता की ख़ास विशेषता रही है। डॉ० अग्निशेखर, महाराज कृष्ण संतोषी, क्षमा कौल की कविताएँ खासकर देखी जा सकती हैं। इनसे अलग सन्दर्भों में जम्मू की मूल कविता में भी पिता, माँ, दोस्तों और कुछ छूटी हुई जगहों की स्मृतियाँ हैं।

1992 में एक बार फिर धार्मिक कट्टरता ने लोकतंत्र की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े किए। बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया। करोड़ों लोगों की भावनाओं का राजनीतिकरन हुआ। आज तक हो रहा है। एक दुखी आदमी दूसरे दुखी आदमी की पीड़ा को अधिक समझ सकता है। जाने क्यों हरे दुखों वाले विस्थापित अग्रज कवि बाबरी मस्जिद विध्वंस पर चुप रहे। वैसे किसी घटना पर नहीं लिखना कवि की अपनी आज़ादी है। मेरा निजी मत है कि जम्मू कश्मीर के सन्दर्भ में इसे नहीं उकेरने को सिर्फ कवि की आज़ादी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

विस्थापितों की कविताएँ अपने दु:ख में मुग्ध हैं। इतनी कि अपने शरणदाता जम्मू के साथ होने वाले राजनीतिक भेदभाव को रेखांकित करने के दायित्व को भूल गई। वैसे जम्मू के मूल कवियों ने भी इस पर न के बराबर लिखा है। जम्मू और कश्मीर दो अलग-अलग खित्ते हैं। इनके बीच संघर्ष और द्वन्द्व है। कुछ कविताएँ इस ओर ध्यान दिलाती हैं। काव्यांश देखें–

यह अलग बात है
पुराण कथाएँ सत्य हो रही हैं।
स्वर्ग चतुर्दिक झण्डे गाढ़ रहा है
धरती हार रही है। ('बच्चे बड़े हो रहे हैं'–कमल जीत चौधरी)

o

देश में यह वह समय है
जब आम पर चिनार उग आए हैं। ('सत्यापन'– कमल जीत चौधरी)

o

ऐसी कविताएँ अपवाद हैं। पर ध्यान रहे यह अपवाद की कविताएँ नहीं हैं, इसी तरह से आम कश्मीरी की पीढ़ा को व्यक्त करने वाले निदा नवाज़ भी अपवाद हैं। पर उनका साहित्य भी अपवाद का साहित्य नहीं है। जनता कहीं की भी हो कवि को उसका प्रतिनिधि होना चाहिए। प्रतिनिधि का अर्थ सिर्फ उसको अभिव्यक्त करने में नहीं है। जनता को स्वार्थान्ध

राजनीतिक या कट्टर ताकतों के चंगुल से छुड़ाकर रास्ता दिखाना भी कवि का दायित्व है। साहित्य का एक अर्थ 'जैसा हो सकता है' भी है। मतलब कि इसमें होने या नवनिर्माण की सम्भावना छिपी होती है। साहित्य की इस शक्ति को समझ कर आगे के रास्ते तय हों।

विस्थापित कवि जम्मू के हक में खड़े नहीं होते। इसे वे सांप-बिच्छुओं की धरती लिखते हैं। एकाध जगह तवी नदी डॉ० अग्निशेखर की संवेदना ज़रूर पाती है। जबकि जम्मू के मनोज शर्मा, कल्याण, कुलविंदर मीत आदि की कविताओं में कश्मीरी शरणार्थियों की पीड़ा व्यक्त हुई। आज भी कुमार कृष्ण, योगिता यादव आदि की कविताओं में चिनार की संवेदनाएँ व्यक्त हो रही हैं। यह नैतिकता की बात है। कश्मीर में रह रहे निदा नवाज़ की दो चार कविताओं में विस्थापित जगह पाते हैं। कश्मीरी पण्डितों की कविताओं में वहां रह गए मुस्लिम न के बराबर जगह पाते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने एक निबन्ध में साहित्य को इतिहास में अधिक प्रामाणिक मानते हैं। यहाँ क्या माना जाए। क्या यह कभी इतने करीब नहीं रहे ? क्या यह कभी सहपाठी या साथी नहीं रहे? इन्हें एक दूसरे की याद कभी नहीं आती ? क्यों ? यह कविता से परे एक राजनीतिक सवाल भी है। राष्ट्रीय पटल पर डॉ० अग्निशेखर और महाराज कृष्ण संतोषी बड़े नाम हैं। उनके हाथों जम्मू की कविता हेतु किसी बड़े संपादन या आयोजन की अपेक्षा की जा सकती थी ? यह बात जम्मू के वरिष्ठ कवियों से पूछी जा सकती है। सवाल यह भी है कि विस्थापित कवियों का कोई उत्तराधिकारी कवि क्यों नहीं है। क्या इनकी नयी पीढ़ी हिन्दी भाषा और कविता से आगे निकल चुकी है। 'फिरन में छुपाए तिरंगा' संग्रह के बाद महाराज कृष्ण भरत कहीं दिखाई नहीं देते। वे अग्निशेखर और संतोषी के बाद की पीढ़ी के कवि रूप में सामने आए थे। फिलहाल विस्थापन की पीड़ा और पुनर्वास की इच्छा को व्यक्त करने वाला कोई उत्तराधिकारी कवि नहीं है। यह एक सपना मरने जैसा है। सवाल अपनी जगह हैं पर मेरी संवेदनाएं आम विस्थापितों के साथ हैं। आखिर घर तो उन्होंने छोड़े हैं-

हम थे
कभी नदी पुत्र
पर आज हम
इतिहास की कीचड़ हो गए हैं।

(महाराज कृष्ण संतोषी की कविता कीचड़ से)

सन 1971 में छम्ब और पाक से विस्थापित हुए लोग भी हैं। उनकी कभी चर्चा नहीं हुई। उनकी आबादी भी लाखों में है। जम्मू के छम्ब विस्थापन की उपेक्षा और कश्मीर विस्थापन के वैश्वीकरण को पकड़ने का प्रयास नहीं हुआ है। विस्थापन में एक चालाक आदमी सत्ता सुख भोगता है। कृष्णपुर मनवाल हो या मुट्ठी कैंप, आम आदमी तम्बू में मरता है। सैंतालिस

के पाक रिफ्यूजी भी एक समस्या है। जो साहित्य में ही नहीं इस देश में भी अपनी जगह नहीं पा सके हैं। जम्मू कश्मीर में एक जगह लद्दाख भी है। रियासत के कवियों की संवेदना इसे प्राप्त नहीं हुई। इसे हिन्दी कविता में भी न के बराबर जगह मिली है। ऐसी अछूती जगहों की ओर ध्यान देना होगा। धार्मिक कट्टरता और धर्म का राजनीतिकरण, भूमि अतिक्रमण, प्रकृति का दोहन, मज़दूरों, किसानों, दलितों और पहाड़ी लोगों का जीवन संघर्ष यहाँ पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त नहीं हुआ है। यह जम्मू की कविता की सीमा रही। आज इस सीमा का अतिक्रमण हो रहा है।

पिछले दिनों हिन्दी अग्रज कवि नरेश सक्सेना से बात हो रही थी। उन्होंने कहा कि किताब नहीं कविता लक्ष्य में होनी चाहिए। इससे सहमत होना होगा। कविता लक्ष्य में होने का अर्थ संघर्ष और सुन्दर दुनिया का सपना लक्ष्य में होना है। इधर युवा रंगकर्मी राजकुमार बहरूपिया के लिखने का पता चला। वे लिखकर छुपा लेते हैं। क्यों ? 'वे कहते हैं कि इतना अच्छा लिखा जा चुका है कि क्या लिखा जाए। यह ठीक है कि खराब लेखन को पेड़ काटने से जोड़कर देखा जा सकता है। पर यहाँ अभी वह स्थिति नहीं आई है कि न लिखने के कारण ढूँढने पड़ें। यहाँ तो हाल फिलहाल ही बहुल रूप में चली आ रही एकपक्षीयता, एकरसता और एकालाप टूटा है। युवा कविता में सवाल प्रमुख हो रहे हैं। अब अधिकतर कवियों में भाव और विचार का अच्छा सन्तुलन है। इनके पास नयी जीवन दृष्टि, राजनीतिक स्तर, मौलिक और टकटके बिम्ब हैं। आगे के सफ़र में इन्हें परम्परा, मुहावरे और भाषा शैली को लेकर सचेत होने की आवश्यकता है।

जम्मू के सन्दर्भ में बताता चलूँ कि कविताएँ छपने के लिए बाहर न भेजना यहाँ की वृत्ति और सीमा है। पिछली सदी तक यहाँ के कवियों और बाहर के संपादकों के एक दूसरे के लिए पूर्वाग्रह भी रहे। जिसके कारण भी जम्मू की कविता बाहर कम पहचानी गई। यहाँ यह भी कहा जाता है कि कोई छपने या पुरस्कृत होने से कवि नहीं हो जाता। इस पर इतना ही कहूँगा कि न छपने या पुरस्कृत होने से भी कोई कवि नहीं हो जाता। वैसे यूँ हिन्दी में ऐसे कवियों की कमी नहीं जिनकी कोई किताब तो नहीं, पर उन्हें पढ़ने लिखने वाले इसलिए जानते हैं क्योंकि उनका लेखन सोशल नेटवर्किंग और पत्र पत्रिकाओं में उपलब्ध होता रहता है। सोशल नेटवर्किंग पर उपलब्ध लेखन हिन्दी के लिए आश्वस्तिपरक है। इसने नए पाठक बनाए हैं। मेरा अटल विश्वास है कि कवि नहीं पाठक पैदा किए जा सकते हैं। इस बात को समझकर यहाँ के कवियों को ऐसे मंचों का प्रयोग अधिकाधिक करना चाहिए। लिखकर अलमारी में बंद कर लेना या जम्मू के मंचों को ही संसार समझना भारी भूल होगी।

1990 से लेकर 2005 तक विस्थापन की कविता प्रमुख रही। एक तरह से पूरे परिदृश्य को हाईजेक करके इस कविता ने एकाधिकार बनाए रखा। खासकर अंतिम दशक में जो दूसरा लिखा गया उसका महत्त्व किसी को नहीं दिखा। उसकी प्रवृत्तियाँ गौण हो गईं। जबकि इन

सालों में विस्थापन से इतर भी लिखा गया।

नयी सदी में अरुण बजाज कृत 'सच तो अब भी यही है' (2002) और कल्याण कृत 'समय के धागे' (2003), ने नयी भाव भूमि के कारण ध्यान खींचा। कल्याण ने खासकर लोक के श्रम सौन्दर्य और आर्थिक विषमता को अभिव्यक्त किया। हिन्दी कवि विजेंद्र ने उनके लोक सौन्दर्य को एकाध जगह रेखांकित किया। सहजता इनकी पहचान रही है। इधर वे अपने स्वभाविक मुहावरे से कुछ दूर हुए हैं। मेरा मानना है कि कविताएँ मसाला फिल्मों की तर्ज पर नहीं लिखी जानी चाहिए। अग्रज कवि मनोज शर्मा कृत 'बीता लौटता है' (2005) नामक संग्रह ने सामूहिक सपनों को नए आयाम दिए। इस बीच मनोज और कुछ साथियों ने ज़मीन पर भी काम किया। पहले से लिख रहे कुंवर शक्ति सिंह, कल्याण आदि ने इसी ज़मीन पर उड़ान भरी। मनोज शर्मा द्वारा लिखे जा रहे 'फिलहाल' नामक साप्ताहिक स्तम्भ, संस्कृति मंच जम्मू के कार्यक्रम और नित्य शाम की बैठकों ने यहाँ की कविता को नई दिशा दी। बताता चलूँ कि वे भले पंजाब के रहने वाले हैं, पर डेढ़ दशक से अधिक समय तक उनका कार्य क्षेत्र जम्मू रहा है। उन्हें यहाँ का ही गिना जाता है।

अशोक कुमार द्वारा संकलित जम्मू के प्रतिनिधि काव्य संग्रह 'तवी जहां से गुज़रती है' (2010) का संज्ञान डॉ० नामवर सिंह ने लिया। इसकी भूमिका में अरुण कमल ने ज़ोर देकर इस युवा कविता के राजनीतिक स्वर को रेखांकित किया। मुंबई से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका सृजन सन्दर्भ के मनोज शर्मा द्वारा सम्पादित अप्रैल-जून 2010 के जम्मू विशेषांक ने यहाँ की युवा अभिव्यक्ति को राष्ट्रीय मंच दिया। लेखक व धरती के सम्पादक शैलेन्द्र चौहान द्वारा अभिव्यक्ति के अंक 37 जुलाई 2011 में जम्मू के पांच कवियों की विशेष प्रस्तुति भी एक खाका खींचती है। इस स्तम्भ में उन्होंने कुमार कृष्ण शर्मा, अमिता मेहता, डॉ० शाश्विता, कमलजीत चौधरी, शेख मोहम्मद कल्याण की कविताओं पर छोटी-छोटी टिप्पणियाँ लिखीं। इस बीच महाराज कृष्ण संतोषी का 'वितस्ता का तीसरा किनारा' (2005), अग्निशेखर का 'जवाहर टनल' (2008) नामक संग्रह आते हैं। इनमें विस्थापन और स्मृतियाँ के साथ साथ राजनीतिक चेतना को देखा जा सकता है। डॉ० अरुणा शर्मा का 'पृथ्वियाँ' (2008), श्याम बिहारी का 'मैं समुद्र ही हो सकता था' (2008), कुलविन्दर मीत का 'नदी रोशनी की' (2008) नामक संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें क्रमशः समर्पण, व्यष्टिपरकता व राजनीतिक और क्रांति का स्वर दिखाई देता है। इसी बीच अनिला सिंह चाढ़क का कविता संग्रह 'नंगे पाँव ज़िन्दगी' रिश्तों की संवेदना लेकर आया। जम्मू की हिन्दी कविता में लगभग 2006-07 में कुमार कृष्ण शर्मा, योगिता यादव आदि युवाओं के रूप में नया स्वर गूंजता है। प्रतिनिधि रूप में यह नए सपनों को लेकर लिखी जा रही कविता का सामने आना था। कहानीकार के रूप में तो योगिता ज्ञानपीठ के युवा पुरस्कार से सम्मानित होकर खूब जानी ही जा रही हैं। वे कवि रूप में भी प्रकाशित करती हैं। कुमार कृष्ण अपनी बेबाक राजनीतिक कविताओं से जम्मू

के साहित्यिक परिदृश्य को नए आयाम दे रहे हैं।

पिछले दो सालों में यहाँ कुछ महत्वपूर्ण कविता संग्रह आए हैं–मनोज शर्मा का 'एक ऐसे समय में' (2015), निदा नवाज़ का 'बर्फ और आग' (2015), अशोक कुमार का 'कस्स गुमां' (2014), डॉ० राजकुमार का 'खून का रंग तो है' (2014) महाराज कृष्ण संतोषी का 'आत्मा की निगरानी में' (2015) और कमल जीत चौधरी का 'हिन्दी का नमक' (2016)

इन पर एक नज़र–

मनोज शर्मा एक महत्वपूर्ण कवि हैं। इनका शब्द संस्कार जनान्दोलनों के सामूहकि सपनों से पैदा हुआ है। यही कारण है कि वे किसी तरह के झुण्ड का झंडा लेकर नहीं चलते। भीड़ में एकांत के लिए लड़ते हैं। मनोज शर्मा गँवई चाल के कवि हैं। इनकी कविताई अंगूठों से धरती मापती है। जीवन संघर्ष को प्रेरित करती इनकी कविताएँ हथियार नहीं आदमी का विवेक बनती हैं। ग्रामीणबोध से भरी इनकी भाषा पंजाबीयत सरदारी ठोकती नज़र आती है। 'ऐसे समय में' प्रेम, स्त्री संवेदना और निराशा में डूबे आदमी की अभिव्यक्ति है। पहले संग्रह की अपेक्षा वे यहाँ कम राजनीतिक हैं, पर प्रखर उतने ही हैं, समीक्षकों की सलाना सूचियों से परे रहकर भी यह हिन्दी का महत्वपूर्ण संग्रह है।

'बर्फ और आग' कश्मीर के जीवन अनुभव का संग्रह है। यहाँ पक्ष नहीं पीड़ा को प्रामाणिक देखना होगा। पीड़ा ही कवि का पक्ष है। जबकि यहाँ अन्य कवियों से भी स्पष्ट राजनीतिक पक्ष की अपेक्षा है। जिससे कवि बचते रहे हैं। बचना हल नहीं है। कश्मीर के इतिहास को समझना होगा। पूर्वाग्रह छोड़ने होंगे। यहाँ दशकों से आम आदमी का अंगूठा और छाती इस्तेमाल हो रहे हैं। आम आदमी के हनन होते मानवाधिकारों पर खुलकर बात होनी चाहिए। सत्ताओं की पोल खोलनी होगी.. निदा नवाज़ पिछली सदी के अंतिम दशक में अपने पहले कविता संग्रह 'अक्षर अक्षर रक्त भरा' (1997) से सामने आते हैं। जब पण्डितों के विस्थापन के बाद वहां हिन्दी का कोई नामलेवा नहीं रहा। निदा ने भाषा और अपने परिवेश के प्रति एक जिम्मेवारी समझते हुए हिन्दी में लिखना शुरू किया। वे इसका श्रेय भी लेते हैं। अगर वे उर्दू में लिखते तो खूब जाने तो जाते पर निश्चित ही उनके लिए दिक्कतें बढ़ जातीं। जब कश्मीर में (पूरे देश में भी) सड़कों और ऐतिहासिक जगहों के नाम बदले जाने के उपक्रम हो रहे हैं। जब तालिबानी फतवों को जारी किया जा रहा है। जब राजनीति सिर्फ राज करने का पर्याय बन गई है। तब वे वोट और जेहाद से उपजी पीड़ा को अपनी कविताओं में जगह देते हैं। इनकी कविता कश्मीर की बंद गलियों, चौराहों और सड़कों की कविता है। जहाँ खून, चप्पलें, पोस्टर, नकाब, झण्डे और बन्दे आठवें रंग से पुते हैं। इस रंग की चालाकी का गिरेबां वे पकड़ नहीं पाते। वे क्रेकडाउन, हड़ताल, कर्फ्यू, आँसूगैस, गोली, पत्थर, ज़ख्म, फैले खून, उड़ते पँख बिखरी चप्पलों, नकाब के दृश्य दिखाते हैं। इनके बिंबों, प्रतीकों

और उपमाओं में दोहराव के आक्षेप लगाए जा सकते हैं। मौलिक गढ़ने के चक्कर में वे कविताई से दूर जाते हैं। कहीं कहीं पर सम्प्रेषणीयता भंग होती है। निदा से इससे आगे की कविताई की उम्मीद है। कविता जितनी भी जीवन के लिए हो पर उसे अपनी कला में कविता ही होना चाहिए। अभी उन्हें भाषा और शब्द चयन को लेकर काम करना होगा। इस पर भी वे बहुत ज़रूरी कवि हैं। आखिर वे कश्मीर के कवि हैं। प्रतिरोध के कवि हैं। अशोक कुमार कम लिखते हैं। छपते लगभग नहीं हैं। तीन दशकों बाद 2014 में उनका दूसरा संग्रह 'कस्स गुमां' आया है। इसमें कुछ अच्छी कविताएँ हैं। वे विचार की उपेक्षा भाव को महत्व देते हैं। इनका कहन सरल है। शीर्षक कविता के अतिरिक्त वे ज्यादातर कविताओं में सहजता से बात कह जाते हैं। इनकी कविताओं में मध्यवर्गीय समझ देखी जा सकती है। राजनीतिक चेतना भी इसी सीमा के साथ आती है। वे जम्मू वि०वि० के हिन्दी विभाग द्वारा संस्थापित व संचालित संस्था 'युहिले' की वैचारिक सीमा के प्रति प्रतिबद्ध रहे हैं। यह इनकी पहचान और सीमा है। दोस्त शीर्षक और मृत्युबोध पर लिखी इनकी कविताएँ खास ध्यान खींचती हैं। एक उदाहरण देखें–

क्या इस तरह चला जाता है आदमी/जैसे टंकी भरने पर/
फालतू पानी बह कर चला जाता है...

हिमाचल मूल के डॉ० राजकुमार भी साढ़े तीन दशकों से जम्मू में हैं। उन्हें जम्मू का वरिष्ठ कवि, कहानीकार और समीक्षक माना जाता है। अपने नए कविता संग्रह में उनका स्वर बदला है। वे लिखते हैं–कैसी सदी है/डर/आदमी से बड़ा है/खड़े हो रहे रौंगटे/साहस बौना पड़ा है....

यहाँ जन का दुःख दर्द और निराशा भी है, राजनेताओं के प्रति खीझ और आक्रोश का स्वर है। उनके साथ एक आशा भी है–

'फिर भी गनीमत है/अगली सुबह/सूरज निकल आता है।'

महाराज कृष्ण संतोषी हिन्दी के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके अभी आए संग्रह आत्मा की निगरानी में उन्होंने अपनी सीमा का अतिक्रमण किया है। इस पर हिन्दी जगत में बात हो रही है। इसमें प्रतिरोध, आत्मस्वीकार, सच्चाई और मानवीय कमजोरियां कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं। प्रतिरोध का एक उदाहरण देखें–

इस दुनिया में/जहाँ हर कोई/अपना गुब्बारा फुलाने की/
प्रतिस्पर्धा में व्यस्त है/मैं चाहता हूँ/होना/एक छोटी सी पिन....

आत्मस्वीकार का एक उदाहरण देखें–

' अभी भी जिन्दा है मेरे भीतर/गुरिल्ला छापामार/

बेहतर दुनिया के लिए लड़ने को तैयार/
पर एक कायर से/उसकी दोस्ती है/जो उसे यही समझाता रहता है/
दूसरों के लिए लड़ोगे/तो मारे जाओगे/
सच कहता हूँ/यही है मेरे जीवन की व्यथा/
सपना देखा उस गुरिल्ला ने/जीवन जिया इस कायर ने।

इनका यह कविता संग्रह सिर्फ विस्थापन के लिए ही नहीं जाना जाएगा।

'हिन्दी का नमक' अनुनाद सम्मान से सम्मानित कमल जीत चौधरी का पहला कविता संग्रह है, इस संग्रह के साथ ही उनकी जिम्मेवारी बढ़ गई है।

इन संग्रहों के अतिरिक्त 2014 में संजीव भसीन का 'कब सुबह होगी' और सतीश विमल का 'काल सूर्य' नामक संग्रह आए। संजीव भसीन की कविताई में जन सरोकारों के होने का प्रयास है। 'लड़कियाँ' शीर्षक से लिखी अपनी कविताओं से उन्होंने अपनी ख़ास पहचान बनाई है। भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के लिए भी वे जाने और क्रिटिसाइज़ किए जाते हैं। 'भेड़िये' शीर्षक कविता में वे शोषकों को सर्वव्यापक बताते हैं। दृष्टि सम्पन्नता और भावों की स्वाभाविकता के लिए उनसे और प्रयास की अपेक्षा की जा सकती है। सतीश विमल कविता में अन्तर्मुखी हैं। वे उसी को कविता मानते हैं, जिसके रेफरेंस न ढूँढने पड़ें। राजनीतिक स्वर वाली कविताएँ उन्हें प्रभावित नहीं करती। वे बिल्कुल गैर राजनीतिक कविताएँ लिखते हैं। वे कहते हैं कि इतनी तो राजनीति है यहाँ पर कुछ तो इससे अछूता रहे। इनकी कविताएँ भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक सोपानों पर तो ले जाती हैं, पर वहां बाहरी जीवन के ज़रूरी सवाल नहीं मिलते। वे अच्छे मगर आम पाठक के कवि नहीं हैं। वे रेडियो स्टेशन में काम करते हैं। अपनी धुन में वे कश्मीर में रहकर लिख रहे हैं यही उनकी पहचान है।

इधर हिन्दी में छन्दबद्ध कविता लगभग खत्म हो गई। रियासत में कुछ कवि अभी भी अच्छी छन्दबद्ध कविता लिख रहे हैं। निर्मल विनोद वरिष्ठ कवि हैं। चार दशकों की उनकी काव्य यात्रा छन्दबद्ध कविता की धरोहर है। वे प्रकृति के सशक्त भावों वाले कवि हैं। गीत, दोहे और मुक्तछंद में कविताएँ लिख रहे हैं। इनका 1996 में प्रकाशित हुआ नवगीत संग्रह 'टूटते क्षितिज के साए' में बिल्कुल अभी पढ़ा। इनके यहाँ वैचारिक सीमा है। इसी में रहकर वे भूख, गरीबी, टूटते आदमी और मूल्यों की बात करते हैं, 'तेल के लिए धन कविता' की यह पंक्तियाँ देखें–

माटी के दीपों में तेल के लिए न धन
देश है स्वतन्त्र किन्तु घुटता है कुंठित मन

कैद में अँधेरे के उत्स हैं प्रकाश के
खड़े घिरे घेरे में हम किसी विनाश में।

कपिल अनिरुद्ध भी छन्दबद्ध कविता लिखते हैं। लय, गेयात्मकता और संगीतात्मकता उनकी विशेषता है। वे अच्छी ग़ज़ल भी कहते हैं। वे अध्यात्म, दर्शन और भारतीय संस्कृति के कायल हैं। अभी कोई संग्रह नहीं आया है। सुनील कुमार का 'प्रेम पवन की पहली थपकी' (2004) एक रोमानियत लेकर आया था। उस रुमान से वे आगे नहीं बढ़ पाए। इनके यहाँ वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं है। इधर उन्होंने कुछ ग़ज़लें कहीं हैं। उनका एक शेर, देखिये–

आग लिखता या आग सा लिखता
जल रहा शहर था मैं क्या लिखता।

जम्मू के कवि सुधीर महाजन का अभी कोई संग्रह नहीं आया है। वे अच्छे कवि माने जाते हैं। इनकी कविताओं में बाज़ार की विसंगतियां और बदलते हुए जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। वे मिनरल वाटर से लेकर ओबिचरी तक में आदमी को देखते हैं। वे गहरा दर्शन नहीं आधुनिक मानव का फलसफा जिजीविषा के साथ व्यक्त करते हैं। वे किसी विशेष विचारधारा के नहीं है। इनकी 'सिगरेट की आत्मकथा', 'दृष्टिकोण', 'आत्मग्लानि' और 'सार' कविता को इस रूप में देखा जा सकता है। माँ पर इनकी कुछ सुन्दर कविताएँ हैं। उनका आत्मस्वीकार देखें–

यूँ तो/मेरे घर के पीछे/पगडण्डी भी है/
किन्तु कभी कभार ही पहुँच पाती है/
कविता मेरे घर तक..

इसी में आगे उनका विश्वास देखने लायक है–

घर छोड़ कर कहीं जा भी नहीं सकता/
कविता कभी भी मुझ तक पहुँच सकती है/
कभी भी...

जम्मू और कश्मीर को अलग अलग बांट कर अपनी-अपनी राजनीति चमकाई जाती है। यह और भी घातक है जब मतदाता भी जनप्रतिनिधियों को नहीं अपने-अपने धर्म को प्राथमिकता दें। यहाँ अब ऐसा होने लगा है। जबकि कश्मीर समस्या को देखते हुए तीन खित्तों में परस्पर विश्वासबहाली और संवाद जरूरी है जो कि होने नहीं दिया जाता। ऐसे समय में कुमार कृष्ण जैसा कवि आश्वस्त करता है। उनका अभी कोई संग्रह नहीं आया है। 'उसका जिक्र' नामक कविता में वे दोनों खित्तों के बीच की खाई पर पुल बांधने का काम करते

हैं। वे धार्मिक कट्टरता पर प्रहार करते हैं। 'जीने के सौ विकल्प' में अंधी राष्ट्रभक्ति जैसे मुद्दे को मार्मिक तरीके से व्यक्त किया है। उनकी 'आई० डी० कार्ड' एक व्यक्ति पहचान के संघर्ष की कविता है। 'मैं अर्जुन हूँ' के माध्यम से पथ भटक चुके अपने गरु के विरोध में खड़ा होने का साहस रखते हैं। वे अति आधुनिक भावबोध के कवि हैं। 'मुन्नी बदनाम हुई' जैसी कविताओं में उन्होंने मौलिक बिंबों का इस्तेमाल किया है। इनकी ताकत राजनीतिक चेतना, प्रतिरोध और गहरी संवेदनशीलता है। जबकि सपाटबयानी, गद्यात्मकता और संवाद शैली इनकी विशेषता और सीमा दोनों हैं। आज फासीवादी शक्तियों से खतरा है। पूँजीवादी ताकतें, साम्प्रदायिक झुण्ड इसकी सहयोगी शक्तियां हैं। कुछ कवि साम्प्रदायिक और कट्टर ताकतों का पर्दाफाश कर रहे हैं। देश हित में ऐसे खतरों को उकेरा जाना ज़रूरी है। जम्मू कश्मीर की कविता में जनपक्षधरता और प्रबल राजनीतिक स्वर है। यह संवाद पैदा करने की क्षमता रखती है। जम्मू कश्मीर के युवा कवि ने किसी पारम्परिक प्रभाव में आकर प्रतिरोध की संस्कृति को नहीं रचा है। वह जानता है कि कविता का मूल उद्देश्य क्या है। प्रतिरोध का यह अभी उभरा तेवर आने वाले दिनों में हिन्दी में ख़ास जगह रखेगा।

सच्ची कला जीवन के पक्ष में खड़ी रहती है। किसी भी समय जीवन के पक्ष में बात करना आसान नहीं है। इस बात को कितनी ख़ूबसूरती से संतोषी अपनी एक कविता में कहते हैं–

जाल बुनना एक कला है/
मकड़ी ने तितली से कहा//तितली ने सुना
सोचा/फिर कहा
कला से मिलती है मृत्यु/और उड़ गई।

अभिव्यक्ति के कतरों से चिर युवा पूर्वज कवि मुक्तिबोध ने बहुत पहले से आगाह कर दिया था। यहाँ की कविता जोखिम उठा रही है। युवा कवियों में बोल्ड राजनैतिक स्टैंड देखे जा सकते हैं। कविता लिखने के खतरे हैं। सत्ता गोली से नहीं कविता से होकर आए विचार से डरती है। अभिव्यक्ति के खतरे उठाते रहना चाहिए। एक्सपेरिमेंट करते रहना चाहिए। सत्ता से टकराते हुए हक, न्याय, मानवाधिकारों और आम आदमी की भावनाओं को व्यक्त करती कविता सबको सुनानी चाहिए। यह भी हो सकता है कि राजा का सैनिक गोली चलाने की जगह अचानक वाह कह उठे। ताली बजाकर इसका स्वागत करे। जी हाँ!! यह हो सकता है। कविता की यही ताकत है। देखें शक्ति सिंह के इस कवितांश पर आपकी क्या प्रतिक्रिया रहती है–

सरहद पर बीड़ियां बदलते/
दो किसानों की खातिर/फ़ैज़ की ग़ज़लों लाहौर की गलियों की ख़ातिर/
अगर मैं कह भी दूं–/पाकिस्तान ज़िंदाबाद/

तो लोगों को क्यों लगे कि मैंने/भारत को कोई गाली दी है।

०

शक्ति सिंह की कविताओं में विद्रोह की भावना है। वे कहीं कहीं बहुत लाउड हैं। गृहयुद्ध का आह्वान करते हैं। इस तरह का स्वर कल्याण, कुमार कृष्ण और कुलबिंदर मीत के संग्रह में मिलता है। पिछले आठ साल से मीत का कुछ भी लिखा हुआ सामने नहीं है वे विदेश चले गए हैं। 'बादलों में आग' कविता में कल्याण लिखते हैं-

आओ तुम भी आओ/वक्त आ गया है कि /
हवा का रुख पहचान/बादलों में आग भर दें...

०

प्रेम के बिना कैसा सपना, कैसा विद्रोह, जम्मू की युवा कविता में सिर्फ प्रतिरोध, क्रांति और राजनीतिक स्वर ही नहीं है बल्कि यहाँ प्रेम भी पूरी शिद्दत और गहराई से उतरा है। एक से बढ़कर एक प्रेम कविताएँ यहाँ मिल जाएँगी। नवोदित कवियों की प्रेम कविताओं में भी राजनीतिक चेतना है, यह सुख़द है।

इधर पहाड़ी के युवा कवि अंतरनीरव ने भी हिन्दी में कुछ राजनीतिक कविताएँ लिखीं हैं। इनमें व्यंग्य का पुट है। राजनीतिक हुए बिना कोई सच्चा कवि नहीं हो सकता। कबीर, ब्रोत्लेत ब्रेख्त, लोर्का, नाजिम हिकमत, फैज़ अहमद फैज़, गोरख पाण्डेय, धूमिल, अवतार सिंह पाश, बाबा नागार्जुन आदि आज सबसे ज्यादा इसलिए याद आते हैं क्योंकि आज जनतांत्रिक, और मानवीय मूल्यों को खतरा है। अग्रज श्रीकांत शर्मा जी के शब्दों में न बचने की चाह रखने वाला ही कुछ रच सकता है। कोई ऐसा ही कवि पूछेगा या लिखेगा कि एक सौ तीन देशों में अमेरिका के सात सौ आठ सैनिक शिविर क्यों हैं ? लोकतंत्र में लोक कहाँ हैं ? स्त्री, दलित, किसान, मजदूर का क्या हाल है ? घोड़ा और छाती क्यों इस्तेमाल हो रहे हैं ? कश्मीर, पूर्वभारत नक्सलवादी क्षेत्रों में कब तक घिनौनी राजनीतिक चालें खेली जाएँगी ? धरती का लोह छड़ों से बलात्कार कौन कर रहा है ? देश का खनिज कहाँ जा रहा है। साम्प्रदायिकता की जड़ें कहाँ हैं ? दस-दस देशों की नागरिकताएँ किसके पास हैं ? अपने ही देश में नागरिकता से लोग वंचित क्यों हैं ? सवाल और भी हैं। इनसे जूझे बिना कोई भी कवि/लेखक बड़ा भले हो जाए पर सच्चा कवि/लेखक नहीं हो सकता। ऐसे सवालों से जम्मू के युवा कवि और कविताएँ टकरा रही हैं। जम्मू कश्मीर में अपने अपने सच हैं। मनोज शर्मा की लोक नायक मियां डीडो को समर्पित कविता में जबरदस्त व्यंजना है। अंतिम पंक्तियाँ देखें-

और राजा तो

कट जाने पर एकदम बनवा लेते होंगे
नया पतंग
पर, उनसे पेंच कौन लड़ाता होगा।

यह कविता सवाल में चेतावनी दे रही है। सत्ता से टकराने वाले पैदा होते रहेंगे। विस्थापित अग्रज कवि श्याम बिहारी का भी एक सवाल है–

अक्सर मेरे दांतों में/फँस जाता है कोई दाना/न चबता है न निकलता है/
जैसे...वीरप्पन/जैसे...काबुली जहाज़/जैसे...कश्मीर/
मेरे मुँह में यह दांत किसके हैं।

एक सवाल ऐसा भी–

शहीद होने के जज़्बे से
कहीं अच्छा होता है/यह जान लेना कि/
किसके लिए और क्यों शहीद हुआ जाए। (कृष्ण कुमार शर्मा का)

जम्मू कश्मीर की युवा कविता जनतांत्रिक मूल्यों की पहचान करती है। जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्ष करते हुए यह सत्ता का कालर भी पकड़ लेती है। आज देशभक्ति और देशद्रोह के प्रमाणपत्र बांटे जा रहे हैं। एक बड़े वर्ग को रिजेक्ट किया जा रहा है। घृणा की यह वृत्ति घातक है। मीडिया की भूमिका इसमें सबसे अधिक घिनौनी है। राष्ट्रीयता के झंडेवाद में सबसे अधिक हनन राष्ट्रीयता का ही हुआ है। राष्ट्रवाद का परचम फहराने वाले यह बताएँ कि राष्ट्रभाषा का क्या हाल है ? मोर कहाँ नाच रहा है ? जंगल कहाँ गए ? कमल कहाँ पर खिले ? तालाब किसने भर दिए हैं ? वाघ कहाँ जा रहे हैं ? हाकी से कौन खेल रहा है। ऐसा क्यों है कि केवल राष्ट्रगीत अथवा राष्ट्रध्वज के लिए शोर मचाया जाता है। राष्ट्रीय पर्व मज़ाक बनकर रह गए हैं। यहाँ की कलम ऐसे ज़रूरी विषयों को छू रही है।

कविता में कटाक्ष और अच्छा व्यंग्य जनता की कविता को ताकत देता है। यहाँ इधर राजनीतिक स्वर वाली कविता में गढ़े हुए ईश्वर, साम्राज्यवादी अमेरिका के अतिरिक्त दिल्ली पर जबरदस्त व्यंग्य मिलते हैं। अधिकतर व्यंग्य कविताएँ प्रतीकात्मक हैं। इनमें व्यंग्य एक बिट/चुटीले अंदाज़ में आता है। यहाँ की कविता हर तरह की सत्ता का प्रतिपक्ष रचती है। यह मठाधीश आलोचकों और कवियों को भी कठघरे में खड़ा करती है। व्यंग्यकार कवि माने जाने वाले पवन खजूरिया लिखते हैं–

सुबह ये गाँधीवादी होते हैं
रात को क्लब में रोमियो बने होते हैं।

o

धँसी हुई आँखें/ढोती परम्परा/पिचके हुए गाल/बजाते ताल/
चरमराती हड्डियाँ/जैसे/होली और बैसाखी का/डांडिया
बिल्ला लगा है–
वीर भोग्या वसुन्धरा।

इनके यहाँ जनपक्ष वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं है। कहीं कहीं वे प्रभावित करते हैं पर आमतौर पर उनका व्यंग्य सतही होकर हास्य और मनोरंजन बन जाता है।

लेखक का कार्यक्षेत्र, परिवेश और व्यक्तित्व उसके लेखन में दिखना एक अतिरिक्त विशेषता है। इससे विश्वसनीयता बढ़ती है। जम्मू के कुछ कवियों के लेखन में इनका कार्यक्षेत्र झलकता है। कुछ कवियों की कविताओं में उनकी आजीविका का कार्यक्षेत्र नहीं भी दीखता। इसे दो तरह से देखा जाना चाहिए। एक तो यह कि कविता ही उनका कार्यक्षेत्र है जो कि कम है। दूसरा यह कि कवि अपने पेशे और कविता को मिक्सअप नहीं करते हैं। [यह कला है]। कार्यक्षेत्र भले न दिखे पर अपने लोक, परिवेश, भूगोल और बोली के प्रभाव से जम्मू कश्मीर की कविता पहचानी जा सकती है। भाषाएं किसी भी समाज की पहचान होती हैं। ये संस्कृति की संरक्षक होती हैं। जन भाषाओं के प्रति दायित्व निभाये जाने चाहिए। आज अंग्रेजी भाषा सत्ता की संरक्षक बनकर खड़ी है। यह वर्ग भेद भाव को बनाए रखने में बड़ी भूमिका निभा रही है। आर्थिक प्रगति और अंग्रज़ी के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। रोजगार संसाधनों के उचित उपयोग से पैदा होता है न किसी भाषा विशेष से। स्विटज़रलैंड, नीदरलैंड, जर्मनी, जापान, स्वीडन, स्पेन, दक्षिण कोरिया, कनाडा, इटली, ग्रीस, अमेरिका, ब्रिटेन, इस्त्रायल आदि समृद्ध देश शिक्षा और सरकारी कामों के लिए देसी भाशा को प्राथमिकता देते हैं। जबकि अंगोला, यूगांडा, तंजानिया, माली, नाईजीरिया आदि उपनिवेश रह चुके अति गरीब देश औपनिवेशिक भाषा में अपने सरकारी काम काज करते हैं। आम भारतीय ने भी औपनिवेशिक भाषा अंग्रेज़ी को तरक्की का पर्याय मान लिया है। इसके पीछे हीन भावना भी है। यहाँ अंग्रेज़ी बोलने वाले को बुद्धिमान और पढ़ा लिखा समझा जाता है। किसी के पास इतना अवकाश नहीं कि इतना समझ सके कि शोध, ज्ञान, विज्ञान और विचारों का भाषा से कितना भर सम्बन्ध होता है। ऐसे में कवि/लेखकों का दायित्व है कि वे शोषकों की पोल खोलें। कोलोनियल एजेंडे के सामने डटी यह पंक्तियाँ देखें–

मिठास के व्यापारी
मेरी जीभ
तुम्हारा उपनिवेश नहीं हो सकती
यह हिन्दी का नमक चाटती है। ('हिन्दी का नमक'–कमल जीत चौधरी)

कुमार कृष्ण शर्मा इन दिनों अंग्रेज़ी के पत्रकार हो गए हैं, पर वे मजबूती से हिंदी के

पक्ष में खड़े हैं। इसका एक उदाहरण देखें–

वह अंग्रेजी बोलता है/मैं नहीं डरता
वह अंग्रेजी खाता पीता है/मैं नहीं डरता/
मैं डर जाता हूँ/
जब वह हिन्दी के हाथी पर/
अंग्रेजी का महावत चाहता है।

देशी भाषाओं की पैरवी करता हुआ भी यह कहूँगा कि जिस अंग्रेज़ी में आम आदमी का पक्ष हो, जो सत्ता की पोल खोले, जिसमें सवाल उठ रहे हों, उससे कोई विरोध नहीं, मेरे लिए भाषा नहीं अधिकाधिक समता ज़रूरी है। इधर के सालों में शिक्षा के अंग्रेज़ीकरण, बाजारीकरण और निजीकरण ने आम आदमी की दिक्कतें बढ़ाई हैं। बच्चों के खेल छीनकर प्ले वे स्कूल आ गए हैं। सरकारी स्कूल बंद हो रहे हैं। रियासत में शिक्षा व्यवस्था का बुरा हाल है। इस समस्या पर कुछ अच्छी कविताएँ मिल जाएंगी। यह रोक लिए जाने का समय है। किसको कहाँ रोक लिया जाएगा कुछ पता नहीं। विश्व बन्धुत्व और वासुदेव कुटुम्बकम के बीच बीज़े को तरसते लोग हैं। आदमी का फिर भी कभी लग जाता है पर जानवरों के लिए सारे रास्ते रोक दिए गए हैं। जम्मू कस्मीर की कविताओं में भारत पाक सीमावर्ती लोक दिखाई देता है। यह कविता नक्शे की सीमा पार कर जाती है।

डॉ० अग्निशेखर लिखते हैं कि सिर्फ दीवारों पर लिख देने से भारत कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक नहीं हो जाता। अखण्डता दिखाने भर को रह गई है। तरह तरह के इज़्म हम पर हावी हो रहे हैं। जाति और धर्म शोषकों का सबसे अचूक हथियार हैं। निम्न बानगी की व्यंजना देखें–

ब्राह्मण प्रतिनिधि सभा की रैली/राजपूत सम्मेलन
दलित महासभा/महाजन समाज की कॉन्फ्रेंस/मुस्लिम जमात की बैठक...
शहर का मुख्य चौराहा/इन सभी बैनरों से भरा पड़ा है–
इन्हीं बैनरों की छाँव तले/
दूध और निम्बू/तरबूज और चाकू/एक साथ बिक रहे हैं। (कुमार कृष्ण शर्मा)

सत्ता विभिन्न माध्यमों से अन्धविश्वास और धार्मिक उन्माद फैला रही है। पूरी दुनिया में वैज्ञानिक और तार्किक जीवन का प्रचार प्रसार करने वाले कत्ल किए जा रहे हैं। नरेन्द्र दाभोलकर, अभिजित रॉय आदि इसका उदाहरण हैं। ब्राह्मणवाद की बली चढ़े रोहित बेमुला की त्रासदी को भी सभी जानते ही हैं। ऐसे ही चले परिदृश्य में जम्मू कश्मीर की हिन्दी कविता से और उपेक्षा की जा सकती है।

पिछले दस सालों में डेढ़ लाख किसानों ने आत्महत्या की है। अभी भी इस देश को कृषिप्रधान ही कहा जाता है। यह शर्मनाक है। बीस करोड़ लोगों के पास घर नहीं है। धर्मस्थान बढ़ते जा रहे हैं। प्रदेश को भी मंदिरों का शहर कहा जाता है। मजदूरों को हर सुबह साम्बा, बड़ी ब्राह्मणा, गंग्याल आदि जगहों पर दिनभर के लिए बिकने को तैयार खड़ा देखा जा सकता है। अफ़सोस कि सभी को दिहाड़ी नहीं मिलती। इसी तरह से आए दिन हड़ताल और बंद से जनजीवन प्रभावित होता है। बंद पर यहाँ कुछ अच्छी कविताएँ मिल जाएँगी। एक बानगी देखें–

शहर में बंद है...
वे गुब्बारे रामदीन नहीं बेच पाया/भरे थे जो उसने/
उस फूँक से/जिसने सामने दिखती उसकी पसलियों में/
रबर-सा-खिंचाव ला दिया था। (कल्याण के समय के धागे कविता संग्रह से)

मजदूरों के जीवन स्तर के बारे में कोई नहीं सोचता। ऐसे में कवियों का दायित्वबोध क्या है ? किसान और मज़दूर पर छिटपुट कविताएँ ज़रूर मिलती हैं। किसान या मज़दूर दिवस पर इनके श्रम सौन्दर्य को रेखांकित करने वाली कविताएँ पर्याप्त नहीं हैं। कवियों को इसके लिए डी क्लास भी होना होगा। एक समय जम्मू में कविता पोस्टर जैसी परम्परा भी चली थी। कुछ कवि नुक्कड़ में हिस्सा लेते थे। लोक मंच जम्मू कश्मीर जैसे सांस्कृतिक संगठन इसके लिए कुछ ज़मीनी काम कर सकते हैं। वर्गबोध कविताई के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

बर्जनिया वूल्फ ने लिखा है कि 'स्त्री को लिखने के लिए एक कमरा चाहिए' इस कमरे को स्त्री अभी भी पा नहीं सकी। औरत जन्मजात कवि होती है। अपने कवि को पन्ने पर उतारना उसके लिए कभी भी किसी भी समय में आसान नहीं रहा। वह लिख रही है। इसी में उसका विद्रोह है। राष्ट्रीय स्तर पर शैलजा पाठक, अपर्णा मनोज, अंजू शर्मा, वंदना देव शुक्ला, मृदुला शुक्ला, बाबुशा कोहली, रश्मि भारद्वाज, सुलोचना वर्मा, सोनी पाण्डेय आदि परिदृश्य पर हैं। इनके समकक्ष योगिता यादव, अमिता मेहता, डॉ० अरुणा शर्मा, डॉ० शाश्विता आदि को रखकर देखा जा सकता है। यहाँ का स्त्री स्वर मुख्यधारा के फैशनेबल स्त्री विमर्श से परे एक मौलिक और मुखर भावजगत के गवाक्ष खोलता है।

डॉ० चंचल डोगरा के मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक धरातल की परम्परा को आगे ले जाने का काम डॉ० अरुणा शर्मा ने किया। उनकी कविताएँ पृथ्वी की कविताएँ हैं। जम्मू कश्मीर में उन्होंने स्त्री लेखन को नई भाव भूमि दी। इनके यहाँ चली आ रही कुछ चीजें टूटी हैं। उनके लेखन पर उन्हीं की कलम से कहूँगा–

'चींटियों को नहीं मालूम
अपने पीछे क्या छोड़ती जा रही हैं...'

योगिता यादव स्त्री परिवेश को समृद्ध कर रही हैं। वे बहुत अच्छी कवि भी है। 'हंस', 'नया ज्ञानोदय' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी कविताओं पर पर्याप्त चर्चा हुई है। दस्तक समूह में प्रसिद्ध संपादक आलोचक निरंजन श्रोत्रिय जी ने इनकी कविताओं को रेखाचित्र के समान कहा है। इधर उनके नेतृत्व में स्त्री सृजन की मासिक बैठकों ने शहर में स्त्री लेखन के लिए नया माहौल बनाया है। योगिता की कविताओं में प्रेम, समर्पण, पितृ सत्ता, प्रतिरोध, स्मृतियाँ, बदलाव का सपना और आह्वान जगह पाता है। उनकी कविताओं का स्पेस देखें–

मैं मुक्तक हूँ/हाँ, मैं हूँ मुक्तक/न करना मुझे/
छंदों में बाँधने के असफल प्रयास...

o

मैं सिंचूंगी तब तक/जब तक तुम/
वटवृक्ष से/छतनार नहीं हो जाते...

o

तुम्हारे सब घाव
धूप की परछाई की मानिंद
मेरे आगे आगे चलते हैं।

डॉ० शाश्विता की कविताएँ स्त्री अंतर्मन की परतें खोलती हैं। इनका कोई संग्रह अभी नहीं आया है। तलाश की कविताएँ हैं। इनके यहाँ छायावादी, प्रवृत्तियाँ हैं। यहाँ सामाजिक सरोकार आत्मीय भाषा में जगह पाते हैं। 'सहवेदना' नामक कविता में अपनी सहायिका के प्रति इनकी संवेदना सलाम योग्य है। वे व्यष्टि में समष्टि की तरफ जाती हैं। जब वे लिखती हैं–

घोर सघन अँधेरा
परत-परत गिरह खोलता है।

o

फिर/एक दिन
मैं माफ़ कर देती हूँ उसे
और मुक्त हो जाती हूँ।

o

मैंने वो सब सुना

जो उसने कभी नहीं कहा
मैंने वो सब छुआ
जो भी उसने छुपाया
तो उनकी संवेदना गहरे तक छूती है।

किरण कंचन का एक कविता संग्रह आया है। उन्हें अभी किताब न लाकर और लिखना चाहिए था। इनकी कविताएँ भाव और शैली में अभी बहुत कच्ची हैं। पर· एक स्त्री मन यहाँ भी बतियाता नज़र आता है। एक बानगी देखें-

दुनिया के माहौल में रहना/
घी बनकर, लौ में जलकर/
प्रकाश फैलाना...

अमिता मेहता कोमल भावों को व्यक्त करने वाली कवि हैं। किसी प्रकार का चमत्कार या अतिरिक्त प्रयास उनके शिल्प और कंटेंट में नहीं दिखता। उनकी 'संदूक' कविता अगली पीढ़ी को विश्वास की चाभी थमा जाती है। 'आग के फूलों की डाली' जैसा बिम्ब उनकी मौलिकता को दर्शाता है। देखें-

वह अक्सर मुझे मिलता है
और लाता है मेरे लिए
आग के फूलों वाली डाली

वे इंतज़ार नामक कविता में गुलाब को नयी दृष्टि से देखती हैं। इनका भी कोई संग्रह अभी नहीं आया है। सोनिया उपाध्याय अपनी क्षणिकाओं से जीवन के खट्टे मिट्टे भाव और अनुभव व्यक्त करती हैं। इनके अतिरिक्त नीरू शर्मा, शारदा साहनी, विजया ठाकुर आदि पुरानी कवयित्रियाँ डोगरी के साथ-साथ हिन्दी में भी लिख रही हैं।

पुरुषों की कविताओं में भी स्त्री संवेदना और सवाल दिखाई देते हैं। इनके यहाँ औरत प्रेमिका, दोस्त, बेटी और माँ के रूप में सम्बोधित होती है। स्त्री संवेदना पर कल्याण की कुछ सुन्दर कविताएँ हैं। 'बेटी' शीर्षक कविता बहुत मार्मिक है। कुमार कृष्ण और शक्ति सिंह ने प्रेमी रूप में स्त्री संसार को छूआ है। नरेश कुमार की कविताओं में माँ की छाँव दिखती है। अशोक कुमार लंगड़ी चलने के नियम वाले खेल शटापु के माध्यम से लड़कियों के जीवन संवर्ष को बखूबी अभिव्यक्त करते हैं। मनोज शर्मा की 'बार गर्ल काम पर जा रही है' और 'स्त्री विलाप कर रही है' जैसी कविताएँ स्त्री संवेदना की दृष्टि से हिन्दी कविता में अलग स्थान रखती हैं। एक बानगी देखें-

लिखूं यदि यूँ कि/स्त्री विलाप कर रही है

तो ऐसा लिखते ही सूख जाए पैन की स्याही

- *जिस कैमरे ने खींची हो ऐसी तस्वीर/उसके लैंस में पड़ जाए तरेड़...*

नरेश कुमार खजूरिया, अदिति शर्मा, अरविन्द शर्मा, शिवानी आनन्द, भगवती देवी, ऐशा बलगोत्रा, मुदस्सिर अहमद, शालू देवी प्रजापति आदि नवोदित या उम्र के छोटे कवि भी परिदृश्य पर हैं। इनमें शिवानी आनन्द सबसे अधिक लिख रही हैं। इन सभी नामों पर बहुत कहना अभी जल्दी होगी। उम्मीद है कि आने वाले पाँच सात सालों में इनमें से एक दो नाम जम्मू की हिन्दी कविता को समृद्ध करेंगे। इनके यहाँ निजता, कल्पना, रूमानियत, प्रेम, प्रतिरोध, श्रम सौन्दर्य, गाँव की संवेदना, सामाजिक चिंताएँ दिखाई देती हैं। शालू के रूप में इस युवतर स्वर की बानगी देखें–

माँ ने जिन किताबों को बेच
फेरी वाले से
दो प्यालियाँ खरीदी थीं
मैं उनमें कभी चाय नहीं पीती...

o

मैं सड़क किनारे
उग आई कंटीली झाड़ी हूँ–
तुम मुझे गले लगाती हुई धूल।

o

वे कम से भी कम लिखती हैं। साहित्यिक कार्यक्रमों से दूर रहती हैं। शीराज़ा, खुलते किवाड़, अमर उजाला आदि में छपी हैं। इधर इनकी कविताएँ 'बया' के ताजा अंक में आई हैं। जिन पर चर्चा हो रही है।

माहौल बड़ी चीज है। माहौल का अर्थ कदापि यह नहीं कि मौसम अच्छा हो जाए तो दो चार कार्यक्रम कर लिए जाएँ। अग्रज कवि बिष्णु नागर लिखते हैं– 'सबसे अच्छी कविता बुरे वक्त में पहचानी जाती है।' बुरे वक्त के साहित्यिक प्रयास सलाम योग्य होते हैं। बाकी 31 मार्च वाले प्रयास नहीं कहे ज़ा सकते। साहित्य सीढ़ी नहीं है। अगर है तो यह ऊपर नहीं जाती नीचे उतरती है। जम्मू में समृद्ध साहित्यिक माहौल है। राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, युवा हिन्दी लेखक संघ, हिन्दी साहित्य मण्डल आदि संस्थाएँ अनुदान प्राप्त करके पर्याप्त कार्य कर रही हैं। 'लोक मंच जम्मू कश्मीर' सांस्कृतिक व साहित्यिक संगठन है। यह गाँवों में जाकर कार्य कर रहा है। कुमार कृष्ण शर्मा के साहित्यिक ब्लॉग 'खुलते किवाड़' जैसा प्रयास भी स्वागत योग्य है। समय की मांग है कि कोई राष्ट्रीय स्तर की अच्छी साहित्यिक पत्रिका भी यहाँ से निकले। आज तक यहाँ की कोई भी पत्रिका हिन्दी साहित्य जगत में अपनी खास

पहचान नहीं बना पाई। कला अकादमी की शीराज़ा की भी अपनी सीमा रही है। वैसे इन दिनों हिन्दी कार्यक्रमों को लेकर जे० एंड के० कला अकादमी पहले से सक्रिय हुई है।

यह हाशियों की कविता है। आज इन हाशियों की कविता को रेखांकित भी किया जा रहा है। कवि आलोचक और संपादक शिरीष कुमार मौर्य लिखते हैं– 'हिन्दी में सीमांतों की कविता जिस तरह से विकसित हो रही है, यह घटना आने वाले वक्त में कविता का एक बड़ा प्रस्थान बिन्दु साबित होने वाली है।' यह दृष्टिसम्पन्न वक्तव्य है। आज दिल्ली, इलाहाबाद, भोपाल, पटना आदि का वर्चस्व या एकाधिकार टूट गया है। सीमांतों की कविता ने हिन्दी कविता को विस्तार दिया है। इस पर बात किए बिना हिन्दी कविता पर पूरी बात नहीं हो सकती।

कुल मिलाकर कहा जाये तो यह कविता जीवन के पक्ष में खड़ी है। लम्बे संघर्ष के बाद जम्मू की कविता पहचान के संकट से उभरी है। व्यष्टिपरक और छायावादी प्रवृत्तियाँ पीछे छूटी हैं। अब सिर्फ विस्थापन ही पहचान नहीं रह गई है। आज युवा कवि शोषक शक्तियों के विरोध में खड़े हो रहे हैं। सामूहिक सपनों ने जोरदार दस्तक दी है। इसमें सभी के दुःख-तकलीफें और संघर्ष शामिल हैं। आने वाले दिनों में यहाँ की कविता और गहरे में उतरेगी। हाशियों से अधिकाधिक संवाद बनाएगी। संवाद ही प्रतिनिधि हो सकता है–

मुझे लगता है/दुनिया में/
कहीं भी जब दो आदमी/मेज़ के सामने-सामने बैठे/
चाय पी रहे होते हैं/तो वहाँ आ जाते हैं तथागत
और आस पास की हवा को/मैत्री में बदल देते हैं। (महाराज कृष्ण संतोषी)

अंत में,

दोस्तो!! सत्ता के समकक्ष सत्ता खड़ी करना किसी समस्या का हल नहीं। आओ समता और सहभाव के लिए संघर्ष करें।

*

राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएं एवं समाधान

❑ डॉ. रजनी बाला *

किसी प्रदेश के लोग एक विशिष्ट भाषा द्वारा जहाँ विचार-विनिमय करते हैं, वह स्थान विशेष राष्ट्र कहलाता है। राज्य के निवासी जब तक परस्पर एकात्म की भावना से जुड़े न हों तब तक राष्ट्र की संकल्पना पूर्ण नहीं हो सकती। भाषाई आधार पर जब राष्ट्र की बात करनी हो तो हिन्दी और हिन्दुस्तान के संदर्भ में अकस्मात् हमारे सामने समस्या उठ खड़ी होती है क्योंकि यहाँ राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाली हिन्दुस्तान के तर्ज़ पर हिन्दुस्तानी या भारत की तर्ज़ पर भारतीय भाषा नहीं, हाँ भारतीय भाषाएं जरूर हैं। यहीं पर यह बात भी ध्यान देने की है कि किसी निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसे जनसमुदाय की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, विधि-निषेध नियम भी समान होने चाहिए तभी वह भौगोलिक इकाई राष्ट्र कहलाएगी और उस राष्ट्र में सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा राष्ट्रभाषा कहलाती है। इस मायने में हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यहाँ एक बात थोड़ा समझ लें कि जब बात बहुसंख्यक की हो तब अल्पसंख्यक स्वत: ही या तो थोड़ा सहम जाता है या आक्रामक हो जाता है। हिन्दी के साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं का रवैया भी कुछ-कुछ ऐसा ही रहा है। ज़ाहिर है इस तरह का व्यवहार समस्या खड़ी करता है।

संविधान में हिन्दी को संपर्क भाषा के तौर पर मान्यता देने के साथ हिन्दी के विकास की संभावनाएं अवरुद्ध सी हो गयी क्योंकि अड़ी-भिड़ी के समय उससे काम निकाल लेने वाली मानसिकता के चलते अनिवार्यता के रूप में हिन्दी का महत्व इस प्रकार से संपर्क साधने वालों के सामने स्थापित नहीं हो सका। सिर्फ कामचलाऊ अर्थ तक सीखने वाली इस प्रवृत्ति ने हिन्दी के साथ भद्दा मज़ाक किया है। हालांकि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि संपर्क भाषा के तौर पर हिन्दी को अपनाने के पीछे भावनात्मक एकता स्थापित करने का उद्देश्य था। आज हम हिन्दी दिवस और हिन्दी पखवाड़ा मनाते हुए बड़ा इतराते हैं लेकिन हमसे यह दूसरी बड़ी गलती हो गयी। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय वह हिन्दी जो सबको जोड़ने का माध्यम थी उसे राजभाषा घोषित कर निचले पायदान पर बैठा दिया गया। इतना ही नहीं संविधान की धारा 343 और उसके विभिन्न अनुच्छेदों की योजना कर प्रत्येक राज्य को अपनी प्रान्तीय भाषा को ही राजभाषा के रूप में अपनाने की छूट देने के बहाने सरकारी कार्यालयों में अंग्रेज़ी का वर्चस्व कायम रखने का रास्ता भी खोल दिया गया।

---

* *सीनियर अस्सिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006*

राजभाषा के रूप में हिन्दी को बेशक संवैधानिक मान्यता प्राप्त है किन्तु कई बार समाज और सामाजिक संकल्पनाएं नियम और कानून से ऊपर हो जाती हैं। भारतीय जनमानस की अन्तश्चेतना में अंग्रेज़ी के प्रति जो गौरवभाव समाहित है वह हिन्दी के प्रति एक प्रकार की हीनता को उत्प्रेरित करता है। ज़ाहिर है जब तक सामाजिक प्रवृत्ति नहीं बदलती तब तक कोई स्थिति भी बदल नहीं सकती। संभ्रान्त परिवारों, शहरी समाज, नौकरशाहों ने अंग्रेज़ी की इस तरह शहनाई बजाई कि हिन्दी पीपनी बन कर रह गयी।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के साथ एक बड़ी समस्या व्यावसायिकता से जुड़ी है। हिन्दी पढ़कर नौकरी तो मिलेगी नहीं, अंग्रेज़ी के बिना सम्मान तो मिलेगा नहीं, ये कुछ ऐसी मान्यताएं हैं जिनके बहाने हमें हिन्दी से पल्ला झाड़ने का मानो लाइसेंस मिल गया है। जिसका दुष्प्रभाव शिक्षा तंत्र पर इस कदर पड़ा कि ईस्ट इंडिया से आज़ादी के बावजूद मैकाले की डमी प्राइमरी विद्यालयों से महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सजी हुई है। निज भाषा के प्रति जब इस प्रकार का हीन बोध हो, सम्मान की गुंजाइश न हो तब हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहने के खास मायने नहीं रहते सूखे फूलों की माला से सजे फ्रेम में कैद तस्वीर और ज़िन्दा शख्सीयत में जो अन्तर होता है कुछ वैसी ही बानगी राष्ट्रभाषा हिन्दी और सामाजिक स्तर पर व्यवहार में आने वाली हिन्दी में देखी जा सकता है।

ऐसी स्थिति को देखते हुए ज़रूरत है कि हम हिन्दी भाषा के प्रति वैसी ही निष्ठा रखें जैसे धर्म के लिए आस्था रखते हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी से जुड़ा विमर्श केवल हिन्दी भाषी प्रान्तों की चिन्ता का विषय क्यों हो ? उनकी इस चिन्ता में हिन्दीतर भाषी भी भागीदार बनें तभी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की संकल्पना साकार होगी। प्रान्तीय भाषाओं और हिन्दी की लड़ाई से अन्ततः हिन्दी का क्षरण हो रहा है। दरअसल, हो यह रहा है कि हिन्दी भाषी हिन्दी का वर्चस्व स्थापित करने के मोह में जाने-अनजाने क्षेत्रीय भाषा-भाषियों को आतंकित कर देते हैं। होना यह चाहिए कि भाषा को लेकर वर्चस्व की लड़ाई न लड़ी जाए वरन् बहुभाषी राष्ट्र में हिन्दी को समन्वय की भाषा का रूप दिया जाए। ज़रूरत इस बात की है कि संवेदनशील राजनीतिक मुद्दों की तरह भाषा खासतौर पर राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में हिन्दी पर भी बात की जाए। जबकि हो यह रहा है कि हिन्दी पर होने वाली बात भटक कर उसके भाषा शास्त्र पर अटक जाती है और केन्द्रीय विषय छूट जाता है। दरअसल ऐसा तब होता है जब हम मुद्दे को सुलझाने की इच्छा शक्ति खो देते हैं और उसे भुनाने का षड्यन्त्र रचने लगते हैं, हिन्दी के साथ कुछ ऐसा ही हो रहा है। वरना 14 सितम्बर 1949 को राजभाषा के रूप में हिन्दी की घोषणा के लगभग 65 वर्षों बाद इस विषय पर बात करने की ज़रूरत ही न होती।

स्वतन्त्रता संग्राम के समय राष्ट्रीय आंदोलन के अग्रज नेताओं में हिन्दी के प्रति जो सम्मान था वर्तमान में वह निष्ठा लुप्तप्रायः हो गयी है। आज़ादी के बाद शिक्षा का माध्यम और

रोज़गार की गारण्टी अंग्रेज़ी होने से हिन्दी का स्केल प्रभावित हुआ है। राजनीतिक, आर्थिक और भाषिक – इन त्रिआयामी गुलामी में से हम राजनीतिक गुलामी से 1947 में मुक्त हुए। भूमंडलीकरण के चलते जाने-अनजाने हम आर्थिक रूप से गुलाम होते जा रहे हैं किन्तु भाषिक गुलामी को हमने सबसे ज्यादा नज़रअंदाज किया है। हम भूल गए कि भाषा का प्रश्न आर्थिक प्रश्न से जुड़ा है। विज्ञान, आयुर्विज्ञान, प्रौद्योगिकी में निज भाषा होने पर ही चिन्तन की मौलिकता संभव है। ऐसा चिन्तन और चिंता जो अपने इतिहास, संस्कृति, समाज से जुड़ा हो। इस दृष्टि से देखें तो ज्ञान-विज्ञान की लगभग प्रत्येक शाखा में अनुवाद किये जा रहे हैं। हाँ, इस पर अलग से बात करने की ज़रूरत हो सकती है कि हिन्दी में अनूदित वह कार्य कितना प्रभावशाली और मार्के का है ? दूसरे हमें यह भी देखना होगा कि मूल से जो अनुवाद किया जा रहा है वह मूल साहित्य दरअसल पश्चिम के अनुरूप है जिसमें भारतीयता नदारद है। ऐसे में विदेशी मूल के हिन्दी में अनूदित साहित्य को राष्ट्रभाषा हिन्दी और अपने राष्ट्र के गौरव से जोड़कर कैसे देखा जा सकता है ?

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर दें कि राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय वैविध्य के आधार पर हिन्दी के अनुकूलन की आवश्यकता है। विशेष रूप से तब जब फिजी, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, सूरीनाम, गुयाना, बुखारेस्त, सोफिया के दूतावासों में हिन्दी अधिकारी और हिन्दी प्राध्यापक हों। रंगून विश्वविद्यालय में हिन्दी के साथ बर्मा के सभी जिलों में हिन्दी विद्यालय हैं। रूस में व्यापक पैमाने पर हिन्दी प्रयोग के साथ-साथ लेनिनग्राद, ताशकन्द, मास्को, मुम्बा विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पठन-पाठन होता है। अमेरिका के पेन्सलवेनिया, वाशिंगटन, एरिजोना, कैलफोर्निया, हवाई, शिकागो, कार्नेल, ड्यूक, मिशिगन, हैक्सास जैसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में पिछले 35-37 वर्षों से हिन्दी पढ़ाई जा रही है। ब्रिटेन के कैम्ब्रिज, चेकोस्लोवाकिया के प्राग और चार्ल्स विश्वविद्यालय, जर्मनी में अम्सटर्डम, बर्लिन, जार्ज ऑगस्ट, कीट्स, लुडविग, हैम्बर्ग, जापान में ओसाका, इज़राइल में हिब्रू और श्रीलंका में लंका विश्वविद्यालय की लम्बी फेहरिस्त से सुखद तथ्य सामने आता है कि विश्व के लगभग एक सौ विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन होता है।

इस क्रम में हिन्दी के प्रवासी साहित्य के योगदान को भी स्वीकार करना होगा। भारतीय मूल के विदेशी में बसे हिन्दी लेखकों से हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा और साहित्य के रूप में नयी पहचान मिली है। वैश्विक धरातल पर हिन्दी के बढ़ते प्रसार को देखते हुए राजनीतिक स्तर पर अधिक क्रियाशील होने की जरूरत है। जिस प्रकार भारत में ब्रिटिश लैंग्वेज स्कूल हैं उसी तर्ज पर विदेशों में हिन्दी लैंग्वेज स्कूल को स्थापित करना होगा। विदेशों में भारतीय दूतावासों, उच्चायोगों, वाणिज्य दूतावासों में हिन्दी पर बल देने की ज़रूरत है।

मीडिया और मल्टीमीडिया की भाषा के रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की सर्वाधिक संभावनाएं हैं। इस मायने में हिन्दी सीधे-साधे रोज़गार से जुड़ती है। मीडिया की

हिन्दी; राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिन्दी से अधिक स्वाभाविक, सरल और नयी पीढ़ी के अनुकूल है। साक्षरों के लिए प्रिंट मीडिया और निरक्षरों के लिए इलेक्ट्रानिक मीडिया-जैसे रेडियो, टी.वी., सिनेमा की हिन्दी ने सुदूर प्रान्तीय कोनों में अपनी पैठ बनाई है। साहित्यिक और परिनिष्ठित संस्कार के दबाव से रहित ऐसी भाषा से ही राष्ट्रभाषा के मायने सिद्ध होते हैं। हालांकि इस बात को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि मानक, व्याकरणसम्मत दृष्टि का ऐसी स्थिति में अभाव रहता है। लेकिन यहीं पर हमें यह भी ध्यान देना होगा कि शुद्धता के चक्कर में भाषा का प्रवाह झील या तालाब की तरह अगर सीमित होकर रह जाए तो ऐसे में भाषा को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर विराजित करने का मात्र सपना ही देखा जा सकता है उसके प्रतिफलित होने की संभावना नहीं की जा सकती।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित राष्ट्रों ने हिन्दी की जरूरत स्वीकार की है। आर्थिक उदारीकरण से भारतीय बाजारों में हिन्दी विज्ञापनों ने नया संचार किया है। 'ठंडा मतलब कोका कोला', 'कुछ मीठा हो जाए', 'पप्पू पास हो गया' जैसे कथन सूक्ति बनकर लोगों की जुबान और स्मृति में दाखिल हो गए। एफ.एम. रेडियो, रेडियो मिर्ची जैसे चैनल्स नयी पीढ़ी को अपनी विशेष हिन्दी के कारण लुभा रहे हैं। रेडियो के लिए समाचार-लेखन, वार्ता, साक्षात्कार, नाटक, आलेख, विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित कार्यक्रम और टी.वी. के लिए हिन्दी के विभिन्न, अनेकानेक नाटकों, धारावाहिकों, टेली फिल्म की पटकथा तथा हिन्दी सिनेमा से राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की संकल्पना चरम पर है।

बाज़ारवाद के कारण आज आम धारणा है कि *जो बाज़ार में चलेगा वही बचेगा*। इस आधार पर मल्टीमीडिया जिसमें कम्प्यूटर और इंटरनेट आते हैं; उनकी भाषा को हिन्दी से क्रियान्वित करना होगा। इस क्षेत्र में अनेक प्रयत्न भी हुए हैं हालांकि व्यावहारिक धरातल पर उनका बहुत कम प्रयोग हुआ है क्योंकि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भारत में आए इन माध्यमों में अंग्रेज़ी में काम करने की सुविधा थी और उसी का विकास कालान्तर में भी हुआ है। दूसरे कम्प्यूटर और इंटरनेट जैसे माध्यमों में प्रयोग किए जाने वाले अंग्रेज़ी शब्दों के हिन्दी में अनूदित पारिभाषिक शब्द अक्सर इतने क्लिष्ट होते हैं कि उनका उच्चारण जबड़ा-तोड़ होता है और प्रयोगकर्त्ता की स्मृति में शेष नहीं रह पाता। इसके बावजूद भारतीय संस्थाओं ने शब्द संसाधन के नए पैकेज तैयार किए हैं- जैसे *शब्दरत्न, शब्दमाला, अक्षर, बाइस्क्रिप्ट*। आई.बी.एम. टाटा कम्पनी के आर.के. कम्प्यूटर्स ने हिन्दी डॉस नाम से जो प्रणाली विकसित की उसके कमाण्ड और मेन्यू भी हिन्दी में हैं। *लीला हिन्दी प्रवीण, लीला हिन्दी प्राज्ञ* जैसे साफ्टवेयर से हिन्दी लेखन विधि को सुधारा जा सकता है। अमेरिका के माइक्रोसॉफ्ट कारपोरेशन ने हिन्दी में हिन्दी वर्ड 2000 जैसे साफ्टवेयर बनाए जिससे हिन्दी में बातचीत, गोष्ठी, चैटिंग, वर्तनी, वाक्य संरचना ठीक की जा सकती है। भारत में बनाए गए वेब दुनिया डॉट कॉम और हिन्दी पोर्टल्स ने मल्टीमीडिया की दुनिया में हिन्दी को लेकर क्रान्तिकारी

कदम उठाए हैं। इस प्रकार मीडिया के अत्याधुनिक दौर में व्यावहारिक धरातल के साथ रोज़गार की दृष्टि से हिन्दी के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है। विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं, बैंकों, रेलवे, सेना जैसे संगठनों में हिन्दी को लेकर की जा रही पहल सराहनीय है। वाणिज्य, तकनीकी, प्रोद्यौगिकी, विधि जैसे विषयों में हिन्दी पुस्तकों, हिन्दी में पठन-पाठन पर काफी बल दिया जा रहा है। इस दृष्टि से पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण, राजभाषा के पारिभाषिक शब्दों का गठन, विभिन्न शब्दकोशों और ज्ञानकोशों के प्रकाशन से आशा बनती है कि राजभाषा हिन्दी सरकारी रूप से घोषित अधिनियम, अनुच्छेद की हदबंदी से बाहर व्यावहारिक धरातल पर राष्ट्रभाषा की संकल्पना को पूर्ण कर सकेगी। जब यह संकल्पना पूरी होगी तो जीवन मूल्य, संस्कृति, राष्ट्र के प्रति आदर भी बना रहेगा क्योंकि राष्ट्र, संस्कृति और भाषा का अभिन्न रिश्ता होता है। इनमें से किसी एक के प्रति बैर या प्रेम का चक्र ऐसा चलता है कि प्रत्यावर्तित होकर हम ही कनी रूप में उससे संचालित और प्रभावित होते हैं और अन्तत: हमारी इस गति से पुन: भाषा, राष्ट्र और संस्कृति गतिमान होते हैं। अत: निज भाषा के प्रति आदर, सम्मान और विश्वास अन्तत: वैयक्तिक और जातीय अस्मिता के प्रति आदर सम्मान और विश्वास है। अब आप ही बताइए यह सब कोई भी व्यक्ति, समाज राष्ट्र क्योंकर न चाहेगा ? अत: राष्ट्रभाषा के रूप में विमर्श के तौर पर हिन्दी विमर्श पर चर्चा करने का यह सबसे प्रासंगिक समय है जिसकी नब्ज़ की हरारत हमें पहचाननी ही होगी।

*

हिन्दी साहित्य और ई-पाठक

❑ डॉ० सतीश विमल*

सऊदी मूल के शीर्ष अरबी कवि निजार काबानी की अधिकतर कविताएं उन्होंने स्वयं अंग्रेज़ी में अनूदित कर अपने जीवनकाल में ही प्रकाशित की थीं। ये कविताएं ऑनलाइन पढ़ी जा सकती हैं। उनकी एक मार्मिक रचना उन्होंने कई वर्ष पूर्व हमें नई दिल्ली में सऊदी अरब के दूतावास में आयोजित एक साहित्यिक कार्यक्रम में सुनाई थी। कविता का शीर्षक था शिलालेख से ई-बुक तक। इस कविता में निजार काबानी ने स्वयं को इस बदलाव की रफ़्तार में दौड़ते हुए, हांपते हुए दिखाया है जहां उसके शब्द कम्प्यूटर के वायरस में भयभीत, चलचित्र के तेज़ बदलते दृश्यों की मानिंद क्षणों की प्रवृति हो गए हैं; जहाँ शिलालेखों की कब्रें तक आंखों से ओझल हो गई हैं। कुछ वर्ष पूर्व निजार काबानी ने जब यह कविता हमें सुनाई थी तो हम इसकी सार्थकता को ठीक से आँकने में असफल रहे थे पर आज जब कुछ ही दिनों के लिए हमारे हाथों में कलम-कागज़ बचा है तो हम निजार की छटपटाहट को भलीभांति समझ पाने में सक्षम हो जाते हैं। हमारे पुस्तकालयों अलमारियों में बंद पड़ी किताबें अब पाठकों की प्रतीक्षा करते करते बोसीदा हो रही हैं, गुनगुना रही हैं-

मिलन की रुत है, हथेली पे चांद ठहरा है
गडरिये शाम से पहले ही गाँव आ पहुंचे

पिछले कुछ वर्षों में आये ई-इंकलाब की बदौलत हम किताबों की एक संस्कृति से बेदख़ल हो रहे हैं और एक नई संस्कृति का हिस्सा बनते जा रहे हैं, जहां शब्दों का शृंगार अपनी महक खोता जा रहा है। इस नई संस्कृति का नाम है 'कागज़ रहित जीवन।' पूरी दुनिया में यह संस्कृति पुरानी समस्त संस्कृतियों की जगह ले रही है। अब लेखक ई-लेखक हो रहा है, साहित्य ई-साहित्य बन रहा है और पाठक ई-पाठक हो रहा है। इस बदलाव की अभी शुरुआत हुई है पर बदलाव की रफ़्तार बहुत तेज़ है। अभी भी कलम-कागज़ का कुछ-कुछ प्रयोग हो रहा है, अभी भी छापाखानों से कुछ किताबें छप कर आ रही हैं। पर ई-इंकलाब इस सब पर भी हावी हो जायेगा और फिर ई-लेखक और ई-पाठक ही बचा रह जायेगा।

दुनिया भर की समस्त बड़ी भाषाओं में यह ई-बदलाव बड़े पैमाने पर हो रहा है। अंग्रेज़ी, अरबी, चीनी, रूसी आदि भाषाओं की तरह ही हिन्दी भाषा भी ई-क्रांति की चपेट में आ गई

---

* *पोस्ट बॉक्स 1089, जी.पी. ओ श्रीनगर-190001 (मोबा-9419059179)*

है। संयुक्त राष्ट्र महासंघ की विश्व सूचना संबंधी तकनीकी रिपोर्ट के अनुसार हिन्दी विश्व की ई-बदलाव की सूची में पांचवें स्थान पर है; अंग्रेज़ी पहले, अरबी दूसरे, चीनी तीसरे और रूसी चौथे स्थान पर है। इसी रिपोर्ट में आगे बताया गया है कि शिक्षा, साहित्य और संस्कृति संबंधी मवाद के अनुसार हिन्दी पूरी दुनिया में सातवें स्थान पर हैं यहां पांचवा स्थान फारसी और छठा स्थान जापानी को मिला है। जहां समाचार सेवायें अंग्रेज़ी और अरबी के बाद सबसे अधिक हिन्दी में हैं वहीं साहित्य के क्षेत्र में हमारी रफ़तार धीमी है। अच्छा भी है। अनायास के बदलाव असंतुलन की परिस्थिति पैदा कर सकते हैं। इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि साहित्यकारों और पाठकों की एक पीढ़ी इस बदलाव से असहज हो गई है पर वहीं दूसरी तरफ़ युवा पीढ़ी आवश्यकता से अधिक उत्सुकता का प्रदर्शन कर रही है। इस बात से भी किसी को इनकार नहीं होगा कि ई-क्रांति ही भविष्य है अत: इसके साथ जितनी जल्दी पूर्णत: जुड़ा जाये, उतना ही हितकर होगा।

पिछले कुछ वर्षों के भीतर हिन्दी साहित्य ई-माध्यम से बड़ी तेज़ी के साथ प्रेषित होता रहा और इस तरह ई-पाठकों की संख्या में भी वृद्धि होती गई। ई-सर्वे इण्डिया की पिछले वर्ष की रिपोर्ट के अनुसार सभी भारतीय भाषाओं में हिन्दी में ई-साहित्य सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध है और इसी भाषा में सबसे अधिक साहित्यिक वेबसाईट्स और बलाग्स मौजूद हैं। सभी भारतीय भाषाओं में सबसे अधिक ई-बुक प्रकाशन भी हिन्दी में ही होता है। भारतीय अंग्रेज़ी-लेखक और पाठक भी इस सर्वे के हिसाब से हिन्दी से पिछड़ गये हैं। इसी सर्वे के अनुसार विभिन्न ई-माध्यमों (जिनमें ब्लाग, वेबसाईटस, फेसबुक पोस्टस और वाट्सएप ग्रुप्स शामिल हैं) द्वारा प्रतिदिन सामान्यत: सात हज़ार छ: सौ रचनाएं पोस्ट की जाती हैं जिनमें कवितायें, कहानियां, बालसाहित्य, अनुवाद आदि पोस्ट होते हैं। क़रीब एक लाख लोग प्रतिदिन इन रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

जबकि अनुमानत: चार लाख लोग इन्हें पढ़ते हैं। पिछले दो वर्षों से मैं स्वयं इन माध्यमों में से कई माध्यमों पर नज़र बनाये हुए हूँ। कुछ राय अपनी जगह बना पाया हूं जिसे साझा कर रहा हूं। ई-माध्यमों द्वारा साहित्य प्रस्तुति पूर्णत: आज़ाद है। कोई 'चैक मैकानिज़म' नहीं है इसमें। बहुत सहजता से बिना कुछ खर्च किये, बिना किसी पर निर्भर रहे कुछ भी पोस्ट किया जा सकता है। इससे अधिकांश माध्यमों द्वारा बेहद घटिया स्तर की रचनायें पढ़ने को मिलती हैं। और सब पर 'वाह-वाह' और 'अति सुन्दर' के कॉमेंट मिलते हैं। रोज़नामचा साहित्य को बहुत बढ़ावा मिला है। पत्रकारों और राजनेताओं के मिश्रण से जो साहित्यकार टोली पिछले अर्धशतक से नारेबाज़ साहित्य द्वारा मौलिकता का ह्रास करने हेतु घुटबद्ध हुए लिखते रहे हैं; उनकी तो मौज हो गई है, वे तो अब हर दिन की रोज़मर्रा की घटनाओं पर समाचार पत्रों की रिर्पोटिंग के प्रसारण/प्रकाशन से पूर्व ही कविता/कहानी गढ़ कर पोस्ट करके स्वयं को युगीनी और वर्तमान में प्रासंगिक साबित करने में लगे हैं। एक दूसरे को इसी 'वाह-वाह' एवं 'अतिसुंदर' वाली प्रवृत्ति के चलते दस्तार बांधते रहते हैं और 'तुम मुझे

हाजी कहो और मैं तुम्हें हाजी कहूँ' वाला आचरण बढ़ावा पा रहा है। ई-साहित्य में कट-पेस्ट भी सहज हो गया है। अत: ज़रा से फेरबदल के साथ नकल का साहित्य भी खूब जगह पा रहा है। ई-साहित्य द्वारा स्वस्थ चर्चा और बेबाक राय की गुंजाइश अधिक थी पर ये गुंजाइश तो निजी रिश्तों की भेंट चढ़ गई है। यह कुछ ख़ामियां अवश्य हैं, पर कुछ लाभ भी हैं। जहां निम्न स्तरीय रचनाएं अधिक मात्रा में प्रस्तुत हो रही हैं, जहां चाटुकारिता बढ़ गई है, वही सच्चा-सुच्चा मौलिक साहित्य भी बिना देर लगाये पाठक तक पहुंचता है।

अंग्रेज़ी या चीनी साहित्य के साथ हिन्दी की तुलना करे तों कई कमियां सामने आती हैं। अंग्रेज़ी और चीनी भाषाओं में लगभग सम्पूर्ण प्राचीन और वर्तमानकाल का प्रतिनिधि साहित्य वेबसाइट्स पर मौजूद है जबकि हिन्दी के अधिकतर श्रेष्ठ साहित्यकारों की रचनायें ई साहित्य के रूप में अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। हमारी शीर्ष राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक संस्थायें अभी तक पूर्णत: ऑनलाइन नहीं हैं। उनकी लाइब्रेरियां भी अभी तक ऑनलाइन नहीं हो पाई हैं। संस्थाओं द्वारा प्रकाशित अधिकतर पत्रिकायें भी ई-संस्करण प्रकाशित नहीं करतीं। यह नुकसान ई-पाठक को हो रहा है। कुछ हिन्दी पत्रिकायें जो ऑनलाइन अच्छे पाठक जुटाती हैं वे हैं: हिन्दी आर्ग हिन्दी निदेशालय, एनआईसी, हिन्दी यूऐसऐ इनफो, गोवमेंट लिटरेचर आगे आदि। एक सुखद सूरत सामने आई है कि प्रो० नामवर सिंह जी से लेकर डॉ० माधव हाड़ा तक कई रचनाकारों के फेसबुक पेज बन चुके हैं परन्तु इन पृष्ठों को नियमित अपडेट करने की आवश्यकता है। जहां मौलिक रचनाओं से ई पाठक का दामन भरा जाता है, वहीं अनुवाद ना के बराबर ही ई पाठक को उपलब्ध है।

बहुत ही अधिक संख्या में हिन्दी साहित्य के ब्लाग बनाये गये हैं जो ई-पाठक तक स्तरीय रचनाएं पहुंचाते हैं। उनमें आधुनिक हिन्दी साहित्य, परंपरा, सर-ए-राह, जागरन जंक्शन बलाग्स, प्रतिलिपि, अनुभूति, पहली बार, मौलश्री, अ आ, कविता कोसी, असुविधा, समालोचन, हमकलम, शीर्षक, सबद, संवादी, अनुनाद, कलम, नई बात, भोजपत्र, जनशब्द, हमारी आवाज़, अनहद नाद, कृत्या, अभिव्यक्ति, जानकी पुल, खुलते किवाड़, उन्मुक्त शब्दों का डी.एन.ए, निरामिष, मल्हार आदि उल्लेखनीय हैं। संतोष चतुर्वेदी, कृष्ण कुमार, अनिमेष जोशी, अमित शर्मा, अरुण आदित्य, अपर्णा मनोज भटनागर, रमेश उपाध्याय, देवेन्द्र कुमार देवेश, अशोक कुमार पाण्डेय, अरुणा देव, उदय प्रकाश, शरद कोकास, कुमार अम्बुज, विवेक, अनुराग वत्स, महेश आलोक, शीरीष कुमार मौर्य के अतिरिक्त शशिभूषण जैसे साहित्यिक ब्लॉग्ज़ ई पाठक के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन ब्लॉग्ज़ की बड़ी लोकप्रियता है और अच्छे पाठक इन ब्लागस से जुड़े हैं। साथ ही इन ब्लॉग्ज़ ने रचनाओं के प्रकाशन का एक स्तर बना रखा है। कुछ नयी ई-पत्रिकायें भी काफी लोकप्रिय हो रही हैं जिनमें अक्षर पर्व, अनुभूति, अन्यथा, अभिव्यक्ति, तद्भव, साहित्य कुंज, सृजनगाथा, हिन्दी चेतना, शब्दांकन, वागार्थ आदि उल्लेखनीय हैं। जय प्रकाश चौकसे का गद्य कोष और चन्द्रप्रकाश जगप्रिया का कविता कोष ई पाठक की

नज़र में सबसे लोकप्रिय कोष ग्रंथ बना है। हिन्दी कविता की कुछ वेबसाइट्स बड़ी लोकप्रिय हैं उनमें हिन्दी कविता, हिन्दी पोइम्ज़, हिन्दी-उर्दू कविता, हिन्दी हास्य कविता, हिन्दी प्रेम कविता, हिन्दी बाल साहित्य नाम की साइट्स महत्वपूर्ण हैं। मेरी अधूरी कहानी, हिन्दी की कहानियां, मेरे लफ़्ज मेरी कहानी, हिन्दी कहानी साहित्य, हिन्दी बाल कहानी नाम की वेबसाइट्स, कहानी प्रेमियों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। आलोचना की अहम वेबसाइट्स हैं: हिन्दी आलोचना, आलोचना पेजज़ आदि। कई सारे प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थानों ने भी ई बुक्स प्रकाशित की जो बेहद जनप्रिय हुई। पेंगविन, ई-शब्द, समीर कामथ, वेबदुनिया, गुडरीडज़, अपनी हिन्दी, हिन्दी साहित्य सदर, हार्पर कोलिंस, जवाहर बुक सेंटर एवं हिन्दुस्तान बुक्स आदि संस्थाएं अच्छी स्तरीय साहित्यिक किताबें प्रकाशित करती हैं जिन्हें खूब कुबूलियत प्राप्त हो रही है।

एमाज़ोन, हिनखोज, इनफिबीम, सनैपडील फलिपकार्ट, पेटीएम आदि ऑनलाइन शापर्स भी ई-बुक्स ई-पाठक तक पहुंचाने लगी है।

ई-बुक पाठक कई मायनों (अर्थों) में खुशकिस्मत हैं कि उसके पास वह सामग्री भी आ पाती है जो छपी हुई किताब में होना संभव नहीं है- जैसे कि वीडियो या आडियो। साथ ही वह फांट या तस्वीरों का आकार आवश्यकता अनुसार बढ़ा सकता है, की-शब्द टाइप करके उसे आवश्यक सामग्री मिल सकती है, किसी भी पन्ने पर वो अपनी टिप्पणी या नोट दर्ज कर सकता है, समान पठन-सामग्री पाने के लिए अन्य वेबसाइटस तक पहुंच सकता है। ई-पुस्तकें हज़ारों की संख्या में बहुत कम जगह में स्टोर की जा सकती हैं। पाठक आसानी से ऑनलाइन ई-बुक ख़रीद सकदा है अथवा ई-रीडर द्वारा प्राप्त कर सकता है।

पर हाँ ई-बुक्स में छपी हुई किताबों के मुकाबले में कुछ कमियां भी हैं जिनसे पाठक असहज महसूस करता था। छपी हुई किताबों के लिए बैटरियों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी पर ई-बुक्स के लिए चार्ज की हुई बैटरियों का होना अति आवश्यक है। सभी वांछित किताबें ई-बुक्स की सूरत में उपलब्ध कराने में अभी बहुत समय लगेगा। ई-बुक्स तक पहुंच के लिए डिजिटल राइट्स मैनेजमेंट यानी डी.आर.एम साफ्टवियर की आवश्यकता पड़ती है। इससे किसी के साथ किताबें सांझा करने में दिक्कतें आती हैं। ई-बुक्स विकसित हो रही टेकनॉलोजी का हिस्सा है अतः ई-फाइल फार्मेट और उनकी कार्य पद्धति में अभी कई बदलाव अपेक्षित हैं। किताबें पढ़ने का पूरा तरीका ही बदल रहा है। अब पृष्ठ पलटने की कोई गुंजाइश नहीं और इस क्रिया के सफर से प्राप्त आनंद की भी कोई जगह नहीं बची। पृष्ठ पलटते हुए उंगलियों और जीभ का एक अद्भुत खुशबू से जो रिश्ता जुड़ता था, वो रिश्ता मर गया है। अब टेकनॉलोजी नये रिश्ते गढ़ने लगी है।

ई-पुस्तकों को लेकर अभी विश्वभर में प्रकाशनों और पुस्तकालयों के समक्ष कई प्रश्न उत्तरों की प्रतीक्षा में हैं। जुलाई 2015 में शिकागो में विश्वभर के प्रसिद्ध पुस्तकालयों और

प्रकाशकों के प्रतिनिधि जब मिले तो उन्होंने यही कहा कि ई-बुक्स हमारा भविष्य हो सकती हैं, पर फिलहाल पूर्णतः हम छपी हुई किताबों से मुक्त नहीं हो सकते। इस बदलाव की परिस्थिति से गुलज़ार की यह कविता बहुत मार्मिक है-

किताबें झांकती हैं बंद अलमारी के शीशों से
बड़ी हसरत से तकती हैं
महीनों अब मुलाकातें नहीं होतीं
जो शामें उनकी सोहबत में कटा करती थीं
अब अक्सर गुज़र जाती हैं
कम्प्यूटर के पर्दों पर
बड़ी बेचैन रहती हैं किताबें
उन्हें अब नींद में चलने की आदत हो गई है
जो कदरें वो सुनाती थीं
कि जिनके सैल कभी मरते नहीं थे
जो रिश्ते वो सुनाती थीं
वो सारे उधड़े उधड़े हैं
कोई सफ़ा पलटता हूँ। तो इक सिसकी निकलती है
कई लफ्ज़ों के मानी गिर पड़े हैं
बिना पत्तों के सूखे टुंड लगते हैं वो सब अलफाज़
जिन पर अब कोई मानी नहीं उगते
जबाँ पर जायका आता था जो सफ़ा पलटने का
अब उंगली click करने से सब इक झपकी गुज़रती है
बहुत कुछ तह-ब-तह खुलता चला जाता है पर्दे पर
किताबों से जो ज़ाती राबिता था वो कट गया है
कभी सीने पे रख के लेट जाते थे
कभी घुटनों को अपने रेहल की सूरत बनाकर
नीम-सजदे में पढ़ा करते थे
छूते थे जबीं से
वो सारा इल्म तो मिलता रहेगा आयिंदा थी
मगर वो जो किताबों में मिला करते थे
सूखे-फूले और महके हुए रुक़ेअ
किताबें मांगने, गिरने, उठाने के बहाने रिश्ते बनते थे
उनका क्या होगा।

*

अध्यक्ष मंडल

श्री गौरीशंकर रैणा :-

मैंने तीनों पेपर सुने एक विशेष शब्द आया है ओरेचर मतलब जो कविता है उसे गा कर सुना कर हम Popularize करते हैं। उसको लोकप्रिय बनाते हैं। हमारे देश में आज भी एक ऐसा कवि है जिसको हाल ही में पद्मश्री मिला। वह छत्तीशगढ़ क्षेत्र से है। वो अपनी कविताओं को गा-गा के सुनाता है। और कहीं लिखता नहीं है। उसकी कविताएं जो हैं, वो सब वहां के लोग गाते हैं। इससे वह और भी लोकप्रिय होती हैं। कविता की शक्ति की बात हुई थी। पहले पेपर में कहा गया था कि हमारे जम्मू-कश्मीर प्रदेश में कविता किस प्रकार से लिखी जा रही है और उसका कितना योगदान है हमारे साहित्य में। और बहुत सारे नाम भी गिनाए गए और इनकी कविता ऐसी रही है वो भी बताया गया। सतीश विमल के पेपर में इ-पाठक की बात हुई है। इ-साहित्य की बात हुई। इ-साहित्य अभी तो हमें स्वीकार भी करना चाहिये और स्वीकार हो भी रहा है। क्योंकि अभी नावल जो हम लिखते हैं। योरुप में एक प्रथा चली है यहां पर कि पूरे का पूरा नावल एस. एम. एस. की भाषा में लिखा जा रहा है। और जो दूसरा पर्चा हमारा था, वो राष्ट्रभाषा के बारे में था। भाषा में जो समय के साथ बदलाव आ रहे हैं, उन्हें स्वीकार करना बहुत जरूरी है। भाषा बदलती है, वह फैलती है तो उन्नति करती है। भाषाओं के बदलाव और फैलने में हमें दूसरी भाषाओं के जो शब्द हैं उन्हें लेना पड़ता है। अभी एक माया शब्द है। माया एक साफ्टवेयर है। माया, हिन्दोस्तानी साफ्टवेयर इंजीनियर ने यू. एस. ए. में जाकर एक स्पैशल ऐफैक्ट बनाया है। हमने मीडिया की बात भी की बाजार में किस तरह से भाषा आती है। बाजार की भाषा कैसी है, विज्ञापन की भाषा कैसी है और उसमें हिन्दी के शब्दों का किस प्रकार का प्रयोग हुआ है। माया, शब्द विश्व का जो स्पैशल एफैक्ट का साफ्टवेयर है उसका नाम माया है और माया हम सब जानते हैं यहां का शब्द है। यह अंग्रेज़ी का शब्द नहीं है लेकिन अंग्रेज़ी ने इस शब्द को स्वीकार किया है और वह माया को उसी अर्थ में समझते हैं जिस अर्थ में हम समझते हैं। अगर माया जैसे शब्दों को अंग्रेज़ी भाषा स्वीकार कर सकती है तो हम अपने ही क्षेत्र की आंचलिक भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में क्यों नहीं स्वीकार कर सकते। इस तरह से भाषा उन्नति करेगी, भाषा फैलेगी।

इ-साहित्य के बारे में एक बात तो कहूंगा कि दिल्ली में एक किताबों की दुकान थी, एक दिन उनका फोन आया कि आप सस्ते दामों पर हमारे यहां से किताबें ले सकते हैं क्योंकि हम यह दुकान बंद कर रहे हैं। उन्होंने कहा आप आधी कीमत पर या जो भी आप कीमत

पसंद करें, क्योंकि मैं अक्सर हर हफ्ते उनकी दुकान से किताबें खरीदा करता था। और वह किताबों की दुकान बंद हो गई। मैंने कहा कि अब वहां क्या खुलेगा, तो कुछ दिनों के बाद वहां कपड़ों की दुकान बन गई थी।

क्योंकि यह महसूस किया जा रहा है कि जो किताब है जब हम उसको लेते हैं, पढ़ते हैं जैसे इन्होंने गुलजार साह्ब की नज़्म का भी जिक्र किया, कहा कि किताबें रिश्ते बढ़ाती हैं। इसलिये इ-बुक्स के होने के बावजूद भी किताब रहेगी और भाषा भी रहेगी। यह बहुत अच्छी बात है। इस प्रकार मैं तीनों पर्चे लिखने वाले विद्वानों को बधाई देता हूं। तीनों पर्चे बहुत अच्छे थे। लेकिन पहला पर्चा श्री कमलजीत चौधरी का पर्चा और बेहतर हो सकता था। आप सबका बहुत-बहुत धन्यवाद।

प्रो. परमेश्वरी शर्मा :-

सबसे पहले इस कार्यक्रम के आयोजक जम्मू-कश्मीर कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी को हार्दिक बधाई। विषय बहुत ही चुनौतिपूर्ण है। इस पर चर्चा-परिचर्चा बहुत ही गंभीर हो सकती है। लेकिन मुझे लगता है कि समय अभाव के कारण और बहुत-से लेखक, बुद्धिजीवी मेरे समक्ष हैं संभवत: उन्होंने बोलने से परहेज किया है। मेरे सामने बैठे सभी वरिष्ठ लेखकगण को मैं सुनना चाहती थी। चंचल मैडम मेरी अध्यापक हैं उनके सामने मैं कुछ बोलने कि दृष्टता नहीं करूंगी। मैडम तो बोल रहीं थी कि सब कुछ बोलना। लेकिन मैं नहीं बोल सकती हूं मैडम मेरी अध्यापक हैं, मैडम आपको मेरा प्रणाम।

इस संगोष्ठी में जो तीन पत्र पढ़े गये। सबसे पहला पत्र ''जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता और युवा कवि'' कमल चौधरी का पत्र बहुत विशाल था लेकिन इसमें शायद या तो कमल की कमजोरी रही या कमल बहुत जल्दी में बोल रहे थे। शुरू में ज्यादा समझ नहीं आया। लेकिन कमल ने हर एक कवि को लिया है। कुछ कवि उससे छूट गये या हो सकता है कि कमल ने जानबूझ कर छोड़ा है पत्र को छोटा करने के लिए। अनिला चाड़क, अभी हाल ही में उनको कोई पुरस्कार भी मिला है, बहुत सारे लोगों का नाम लिया गया लेकिन बहुत सारे छूट जाते हैं। ऐसी कोई बात नहीं। कमल स्वप्रशंसा भी ज्यादा कर गये। हम सभी जानते हैं कि कमल एक अच्छे कवि हैं। बहुत अच्छी पत्रिकाओं में छपते हैं और हमारे बहुत प्रिय विद्यार्थी भी हैं। हम उनको पढ़ते भी रहते हैं, लेकिन थोड़ा हम लोग उनकी कविताओं पे चर्चा करें तो ज्यादा अच्छा लगता। कमल को बहुत-बहुत बधाई। उन्होंने अपने पत्र में हर पक्ष को छूआ है। हर बड़े लेखक का नाम लिया है। हर छोटे कवि को भी उन्होंने यहां स्थान दिया है।

दूसरा पत्र मेरी सहयोगी डॉ. रजनी बाला का था। डॉ. रजनी बाला के पत्र पर मुझे लगता है कि कहीं कोई प्रश्न, कोई Question उठता ही नहीं क्योंकि वह एक अच्छी शोध कर्ता हैं। शोध की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि उसमें स्वयं ही प्रश्न हों, और उसके साथ उसका जवाब भी हो। वो प्रश्न उठाती हैं और साथ ही उसका जवाव भी देती हैं। एक बहुत ही गंभीर और बहुत ही अच्छा पत्र। जरूर बात आती है कि जहां हिन्दी पर बात हो रही है और उर्दू के शब्दों का प्रयोग होता है। कृपया इस बात पर ध्यान दें कि अगर हिन्दी को हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाना चाहते हैं, राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं तो यह हिन्दी के संस्कृत निष्ठ होने की बात मत कीजिये। क्योंकि भाषाओं में कुछ नहीं बंटा हुआ। अभी कुछ दिन पूर्व जब "No Men's Lord" जम्मू विश्वविद्यालय में खेला गया तो उर्दू के एक मेरे सहयोगी ने कहा मैडम यह हिन्दी में कहां था ? हिन्दी विभाग ने खिलवाया, हिन्दी में लिखा गया है लेकिन यह हिन्दी भाषा का नहीं है। यह तो उर्दू का था। अब मुझे समझ नहीं आती कि हम इतने बड़े विद्वान और भाषा मर्मज्ञ और इतनी संकीर्ण हमारी विचारधारा यह अच्छा नहीं लगता। क्योंकि भाषा हमारी पहचान है। हम जम्मू वाले कहीं भी जाकर बोलते हैं तो हमारी भाषा में वो लहजा, वो उर्दू के शब्द वो सब कुछ होता है। और मुझे नहीं लगता किसी को कोई आपत्ति है। यह हमारी पहचान है, हमारी Identity है। रजनी का पेपर बहुत सधा हुआ था। रजनी को बहुत-बहुत बधाई।

तीसरा पेपर मेरे भाई सतीश बिमल का था। ''ई-पाठक और हिन्दी-साहित्य'' आज इ-पाठक तो हम सब हैं। लेकिन किताब का विकल्प कोई नहीं हो सकता। आज भी किताब पढ़े बिना हमें नींद नहीं आती। सारे चैनल देखने के बावजूद हम जब तक समाचार पत्र नहीं पढ़ेंगे हमें तसल्ली नहीं होगी।

इ-पाठक होना अच्छी बात है। हम तो हर वक्त नेट पे लगे हुए हैं। सब कुछ कर रहे हैं और बैठे-बैठे Use कर रहे हैं, हम लोग अपना वाट्स-ऐप। लेकिन उसके वाबवजूद किताब का कोई विकल्प नहीं है। इस बात को सतीश भाई भी मानते हैं। सतीश जी आपको भी पत्र के लिए बहुत-बहुत बधाई। शायद हम लोग अब पुराने-बूढ़े हो चले हैं। युवा पीढ़ी यह कहें मुझे लगता है कि साहित्यिक पाठक पुस्तक को नहीं भूलेगा क्योंकि पुस्तक हमारा जीवन है और हमारी संगिनी है और पुस्तक पढ़कर जो संवेदना हमारे अंदर जगती है वो नेट पर केईं बार वाह्-वाही बहुत अच्छा पढ़ कर कई बार अक्रोश भी आता है कि किसपे किसी ने क्या लिख दिया ? आप सब का बहुत-बुहत धन्यावाद।

*

अध्यक्षीय वक्तव्य

प्रो. चंचल डोगरा :-

अकादमी का धन्यावाद कि उन्होंने मुझे यह अवसर प्रदान किया। साथ में बधाई कि इस प्रकार के कार्यक्रम वह करवाते रहते हैं। इस सत्र के तीनों पत्र बहुत अच्छे थे। बड़ी मेहनत की गई थी। तीनों लेखकों को बहुत-बहुत बधाई। कमलजीत ने मेहनत बहुत की। समय अभाव रहा उन्हें। उन्होंने खुद ही कहा, जिसके कारण उनका पत्र थोड़ा-सा अव्यवस्थित हो गया था। रैणा साहब ने बहुत अच्छी बात कही कि किसी भी क्षेत्र का साहित्य लेना हो तो उसके इतिहास से हमें चलना चाहिये। रूप-भवानी से चलना चाहिये था 600 साल पहले जिन्होंने छायावादी कविताएं लिखी थीं। चाहे संक्षेप में ही लेते। कमल जी से मैं थोड़ी सी असहमत हूं। शायद उनका विषय ही ऐसा था, युवा कवि। और उन्होंने कवियों को उम्र के साथ बांट दिया। यदि कवियों को बांटे, ठीक है लेकिन साहित्य नहीं बंटता। जो साहित्य पचास वर्ष की कम आयु के लोग लिख रहे हैं, वो साहित्य शायद मेरे जैसे सत्तर वर्ष की उम्र के लोग भी लिख रहे होंगे। वो बात नहीं है, क्योंकि साहित्य को बांटना हो तो उसकी वृति, प्रगति के अधार पर उसका वर्गीकरण कर सकते हैं। उम्र के अधार पर नहीं कर सकते और कहीं पर वह सही भी हैं क्योंकि जम्मू कश्मीर के युवा कवि कहां स्थापित हैं शायद यह उनका विषय रहा होगा। जम्मू-कश्मीर के साहित्य में जो राष्ट्रीय धारा के सामान्तर कविता चल रही है वो आज से नहीं चल रही है और यह युवा आज यहां हैं, कल हम यहां थे कल वो वहां बैठेंगे। पर जो काव्य की प्रवृत्ति है। समसामयिक जो वृत्तियां आती हैं। समस्याएं आती हैं। उन्हें छोड़कर बाकी साहित्य की संवेदनाएं वही हैं। वही प्रेम है, वही निष्ठा है, वही विश्वास है, वही विसंगतियां हैं, वही विद्रूपताएं हैं। यह कहीं खत्म नहीं होती। ऐसा नहीं है कि पुराना नहीं लिखा और नया लिख रहा है। यह हमेशा रहेंगी यह साहित्य की शाश्वत कालजयी वृत्तियां हैं। जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती हैं। फिर भी उन्होंने बहुत कुछ समेटा है। बहुत अच्छा लिखा है। मेहनत बहुत की है। वही समय-अभाव के कारण वह उसे दुबारा नहीं पढ़ पाए होंगे। अगर वह ऐसा कर लेते तो शायद बात आगे-पीछे न होती। बहरहाल कमलजीत को बहुत-बहुत बधाई।

दूसरा पत्र डा. रजनी जी का था। उनका विषय ही ऐसा था कि 'राष्ट्रभाषा की समस्याएं और समाधान'' समाधान वो खुद ही करती चली गयीं तो उसपे क्या बात की जा सकती

है। एक बात कही जा सकती है जैसा उन्होंने खुद भी बतलाया कि प्रिंट मीडिया, इलैक्ट्रानिक मीडिया और जो हिन्दी सिनेमा है। इन्होनें इस भाषा को जितना प्रसारित प्रचारित किया है, उनका इसमें बहुत बड़ा योगदान है। आप अगर विदेशों में जाएंगे वहां जो शादियां होती हैं तो वहां की जो Maid है वो भी यह गाने जानती हैं, Popular Hindi फिल्मों के। चाहें वह उनके अर्थ न भी जानती हों। लेकिन इनका वो बहुत आनंद लेते हैं। Enjoy करते हैं। रही भाषा की बात या शब्दों के चयन की बात तो जो कोई भी जिस भी प्रदेश में बैठ कर लिख रहा है, उस प्रदेश की आंचलिकता का उसके साहित्य में होना आवश्यक है। वही उसको थोड़ा अलग करता है। वह उसकी विशिष्टता बन जाता है। अगर ऐसा न हो तो सब में एकरसता आ जाएगी। दिल्ली में बैठा हुआ, जम्मू में बैठा हुआ या गुजरात में बैठा हुआ व्यक्ति लिख रहा है तो उसमें आंचलिकता का आना स्वाभाविक है और जितने प्रादेशिक शब्द भाषा में आएंगे भाषा उतनी ही समृद्ध होती जाएगी। इसमें कोई दो राय नहीं है। हमें इस से परहेज नहीं करना चाहिये। यदि पंजाब में बैठा हुआ कोई व्यक्ति कहानी लिख रहा है उसका सारा वातावरण वहीं का है तो क्या पंजाब के खेत, वहां की मक्की की रोटी, सरसों का साग नहीं आएगा। आएगा और उसे आना ही चाहिये। रजनी जी का पत्र बहुत अच्छा था। समस्याओं की बात चल रही थी। वैश्वीकरण के जिस दौर में हम जी रहे हैं। इसमें एक भाषा की तो आवश्यकता है। जिसे सभी जानते और सभी बोलते हों। ज्यादातर लोग प्रयोग करते हों सभी तो नहीं कहूंगी तो वह है अंग्रेज़ी। इसे नकारा नहीं जा सकता। इसे आप छोड़ नहीं सकते। यदि हम राष्ट्र भाषा की बात करते हैं तो हम मातृ भाषाओं को क्यों भूल जाते हैं। सबसे पहले तो हमें अपनी मातृभाषा आनी चाहिये। रजनी जी को खूबसूरत पत्र के लिए बहुत-बहुत बधाई।

सतीश विमल जी का पत्र बिलकुल Information Technology से जुड़ा हुआ पत्र था। एक बात विमल जी ने बहुत अच्छी कही कि इससे ज्यादातर लोग असहज हो रहे हैं। मेरे जैसे बहुत-से लोग हो सकते हैं, जिन्हें इसका ज्ञान नहीं है और एक बात तो आप यकीनन मान कर चलिये कि उम्र के साथ-साथ बातें दिमाग में ज्यादा देर तक नहीं रहती। यदि हम सीखते हैं तो दूसरे पल भूल भी जाते हैं। बच्चों से पूछना पड़ता है क्योंकि आए दिन नई-नई Technology आ रही है। इस इ-वर्ल्ड के साथ चलने के लिए सीखना पड़ेगा। समय के साथ चलने के लिए। इ-बुक्स की बात हो रही थी। मैंने देखा है बच्चों को कि वो पूरी की पूरी नावल Download करते हैं और पड़ते हैं। उनके लिए किताबों का कोई महत्त्व नहीं है। हमारे लिए जरूर है। यहां तो लिटरेचर की बात हो रही है। विदेशों में तो Home Work भी फोन पे आता है और वहीं करके बच्चे इ-मेल कर देते हैं। और वहीं से रिपोर्ट आ जाती है। यानि लिखने की तो आदत है ही नहीं। आप Handwritting देखिये उनकी। शर्म आती है कि बच्चे बी. ए., वी. ए. कर गये है, कितना कितना पढ़ गये हैं और उन्हें लिखना नहीं आता। Spellings नहीं आते। क्योंकि Mobile है या कम्प्यूटर है वो आपकी Help कर रहा है। नई Vocabulary आ गई है नये Spellings आ गये

हैं। जिससे हम असहज होते हैं। लेकिन होना नहीं चाहिये। क्योंकि अगर हम असहज हो जाएंगे तो यह बच्चे भाग जाएंगे आगे-आगे और हम बहुत पीछे छूट जाएंगे।

यह जो इ-मेल है क्या इसमें हमारा सारा संवेदन संप्रेषण है, हो पाता है इनसे नहीं होता। याद करिये वह पुराना समय। चिट्ठियों का समय। पत्रों को बार-बार पढ़ना, डाकिये का इंतजार करना वह सब चला गया। अंतर्देशीय पत्र चले गये, पोस्टकार्ड चले गये यानि हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत जो है संस्कृत वो वी लुप्त हो रही है। कुछ इसमें परेशानियां तो हैं। और इनसे हमें जूझना है। जूझ रहे हैं। पर बात यह है कि हम इन्हें कंकाल बना के पकड़ के भी नहीं रख सकते अपने साथ। क्योंकि हमें आगे बढ़ना है। आप सभी को बहुत-बहुत बधाई एवं धन्यवाद।

*

प्रथम दिवस : 27 मई 2016

द्वितीय सत्र	:	कवि सम्मेलन
अध्यक्षता	:	श्रीमति संगीता गुप्ता (प्रिंसिपल कमिश्नर इंकम टैक्स विभाग)
अध्यक्ष मंडल	:	डॉ० अग्निशेखर, माधव कौशिक, श्रीमती आशा शैली
मंच संचालन	:	श्रीमती रीटा खडेयाल
सत्र की रिपोर्टिंग	:	यशपाल निर्मल

कवि सम्मेलन

मंचासीन : श्रीमती संगीता गुप्ता (प्रिंसीपल कमिश्नर), डॉ० अग्निशेखर,
श्री माधव कौशिक, श्रीमती आशा शैली तथा रीटा खडयाल

कवि गोष्ठी : अध्यक्ष मंडल

कवि सम्मेलन

मैडम संगीता गुप्ता

श्री माधव कौशिक

कवि सम्मेलन
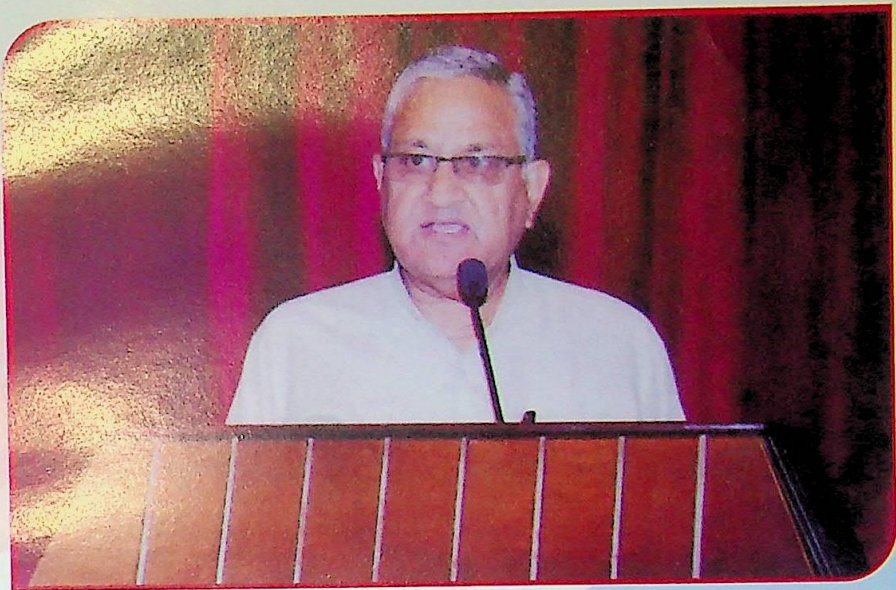
डॉ० निर्मल विनोद
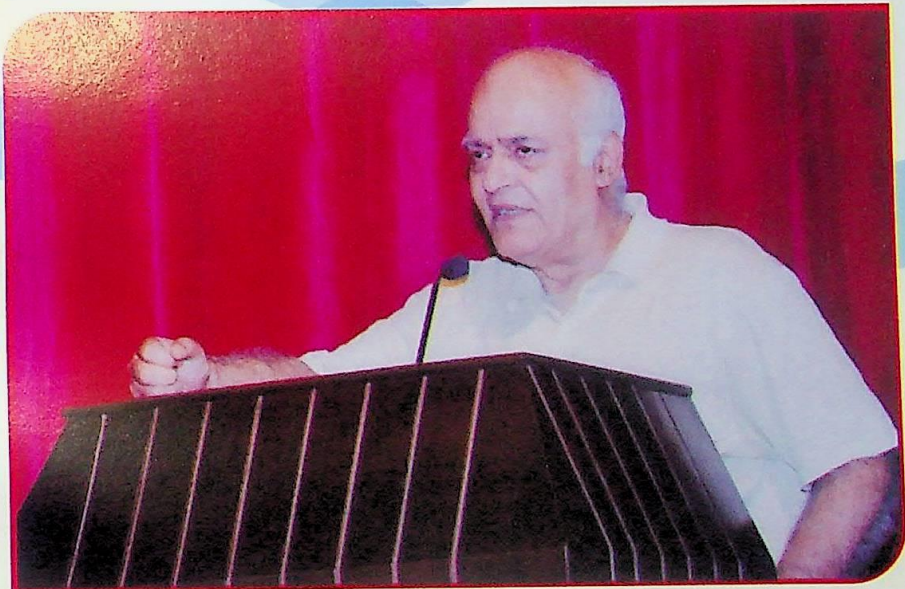
श्याम बिहारी जुनेजा

कवि सम्मेलन

महाराज कृष्ण संतोषी

प्रो० चंचल डोगरा

कवि सम्मेलन

श्रीमती नीरू शर्मा

जनाब निदा नवाज़

कवि सम्मेलन

डॉ० अरुणा शर्मा

श्री नरेश कुमार 'उदास'

कवि सम्मेलन

डॉ० पवन खजूरिया

श्रीमती शारदा साहनी

कवि सम्मेलन

श्रीमती क्षमा कौल

श्री सुनील शर्मा

कवि सम्मेलन

डॉ० आदर्श मल्होत्रा

सुश्री शकुंत दीपमाला

कवि सम्मेलन

श्रीमती कृष्णा गुप्ता

श्रीमती सोनिया उपाध्याय

कवि सम्मेलन

सुश्री चांद दीपिका

श्रीमती विजया ठाकुर

कवि सम्मेलन

श्रीमती प्रामिला जम्वाल

श्री कृष्ण चन्द्र महादेविया

कवि सम्मेलन

शेख मुहम्मद कल्याण

श्री कृष्ण शर्मा

कवि सम्मेलन

श्री सुधीर महाजन

कुं शक्ति सिंह

कवि सम्मेलन

श्रीमती अमिता मेहता

श्रीमती सुनीता भड़वाल

कवि सम्मेलन

कु. शिवानी आनंद

कवि गोष्ठी की संचालिका : रीटा खडयाल

चित्रकार बंसी पारिमू की पुण्यतिथि पर

□ अग्निशेखर

तुमसे कहा था मैंने
मत करो कश्मीर में चिनारों के काटे जाने पर हंगामा
मत कहो इनकी ज़ड़ों में हमारी जड़ें हैं
हमारी भाषा है अमृत के घड़े हैं
तुमसे कहा था मैंने
मत करो स्मृतियों के लूटे जाने पर
और इतिहास को धीरे-धीरे बदलने का विरोध

मत कहो पुरखों के कोठार में
क्यों छिपाए जाते हैं
मेहमान मुजाहिद्दीन

तुमसे कहा था मैंने
मत चिल्लाओ दिल्ली में जंतर मंतर पर अकेले
एक तरफा मानवाधिकार वादियों
और छद्म बुद्धि जीवियों के सामने
मत लिखो शरणार्थी कैंपों से
सांसदों की अपीलें

तुमसे कहा था मैंने
मत बनाओ जलावतनी में
अनदेखी के मकड़जाले की पेंटिंग
जिसमें धूप के तपे तबुंओं में
जीनोसाइड के कैदी से हम
मरते बिलखते

तुमसे कहा था मैंने, रुको!
और तुम चल दिए संसद के सामने
हमारी कविताओं के पोस्टर पहने
और मर गए गिरकर सड़क पर वहीं..
तुमसे कहा था मैंने....

*

साज़िशें पसरीं

□ डॉ. निर्मल विनोद

कट रहीं उम्रें निरन्तर
मरुथलों में

नागफनियां घाव देती हैं
रक्त के कण मोल लेती हैं

दंश घातक झेलते पातक पलों में
कट रहीं उम्रें निरंतर मरुथलों में

नियति का आलेख ऐसा है
भोगना है जैसा-कैसा है

विष हमारे भाग के अमरित फलों में
कट रहीं उम्रें निरन्तर मरुथलों में

टूटते बुत नित्य माटी के
नागरिक अभिशप्त घाटी के
साज़िशें पसरीं प्रपंची हलचलों में
कट रहीं उम्रें निरन्तर मरुथलों में

*

लंबी कविता

श्यामबिहारी जुनेजा

सियासत और कवि

मायावी दर्पण
दादुर बहस में छेड़ा
सियासत ने
फिर वही पुराना राग

''वे केवल
नफरत के चश्मे से देखते हैं,
उसी का नतीजा थी
छह दिसंबर की काली तारीख...!!!''

कवि का बयान

''रही होगी...
छह दिसंबर...
काली तारीख!

समय बीत चुका है
कौन कितना याद रखे...

याद करने को तो
और भी बहुत कुछ है..
कहे तो खोलूँ पन्ने...?''

इतिहास को
नफरत के पहाड़ में बदलने वाले
बहुत मिलते हैं...
पर कवि की याद में बसता है
पहाड़ के सीने से
रास्ता खोजनेवाला...दशरथ मांझी!

और फिर
नफरत का चश्मा
किसकी देन है री...?

क्या उनकी नहीं...
जिन्हें अपने सिवा
सारी दुनिया
दुष्ट, काफ़िर नजर आती है ?

छः दिसम्बर
सन ब्यानावें
को याद करते हुए
उन्नीस जनवरी
सन नब्बे को
क्यों भूल जाती है...चोट्टी ?

चार लाख
जीते जागते
हाड-मांस के लोग
निष्कासित कर दिए गये थे
अपनी जन्म-भूमि से...
और तू
पत्थरों को रो रही है ?

एक बुराई के पक्ष में
दूसरी को कोसने की
तेरी मंशा क्या है ?

०

सियासत का गुस्सा

''यह तो उस कवि की भाषा
बिल्कुल नहीं
जो सहृदय होने का दावेदार
सबका मित्र है...!''

यह तो कंटीले तारों को

आत्मा में धंसाते
किसी ब्राह्मणवादी की भाषा है
जो हिंदुत्व के दम पर
सत्ता की कुर्सी के साथ
यहाँ की समूची धरती,
समूचा आसमान,
यहाँ की कलकल बहती नदियाँ,
चहचहाते पंछी
सब अपने नाम कराना चाहता है...

समूचा आंगन
सिर्फ उसे चाहिए,

उसे उस आँगन में
किसी और को
खड़े भी नहीं होने देना है...!

०

कवि ने लताड़ा

''सुन सियासत...!
जानकार
तुझे मलाल हो शायद

इस अनिकेत कवि के पास
तेरे सिवा
किसी से उदास होने की
न फुर्सत है, न कारण...

निष्कासन की आग में झुलसी
शोर मचाती उसकी अपनी भाषा है
जिसका व्याकरण भी उसका अपना है

उसे किसी
ब्राह्मणवाद या
मुल्ला-परस्ती से
कुछ लेना-देना नहीं

यह बैसाखियाँ तो
कबसे तेरे लिए आरक्षित हैं...''

वह तो किसी बुराई के
'स्मरण' तक के पक्ष में नहीं
कि बुराई का स्मरण भी
उसे बुलाने का काम करता है

मत कुरेद कवि के घाव,
केदारनाथ को सम्भालना
तेरे बस का नहीं

हो सके तो
इस प्रश्न का उत्तर भी
लाना कहीं से..

समूचा आंगन किसे चाहिए ?
सारी पृथ्वी को
बीमार फलसफों के नाम पर
कब्रगाह में बदलने वालों को ?
या
अपने अस्तित्व के लिए जूझती
उन कौमों को
जो अपने अंत के कगार पर खड़ी हैं ?

हालाँकि...तू
कवि की रुचि का विषय
है ही नहीं...

लेकिन
उसकी निरपेक्ष चुप्पी को
एक पक्षीय,
एकांगी न्याय की
पक्षधरता भी न समझ लेना...!!!

*

बंदूक की नोक पर बैठी चिड़िया

❑ महाराज कृष्ण संतोषी

कुछ देर के लिए
बंदूक की नोक पर बैठी चिड़िया
उनींदे सिपाही की आंखों में
डाल गई एक तिनका ओस भीगा

चिड़िया ने क्या देखा बंदूक से
कोई नहीं जानता
पर सिपाही को अब बंदूक से
केवल चिड़िया ही दिखाई देती है
जिसे वह अपने भीतर
चहचहाते हुए अनुभव करने लगता है
सोचता है सिपाही
कहीं उस की मृत बेटी
चिड़िया बनकर तो नहीं आई थी

अब हर बार
जब सिपाही ट्रिगर पर उंगली दबाता है
उसे अपनी बेटी की चीख सुनाई देती है
और वह कांप जाता है।

*

कविता

❒ चंचल डोगरा

उसने कहा–
'चलो लौट चलें'
'कहाँ ?' मैंने जानना चाहा
'जहाँ सभी जाते हैं'
'अपने घर।'
'अपने घर ?' मेरे चौंकने पर कहा–
'हाँ, अपने-अपने घर।'
'मुझे नहीं लौटना,
अभी तो सँभली हूँ;
संभल कर
अभी-अभी तो उतरी हूँ
सागर की फेनिक लहरों में...
अभी तो खिसकना भी प्रारंभ नहीं हुई
कदमों तले–
सागर की रेतीली ज़मीं।
अभी तो करना है महसूस
कण-कण की फिसलन को
अभी कैसे लौट सकती हूँ ?
अभी तो मैंने कुछ बीना ही नहीं
न शंख, न घोंघे न सीपियां
कुछ और न सही–
शंख तो बीन ले ही जाऊंगी–
अपने संग।
दिव्य ध्वनि से करते हैं–
शोषित,
चीत्कारों, कराहों से पीड़ाएं
रिसाव।

उसने कहा–'देखो, सीपियां
उँडेल रही हैं–
मोतियों के उजास;
एक-आध तो उठा ही लो–
सीप-कलश;
पर शीघ्रता करो–
लौटना है– 'दीया-बाती से पूर्व'
मैंने कहा–
क्या करूँ ऐसे उजासों के स्त्रोत...
जो स्वयं ही कैद हैं
वह मुझे क्या मुक्त करेंगे।
देखो...सागर में झिलमिलाने लगे हैं
दीये...
भरने लगे हैं प्राणों में उजास
यही उजास लिए
लौट चलते हैं–
अपने घर
नहीं–
अपने-अपने घर।
मित्र ने कहा–
''कविता चाहे छूट जाए
पर तुम कविता बनी रहना''

× × ×

कविता कभी नहीं मरती...
गुज़रते हुए...
वेध; अवेध्य, चक्रव्यूह
शब्द देह के;

पैठ जाती है–
रोशनियों के अतल सागरों में–
लाती है समाधान
अनुत्तरित प्रश्नों के;
देते हुए दस्तक,
अनबिंध द्वारों पर,
हौले से है सरकाती...
रौशन नहाई–नहाई सी कविता
कविता कभी नहीं मरती।
मित्र;
हिमानी प्रांगण में–
उतरती है हिंडोले से
धवल रजत किरणों के..
ले आती है...
असीम हिमानी शांति।
होती नहीं है–
सदा–सहज कविता
सहजावस्था को फेंक
रौद्रता तांडव की भी–
ले आती है कभी–कभी
ज़रा सी;
मच उठता है
विध्वंसकारी हाहाकार–

प्रलयकारी नृत्य–
दहलाता है
दिक्–दिगन्त
धू–धू कर उठतीं
लपटें महायज्ञ की
और–
भस्मी भूत अवशेषों पर
उद्भिद् अंकुर
गर्वीला।
मित्र
रूह से जन्मी
रूह तक पहुँचती है कविता
कविता कभी नहीं आती, मित्र

*

विवशता

❑ नीरू शर्मा*

गरीब माँ भी
अपनी कोख में
बड़े ही प्यार से, दुलार से
पालती है अपने बच्चे को
बुनती है सुनहरे सपने
उसके उज्जवल भविष्य के
पर वह नहीं जानती
कि कुछ बरसों बाद
भव्य महलों के शिकारी
छीन कर ले जाएंगे
उसके जिगर के टुकड़े को
देकर मात्र आश्वासन
उसकी अच्छी परवरिश
देखरेख और पढ़ाई का
माँ का दुलारा
वह नन्हा दिन-भर
चक्कर घिन्नी की तरह
नाचेगा उनके इशारों पर
करेगा साफ-सफाई
उनकी कोठी की
समेटेगा घर के प्रत्येक
छोटे-मोटे काम
और फिर घुमाएगा
उनके बच्चों को
मांजेगा उनके जूठे बरतन
और बदले में
बचा-खुचा खाना देकर
करते हैं एहसान उस पर
दिन का थका हारा
रात को फर्श पर
चद्दर बिछा सोते समय
याद कर माँ का दुलार
झरते हैं आंसू
उसकी आंखों से बेहिसाब
और उसी चद्दर में समा
खो देते हैं अपना अस्तित्व
वह अपनी वीरान
सूनी आंखों में
माँ की तस्वीर सजा
न जाने कब सो जाता है
और अलसुबह
मालिक की आवाज़ सुनते ही
सकपका कर उठ जाता है
कभी-कभार काम करते-करते
यदि लग जाती है उसे झपकी
तो जोरदार थप्पड़ से
चिहुंक उठता है वह
सहलाते हुए अपना गाल
और फिर से
जुट जाता है

* 558/3, सैक्टर सी, सैनिक कालोनी, जम्मू।

कोल्हू की बैल की तरह
अपनी दिनचर्या में
दूसरी ओर माँ की आंखें
अनायास ही छलक उठती हैं
अपने नन्हें को याद कर
ज़ोर से धड़कता है दिल
सीना चीर बाहर निकल
अपने बच्चे को, कस कर
छाती से लगाने को
लालायित हो उठती है वह
उससे मिलने को
पर फिर विवश हो
सोचती है
बड़ी कोठी में
सुरक्षित है, उसके नन्हें का भविष्य
मिलता होगा उसे अच्छा खाना
पहनने को सुंदर कपड़े
रोज सुबह जाता होगा पाठशाला
पर नहीं जानती वह कि
उसका राज दुलारा
तरसता है उससे मिलने को
उसके हाथ की पकी रूखी रोटी
प्याज़ और नमक के साथ
उसकी गोद में बैठ खाने को
उसकी छाती से लग
जी-भर प्यार पाने को
कभी-कभी वह
ईश्वर से पूछता है
क्यूं कर दिया दूर
उसे माँ से
क्यूं देते हो
इन कोठी वालों को

हमारे घर का पता
देखो न
अपने बच्चों को
कितने प्यार से
खिलाते-पिलाते हैं
नित-नये कपड़े पहनाते हैं
रोज गाड़ी में बिठा
स्कूल ले जाते हैं
और मैं....?
मैं भी पढ़ना चाहता हूँ
माँ-बापू के पास
रहना चाहता हूँ
पर कैसे ?
जब मास्टर जी
पढ़ाते हैं इनके बच्चों को
तो मैं भी उनकी छोटी
टूटी पेंसिल से
कागज़ के लिफाफे पर लिखता हूँ
माँ, मुझे याद हो गई है
सौ तक गिनती
कर लेता हूँ
हिसाब-किताब, जमा-बाकी
क से किताब
ख से खाना
ग से गाना
अक्सर काम करते-करते गाता हूँ
हम होंगे कामयाब एक दिन
और फिर
घ से घर जाना
च से चाचू से मिलना
छ से छड़ी
कभी नहीं भूलता हूँ मैं

क्यूंकि अक्सर पिटता हूँ
इसी छड़ी के साथ
प से पापा
जिन्हें मैं बापू कहता हूँ
फ से फूफी
ब से बहन
भ से भाई
म से माँ
तुम सब बहुत याद आते हो
भाई मैं तुम्हारे साथ
खेत-खलिहानों में
भागना दौड़ना चाहता हूँ
बगीचों से चुरा
फल खाना चाहता हूँ
माँ अब मैं
सेब को ऐपल
केले को बनाना
आम को मेंगो कहता हूँ
सभी फलों के नाम
अंग्रेज़ी में याद हो गए हैं मुझे
अब तो मैं पढ़ने लगा हूँ माँ
ले जाओ न मुझे घर
मैं घर आना चाहता हूँ
तुम सब से मिल
बतियाना चाहता हूँ
माँ मुझे ले जाओ न घर
मुझे ले जाओ न।

*

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ

❑ निदा नवाज़

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां मशकूक होना ही होता है
मर जाना
जहां घरों से निकलना ही होता है
ग़ायब हो जाना
जहां हर ऊँचा होता सिर
महाराजा के आदेश पर
काट लिया जाता है

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां झूठ की आँखों में आँखें डालना ही
होता है अपनी आँखें निकलवाना
सिर उठा के चलना ही
होता है अपनी मौत को बुला लेना
आगे बढ़ जाना ही होता है
अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारना
और सच के हक़ में बोलना ही
होता है
सदैव के लिए बेज़ुबान हो जाना

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां घर से निकलते समय माएँ
अपने बच्चों के गले में
परिचय-पत्र डालना कभी नहीं भूलती
भले ही वह भूल जाए
टिफन या कताबों के बस्ते
अपने नन्हों के परिचय की ख़ातिर नहीं
बल्कि
उनका शव घर के ही पते पर पहुंचे
इसकी ही चिंता है उन्हें

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जिसकी सीमाओं की फ़ज़ाओं पर
वर्षों से मंडरा रहे हैं
चील, कौए और गिद्ध
और जहां मानव-कंकालों का
लगा हुआ है अंतहीन-पर्व

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां के जन-गणना-दफ़्तरों में
आधी-माओं और आधी-विधवाओं की
बढ़ती जा रही हैं सूचियाँ
जितनी बढ़ती जा रही हैं
लापता किये गए लोगों की संख्या

मैं उस स्वर्ग में रहता हूँ
जहां बच्चा होना होता है सहम जाना
जवान होना होता है मर जाना

औरत होना होता है लुट जाना
और बूढ़ा होना होता है
अपने ही सन्तान का
कब्रिस्तान हो जाना

मैं उस नर्क में रहता हूँ
जो शताब्दियों से भोग रहा है
स्वर्ग होने का एक
कड़ुआ, और झूठा आरोप।

*

कर्फ्यू

चील ने भर दी है
अपने पंजों में
शहर की सारी चहल-पहल
सड़कों पर घूम रही है
नंगे पांव चुप्पी की डायन
गौरैया ने अपने बच्चों को
दिन में ही सुला दिया है
अपने मन के बिस्तर पर
और अपने सिरहाने रखी है
आशंकाओं की मैली गठरी
दूर बस्ती के बीच
बिजली के खम्बे के ऊपर
आकाश की लहरों पर
किश्ती चलाता एक पंछी
गिर कर मर गया है।

*

बुद्ध से

□ डा० अरुणा शर्मा

नारी नरकस्य द्वारं,
नारी नरकस्य द्वारं
मैंने दो बार पढ़ा
मेरा स्वर गीले बादलों सा भारी हो आया
फिर भी बजी नहीं तालियां

आप में से
बुद्ध नहीं है क्या कोई ?
बुद्ध कहां है ?
कहां है बुद्ध ?

आसान था कहना बहुत
आपने कह दिया
महात्मा आसान था ज्यों उसे पछाड़ना
महात्मा 'यशोधरा' का कसूर कहो...!!

'यशोधरा' के जीवन का सार कहो
कहो, उस तप की बात कहो
तुम्हारे तप की नींव में दबे उस तप की बात करो
उसकी पुतलियों में दुबके डर
को महसूस करो...
कोमलाङ्गी थी
अंधड़ों में घिरी
महात्मन्
महान आत्मा
उसकी रातों के अंधेरों का
हिसाब करो...
करो!
उसकी कैद की बाबत बात करो
आप चुप हैं।
चुप क्यों हैं ?

'नारी नरकस्य द्वारं'
मैं कहे देती हूँ।
इसमें फड़कता सा कुछ नहीं
अब आप कुछ नया कहो
कहो, उस मानिनी की पीड़ा कहो!

जानते हो
उसके आँसुओं से ही है समन्दर का खारापन
और बेचैनी
उसका स्वाद चखो!

महात्मन्
चीख कर पछाड़ खाई थी जो
बलि की उस बकरी की बात कहो
करो महात्मन्...
अपनी भूल का पश्चाताप करो!

उसी द्वार से गुजरे तुम
स्वर्ग/मोक्ष को पाए
महात्मन्
उसे नरक का द्वार तो मत कहो!!

*

* 54 ए/बी गाँधीनगर, जम्मू-180004 (मो.-09419805782)

तुम उतर आओ मेरे मन में

❑ नरेश कुमार 'उदास'*

तुम उतर आओ
मेरे मन में
जैसे पहाड़ पर
सदियों में उतरती है
गुनगुनी धूप।

तुम उतर आओ
मेरे मन में
प्रेम बीज के रूप में फूटो
और फैल जाओ
अन्तकरण में
प्यार की खुशबू बिखराओ।

तुम ऐसे सज जाओ
जैसे बसंत में
फलता-फूलता है
पेड़ों का संसार
और बुराँश के फूलों सा
मेरे मन में दहको।

तुम उतर आओ
मेरे मन में
और किसी झरने सी बहो
ताकी मेरे भीतर की
तपती प्यास बुझे।

तुम उतर आओ
मेरे मन में
और मेरे मन आकाश पर छा जाओ
सूरज की भांति
और कण-कण को
स्वर्णिम आभा से भर दो।

तुम मेरे जीवन में
ऐसे घुल-मिल जाओ
जैसे नमक और पानी
घुल जाता है।

तुम ऐसे रहो
मेरे साथ
जैसे जीभ पर
बना रहता है स्वाद
जैसे आँखों में
बनी रहती है रोशनी
जैसे जीवन में पलते हैं
सुंदर सपने।

*

* आकाश कविता निवास, म०न० 54, लेन न० 3, लक्ष्मीपुरम, सैक्टर बी-1 (चनौर) पोस्ट बनतालाब, जि० जम्मू-181123 (मोबा-9419768718; लेंडलाईन 0191-2595718)
E mail hareshudass.111@gmail.com

उदास लम्हों में

❐ डॉ० पवन खजूरिया

उदास लम्हों में
सोचता हूँ
इन्साफ़ अब खूंटी पर
टंगने लगा है।
समय के क्रूर पंजों में
फंस कर अर्जी
तड़पने लगी है
किसी की बीबी भाग जाए
वहशी उन्माद भड़क जाए
या गीला हो जाए
किसी का पाजामा
इधर हर बात के लिए
लोग राजा को ही
ज़िम्मेवार ठहराने लगे हैं।
उसने तो नहीं छीना हक
किसी बूढ़े या जवान का।
चस्पां नहीं की
तुम्हारी तरह
अपनी दोहरी
प्रतिबद्धताएं
भौंदे-कचोटते नारों से
छलनी कर देना चाहो
मां का सीना
लम्पट चूहे
दाड़ी में घर बनाना चाहें
तो राजा चुप नहीं
बैठ सकता।
उसने त्याग दी हैं
बैसाखियाँ
आखिर उसे बंदरों ने
नहीं लोगों ने चुना है।
अच्छा है, हम सीख जाएँ
अच्छी बातें
फिर जरूरत न होगी
कैमरा घुमाने की।
तम्बाकू के धुएँ से
मर जाने वाला नहीं सोचता
राजा तो सिग्रेट नहीं पीता।
वह दूसरों का सिग्रेट
की डिबिया
नहीं समझता
नहीं थमाता माचिस
जलाने वालों
हाथों में,
राजा सीख ही जाएगा
सत्ता के गलियारों के
दाँव-पेच
फिर होगा इन्साफ़
वह नहीं मरेगा
कीलों भरी खूँटी पर
बांटेंगे बीच चौराहे में
उदास लम्हों से निकल

*

मेरा भीष्म

❑ शारदा साहनी *

महाभारत का युद्ध देखने के लिए
मेरे भीष्म को
काँटों की शय्या पर लेटना है।
चाहे क्यों न वह
अंतिम श्वासें गिनता हो
यही उसकी नियति है
जीवन तो उसी को
मापना पड़ेगा...
यहाँ द्वापर है
दो पैर द्वापर के
एक पाप का...
एक पुण्य का...
मेरे भीष्म ने
हस्तिनापुर का आंगन बुना था...
एक ओर हस्तिनापुर
दूसरी ओर भीष्म...
मेरे भीष्म ने
भीष्म प्रतिज्ञा की थी....
तप झेला था
तप की आग
मेरे भीष्म की आग में
घुल मिल गई थी....
हवाओं ने वहाँ घोंसले बनाए थे
चांदनी ने गीत गाए थे।
ऊसर चटियल मैदानों के शून्य में
भीष्म ने सन्नाटे बुने थे–
उसके तप की गर्माहट में
धरा और नभ थर्राए थे
देखते ही देखते
कौरवों और पांडवों में
दीवारें तन गईं–
दीवारों पर सोने की
परतें चढ़ गईं–
तारीखें टंग गईं
इतिहास बन गए–
शंख ओठों से लगाते ही
युद्ध और मौत के नगाड़े बज गए
कुरूपता के दरिया बह गए–
अहंकार तन कर खड़ा हो गया
चीथड़ों की गठरी सिर पर लादे
भिक्षुक सा राजपथ पर बड़ा हो गया–
पर...
मेरे भीष्म के मन के सन्नाटे में
कृष्ण ने ओठों से बांसुरी को
क्या लगाया....
कि गीता के गीत
छहों सुराखों से
झरने लगे...
''नैनं दहित पावक:
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणी'' के

---

* लेन न. 2., हाऊस न. 14, सूर्या विहार, तलाब तिल्लो बोहरी, जम्मू।

दरिया ज्यों बहने लगे....
मेरे भीष्म का भिक्षा पात्र
तत्क्षण प्रेम से भरने लगा
दूर कहीं से
मेरा बुल्ला भी गा उठा
''सईयो नी मैं गई गवाची
जिस वल वेखां दिसदा ओही''–
मेरे भीष्म की आंखों में आंसू हैं
वह प्रेम में ही
डूबा रहना चाहता है–
पर वह कांटों की शय्या पर लेटा
अन्तिम श्वासें गिनता है
उसकी छाती में गहरे ज़ख्म हैं
तभी वह भीड़ में से
जान अख़्तर को सुनता है–
यह इश्क नहीं आसान

इतना तो समझ लीजै
इक आग का दरिया है
और डूब के जाना है
और इन आवाज़ों में
मेरा भीष्म
खो गया है, डूब गया है;
कृष्ण अब मेरे भीष्म के
पायताने बैठ गया है
वह बांसुरी सुनाता है
बात अब यों रुख लेती है
कि कांटे उसे चुभते नहीं
फिर जन्म क्या ?
और मृत्यु क्या ?
सब उसे उत्सव लगता है
बस....
उत्सव ही लगता है।

*

'कथा एक तिथि की'

❑ क्षमा कौल

'कथा एक तिथि की'

आ रही है धीरे धीरे
वह तिथि समीप
छब्बीसवीं बार ?
हां छब्बीसवीं बार।

इस बीच हमने कितने ही बंजर लिए बुहार...
घुटती रही चीखें और पुकार
ताक ली अनगिन सरकार
किंतु आती रही यह तिथि बार बार
बारंबार।

तब हम अवाक रह गए कि महान चिंतकों,
विचारकों, सरस्वती-पुत्रों ?
संस्कृति-पुरुषों, अध्येताओं,
नीतिकारों, इतिहासकों, शोधकर्ताओं
आचार्यों, प्राचार्यों ने इंगित से और
उंगलियां मसि में डुबो डुबो कर कहा-
तो क्या हुआ! तो क्या हुआ।
तुम सभ्य हो, सुंदर हो।
सह लो, सह-लो फिर एक बार।
तुम प्रसिद्ध हो सहने के लिए
सिद्ध हो तुम।
कुछ नकारों भरी अनुक्रिया देख
वे उग्र हो खड़े हो गए
हत्यारों के साथ...
उंगलियां गला गला कर

लिख दिया दीवारों पर...
''हत्यारों का झूठ सच है...
सच माना जाए...''
वर्ना हम विरोध करेंगे...
यह एक चिंता थी
हमें ही करनी पड़ी...
सबके हिस्से की।

इस बीच हममें से एक एक को खरीदा गया
पुनर्स्थापित हो गया दास बाज़ार।
जीर्ण तंबुओं का नज़ारा करने एक दिन
आ गया सुलतान और बोला...
उठो एक जात की बची-खुची हड्डियों, प्राणों
हाथों और पैरों...
अब छिपा दूंगा मैं तुम्हें
पहाड़ों की दृष्टि-ओझल गुफाओं में...
चुपचाप खत्म हो जाना मज़े से...।

उन्होंने हमारी कहानियां लिखीं
अपने हिसाब से
मज़ेदार, मीठी और कभी कभी थोड़ी थोड़ी आंसूदार नमकीन
और बेच दी बीच बाज़ार।
कितने खुश हैं वे कि नष्ट करने को एक जन पारावार
वे सिद्ध हो सके हैं मददगार।
कहते हुए 'मूढों!'
सोचते हो तुम्हारे आततायी के साथ हम
खड़ी करेंगे दीवार...
अरे विश्व मानव हैं हम...
नहीं कर सकते इंसानियत को दरकिनार
मूर्खों! एक जात को समाप्त करने वाले के
भी होते हैं मानवाधिकार,
बल्कि उसी के तो होते हैं मानवाधिकार।

इस बीच हम बंजरों के मुहानों पर दूर
प्रजनन और प्रेम की प्रक्रिया में अजगरों का भोजन बने

कि हमने उनकी जमीन पर तंबू गाढ़े थे
और वे किसी राजा के मातहत न थे।
हम जान गए उनकी मार्फत
प्रेम और प्रजनन हमारा है अपराध...
और हत्यारे का मानवाधिकार।
कि प्रेम करेंगे तो भूख बढ़ेगी
प्रजनन करेंगे तो दास,
अजगरों के ग्रास बढ़ेंगे।

इस बीच हममें से कई सुरक्षित, सुसंस्कृत, सुपठित
दास मण्डी में बिक गए
और यंत्रणा से मुक्त हो गए।
फिर भी चाहते रहे कि कोई उन्हें मुक्त करे
मुक्ति की इस अवधारणा से।
बहुत से सुपठित दास प्रसन्नचित कहने लगे
कि संविधान में जैसे लिखा गया है
हमें दिखना चाहिए
लिखना चाहिए
कि सच जैसा है
वैसा ही लिखा नहीं जाता।

पर सत्य की सत्ता देखो
चीख चीख कर कहता है...
कलम उठाओ
मुझे लिखो,
मुझे लिखो
वे मुझे उलटा टांग कर मार रहे हैं
मुझे बचाओ
मुझे बचाओ।
हाय! यह तिथि पुनः पुनः आती
पर सच्चाई किसी को नहीं भाती।

अब के तिथि आने से पूर्व
चल बसा सम्राट
दासों ने की श्रद्धांजलियों की बौछार

हे सम्राट! कितने दयालु थे आप
न करते अपनी दुख्तर का इस्तेमाल
कैसे करते तुम जातिसंहार।
तुम्हारा आभार।

विश्वदृष्टा थे तुम!
तुमने ही दिए मुझे मेरे गिड़गिड़ाने पर दस किलो चावल
और पांच सौ का फड़फड़ाता नोट
हे दयालु राजा!

फिर तुमने मेरा तंबू उखाड़कर मुझे पहाड़ की गुफा में छिपा दिया।
कि कुछ लोगों ने मेरे तंबू को देख तुम्हें लज्जित किया।
इस पर मुझे लज्जा आई कि तुम्हें मेरे लिए लज्जित भी होना पड़ा
हे महान सम्राट!
तुमने तब कह ही दिया संसार से कि हममें से कुछ को
तो ले ही जाओगे तुम अपने साथ, अपने घर।
हे दयालु राजा!
तुम्हारा जाना कितनी बड़ी क्षति है दयालुता के संसार में।

तुम्हारे एक परम दास ने
छीनकर अपने ईश्वर की उपाधियाँ
लगाई तुम पर ''पीर पण्डित पादशाह''
नामों से पुकार पुकार किया विलाप
हे पिता छोड़ कर क्यों गए तुम मुझे यों निस्सहाय।
सूख गए इससे कुछ बचे, न बिके प्राणवानों के प्राण।

ओ ओऽऽऽऽऽऽ हमारी स्मृतियां ?
ये कहां जाएं ?
हम इन्हें कहां विसर्जित करें।
इनके फन फनफना रहे हमारे भीतर
हम इनके विषधर।

हमारे इस तिथि का सामना करने की तैयारी में जुटे हैं
सांगोपांग, वैयक्तिक, बाहर-भीतर
दिक्काल, सपरिवार।

पर इस बार हुई एक बात मज़ेदार
लोकतंत्र की लावारिस प्रयोगशाला में
संस्कृति, आदमियत और सच के विरोध में
ठोक ठोक कर बोलने वालों की बड़ी सी नाव में
हमारी आहों और अश्रुओं ने कर दिया एक
बड़ा सा छेद...
डूबने को तैयार उसने मचाई चीख पुकार...
भगदड़ में कुछ डूबे और मर गए...
कुछ तैरते हुए लगा रहे हैं मदद की गुहार...
बचाओ हमें बचाओ...
नहीं तो हम भी लौटाएंगे पुरस्कार
हम भी लौटाएंगे पुरस्कार।
हमारी हंसी का न था ठिकाना।
सच पर विश्वास का न था ठिकाना।
सदियों बाद हंसे हम।
अरे भई! हमारी हंसी का न था पारावार।
पर!
पर!
इस बीती किंतु जीती
कालरात्रि की तिथि
आ रही है निकट,
निकटतम
फिर एक बार।
हाय! दुर्निवार!
दुर्निवार....

*

ग़ज़ल

❐ सुनील शर्मा*

आग लिखता या आग सा लिखता,
जल रहा शहर था मैं क्या लिखता।
पहले खेतों में बोए फंदे फिर,
क़त्ल को खुदकुशी रहा लिखता।
फूल जब भी मिले खरीदे हैं,
और सांसों को क्या हुआ लिखता।
कत्लगाहों में बदली बस्ती थी
आदमी खजरों से था लिखता
ज़िंदगी बर्फ सी मिली मुझको,
गरमजोशी से मैं रहा लिखता
वो चरागाह थी या मकतल था
या तेरे दिल का मैं पता लिखता
आग बुझ जाती आग से लेकिन,
मैं सुलगती हवा रहा लिखता

❋

* 201/3, छन्नी हिम्मत, जम्मू (मो.: 9796006675)

ग़ज़ल

❑ डॉ० आदर्श मल्होत्रा*

विरह गीत हम, गुनगुना करके देखो।
कि सबकी व्यथा, निज बना करके देखो।।

तुम्हें फिर मिलेगा, बेगाना न कोई।
कि सबके लिए, मुस्कुरा कर के देखो।।

हर इक मास फिर तो, मधुमास होगा।
स्नेह सरिता जरा तुम, बहा करके देखो।।

हर इक ओर तुमको, उजाले मिलेंगे।
अन्धेरा किसी का, मिटा कर तो देखो।।

रहोगे 'वियोगी' कभी तुम न तन्हा।
किसी को तो अपना, बना करके देखो।।

चरागों से होगी, हर इक राह रौशन।
दिया एक दिल से, जला कर के देखो।।

ख्यालों की दुनिया में क्यों खो गये हो।
हक़ीक़त से नज़रें मिलाकर के देखो।।

जन्नत में बैठे हो, हूरों से घिर कर।
बस इक बार धरती पे, आकर तो देखो।।

*

ऐ मेरे देश

❐ शकुन्त 'दीपमाला'

ऐ मेरे देश
आज मैं
तुम्हें
अपनी बाहों में
भर लेना चाहता हूँ
क्यों कि
आज तुम मुझे
मेरी माँ की तरह
याद आ रहे हो
तुम्हारे दर्द के आँसू
मेरी आँखों से
ख़ून की तरह
झर रहे है
आज तुम्हारी
द्रुतगामी नदियाँ
मेरी शिराओं में
दौड़ रही हैं
तुम्हारे घने
वनों की
उलझी हुई जटायें
परेशान
हवाओं में
उड़ रही हैं
मेरे भीतर के उफ़ान
मुझे सोने नहीं देते
मैं जाग रहा हूँ
जाग रहा हूँ
दिन रात
कि तुम्हारे
उतुंग माथे की
सिलवटें
मिटा दूँ
तुम्हारे दुखते अंगों को
अपनी उंगलियों से
सहला दूँ
मैं करूप रहूँ
तो कोई बात नहीं
स्वरूप तुम्हारा
बना रहे सुन्दर
मैं मरूं
मैं मरूं, मिटूं
सौ बार
परन्तु, ऐ मेरे देश
तुम रहो जिन्दा
अपने सम्पूर्ण
वजूद और
स्वाभिमान के साथ
भूल जाओ
मेरे उस
घिनौने स्वरूप को
जो अभी तक
ज़िन्दा है कहीं
गवाह बन कर
मेरे अतीत के गर्भ में
पर आज मैं
वर्तमान के शिखर पर खड़ा

* *161-162, सरवाल, जम्मू।*

मानव होने का
दम भरता हूँ
मैंने
भेदभाव
और
सम्प्रदायिकता का
घिनौना मुखौटा
उतार दिया है
घृणा और विश्वासघात
के छुरे
अपनी आस्तीनों से
निकाल कर
फैंक दिये हैं
इस लिये
ऐ मेरे देश
आज तुम
बेख़ौफ़
मेरी बाहों में
आ जाओ
अब मैं
तुम्हें
हज़रत अली की तरह
कर्बला में
शहीद न होने दूँगा
ईसा की तरह
सूली पर ना
चढ़ने दूँगा
आज मैं
समस्त
आडम्बरों की
केंचुलियाँ
उतार कर
एक दिव्य कवच
धारण कर
निकला हूँ
अब मैं
यह धर्म युद्ध
जीत जाऊँगा अवश्य
इसलिये
आज तुम
निशंक
मेरी हिमालय सी
सशक्त बाहों में
आ जाओ
आज मैं
एक विशाल देश का
भीमकाय पुत्र
धरती-आकाश
वायू
सबको
साक्षी बना
तुम्हारा आवाहन
करता हूँ
अब मैं तुम्हें
अमरत्व की
सुधा पिला
सत्यमेव जयते का
विजयगीत सुना
प्रकाश की ओर
ले जाऊँगा
तुम ज़िन्दा रहो
तुम ज़िन्दा रहो
ज़िन्दा रहो
मेरे देश

*

बढ़ते कदम

❑ कृष्णा गुप्ता*

हमें आज के आसमाँ थामने हैं
नई मंज़िलों को हमें चूमने दो,
कई कोटि सूरज हमें सजाने हैं,
जन-जन के मन में हमें घूमने दो।

हर नई सुबह को जगाना है हमने
किरण ज्ञान की ले हमें झूमने दो।
सजाने हैं पथ सारे नन्हें पगों से
विश्वास अंकुर प्रखर फूटने दो।

यह नभ निलिमा, यह क्षितिज लालिमा को
बचाने को सब कालिमा पोंछनी है,
कलश प्रीति के भर बहा देवें नदियां
गिरि श्रृंग से यह ही स्वर गूंजने दो।

अन उघड़े ध्रुवों को हमें खोजना है,
कई आपदायों से अब जूझना है,
नए मानदण्ड दे रहे हैं चुनौती
हर इक इम्तिहां से हमें गुजरने दो।

हमें आज के आसमाँ थामने हैं
नई मंजिलों को हमें चूमने दो।

०

* 26 बी/बी, गाँधीनगर, जम्मू तवी-180004

वार्धक्य

❑ कृष्णा गुप्ता

नयन सर तृषित पर
बुढ़ी सी पंक्तियां, उलझे हुए से स्वर
दुर्बल सा गति गीत, नयन सर तृषित पर
पकड़ फिसल फिसल द्वार को रही ठुकारती
शान्त मधुर मृत्यु तप्त जागरण लुभावती
छलक छलक चित्रपट भिगो रहे नभ विरत
उफन उफन सरित नद हिमालय ढा रहे
चीलों घिरी डगर गर्त में रुके सफर
क्या ही आश्चर्य है ज़िन्दगी का तगर
वास्तविक शून्यता लगे बसा हुआ नगर
बुढ़ी सी पंक्तियां उलझे हुए से स्वर
दुर्बल सा गति गीत नयन सर तृषित पर

*

क्षणिकाएँ

❐ सोनिया उपाध्याय*

1. बंजरी धरती
   प्यासे कुएँ
   निगल गए हाडमास!

2. बेबस-रक्तरंजित
   हलधर
   समर्पित हो
   बुझा गया प्यास
   रक्तपिपासु धरती की!

3. अपशब्द पाते
   कहाँ टिके हैं-
   जिह्वा की तलहटी पर
   तितर-बितर हो खड़ा कर ही
   जाते हैं नया अवसाद

4. गुलाब से
   कमल बनने की कोशिश
   कुकरमुत्ता बना गई।
   वक्त ही तो है
   जिसे संभाल कर
   खर्च करता नहीं कोई
   आए मौत भी बिन वक्त
   तो लड़ता नहीं कोई

5. माँ एक दिन ऐसा था
   तेरे आँचल तले
   मैं जा बैठी थी
   चाँद की गोद में
   और एक दिन
   ऐसा भी था
   जब तुम आ बैठी
   अस्थि कलश संग
   मेरी गोद में।

6. प्यार मेरा
   शंकित सा
   कंपित सा
   अंकित न
   हो सका।

*

कविता

❐ चांद दीपिका*

हंसते हंसाते चले आईयेगा
सौगाते बहार ले जाईयेगा
हमारा शहर बदल लेता रंग रूप कई
भीगते रीझते चले आईयेगा।
क्या पता आवारा बदलियां पटक दे कहीं
दिल ज़जीरे पै झट से उतर जाईयेगा
बहुत हो चली घुम्मकड़ ज़िन्दगी
किसी पड़ाव पे सांस ले लीजिएगा।
नाज नखरे उठाते हद हो गई
अब तो अम्बर से तनिक उतर जाईयेगा
जख्म पे जख्म देना बड़ी बात नहीं
ज़ख्म खाके गुनगुनाते चले जाईयेगा
इन्तजार करते सिल पत्थर हो गये
प्यार की चांदनी नहला के चले जाईयेगा।
मेरा दिल समंदर से कमतर नहीं
डुबकियां लेते जी भर चले जाईयेगा।
टँगे है कैनवस हर सूं ज़िन्दगी के
आड़ी तिरछी लकीरे खींच चले जाईयेगा
बिखरी सौगातें दिलकश मदभरी
मनपसंद छांट उठा के ले जाईयेगा।
दिल के दोने में रखी प्यार की वारुणी
घूंट दो घूंट चख के चले जाईयेगा।
यह शहर शैदाई है आज भी आपका
गाहे बगाहे मिलते चले जाईयेगा।
राह तकते सरहदे वीरां हो गई
अपनी आमद का सदका चले आईयेगा।
एसाल्टों के नगर में चैन मिलता कहाँ!
प्यार की छाँव कहीं चले जाईयेगा।
ज़िन्दगी ने छिपा रखे राज़ कई
प्याज के छिलके हटाते चले जाईयेगा।

*

* गृ०क्र० 323 कोटली कालोनी, (रिहाड़ी) जम्मू तवी-180005 (मोबा.: 94196-94912)

❑ विजया ठाकुर

1

पढ़ के बूढ़े पेड़ के
तन पे लिखी तहरीरों को
कब चमन ने बदली,
अपनी फ़ितरतें,
गुल खिलें, खुश्बूएं बिखरीं,
फिर वीरानी पतझड़ों की
पतझड़ों में भी कहीं,
गहरे कहीं, गहरे कहीं,
जिंदगी की धड़कने जिं'दा रहे।
कोई बच पाया कभी क्या
मौसमों की संग दिली
औ' रंगदिली को...

2

कितना हर पल
छूट रहा,
जीवन में आगे,
बढ़ने में।
कितने सत्य,
पिघल जाते,
सुन्दर झूठ
गढ़ने में।
जीवन के संघर्ष
भरे हैं,
जीवन के सुन्दर
पहलु भी,
उम्र निकल जाती है मन के
सब सफ़्हों को पढ़ने में...

शून्य के संदेश

कुछ कुछ बादलों की ओट में,
कुछ बादलों की गोद में,
हां धुंध से लिपटे हुए कुछ,
दूर-बरसाती
भरी सी मस्त नदिया में मचलते
आसमानों से उतर कर,
फैलते रंगों की सूरत,
लहरियां ओढ़े हुए,
इठलाती जैसे धरा-
सोच मत, कुछ
बोल मत कुछ,
इस लम्हे के साथ हो ले
ज़िन्दगी के बीज हैं।
अपने हृदय में तू बो ले...

*

अधिकारों की पोटली

□ प्रॉमिला मन्हास*

आज देखा...
किस तरह बहेलिया
हावी हो जाता है पंछी पर-
कितनी बेरहमी से
दोनों पँख पकड़कर
झटक देता है-
एक दूसरे ही में,
और पा लेता है काबू
उसकी उड़ान पर,
उसके फहराव,
उसके आसमान पर।

०

मैं तुम से मुखातिब हूँ-
तुमने भी तो कुछ-कुछ
ऐसा ही किया ना...
पँखों पर कसाव रखा,
फिर एक को दूसरे में-
दूसरे को पहले में
उलझा दिया।
स्थगित करते रहे
निरस्त करते रहे
मेरी उड़ान,
जो था मेरा अधिकार।

०

छुपा दी मुट्ठी में
मेरे अधिकारों की पोटली।
और डाल दी ऊपर
काँजीवरम, बनारसी साड़ियाँ।
लिपटे रहे उनमें
उलझे मेरे पँख।
पँखों के पोरों में
सजा दी अंगूठियाँ-चूड़ियाँ।
सर्दियों में ओढ़ा दिए
शाहतूष-पशमीने।
बदलते रहे तुम्हारे तेवर
ज्यों-ज्यों बढ़े...
साड़ियाँ-ज़ेवर।
ढेर बढ़ता गया जितना
उतनी ही बौनी
होती चली गयी...
साल दर साल।

०

प्रकृति के हैं अपने
नियम-कायदे,
हर शह की अपनी प्रकृति,
जो दबाई तो जा सकती है
कुछ देर तक,
पर बदलती नहीं।

अपना स्वभाविक रूप नहीं छोड़ती।
टस से मस नहीं होती।

o

पँख मेरे भी...
नहीं भूले अपनी प्रकृति,
अपना स्वभाव।
मुसल्सल...
उकसाते, जगाते, रुलाते रहे।

o

खुल गए हैं,
हाथों के कंगन
उंगलियों की अंगूठियाँ
काँजीवरम और रेशमी
रस्सों की पकड़,
ढीली पड़ चुकी है।
कसाव
नहीं महसूस होता अब
हल्की-फुल्की सी
हो गई हूँ मैं।
गले का हार, उतारा है जब से
घुटी-सहमी साँसें
दौड़ती फिर रही है।
हँसी-ठट्ठा करती हैं मुझसे,
और मेरी अवस्था...
सुषुप्त से जाग्रत।
शायद खोद निकाली है मैंने-
दफन थी जो-मुझी में कहीं,
''मेरे अधिकारों की पोटली।''

*

दो कविताएं

बेटी और पिता

❐ कृष्ण चन्द्र महादेविया*

हेलो, पिता जी ?
तपते चकोतरे के पेड़ को
ठण्डी-ठण्डी बौछार ने
शांति और सन्तोष से
जैसे नहला दिया।

हां बेटा,
मोबाइल और पास करते
फूला हुआ पिता
जैसे लगाता है
बेटी को गले।

क्या कर रहे हैं ?
हर्षातिरेक से भरे
कंपकंपाते हाथों से
गरीब पिता ने
जैसे पकड़ लिए हों
मनी आर्डर में मिले रुपये।

पत्रिका के लिए
कुछ विज्ञापन का ढंग
और सामग्री देख रहा हूं,
जैसे भारतीय पिता
शिक्षा और शादी के लिए
एकत्रित करता है धन, सामग्री।

खाना खा लिया ?
वैसे ऐसे अवसरों पर
भूल भी जाते हैं आप खाना,
मुस्कुराता है पिता
बना लिया पुत्तर
खाऊंगा ठण्डा होने पर।

क्या बनाया है ?
बोल रहे हैं सच्च,
स्नेह के फूल
बिखर-बिखर कर
जैसे छोड़ते हैं खुश्बू
बेटी होना चाहती है
पूरी तरह आश्वस्त।

चावल और दाल,
डरते से कहता है पिता
कहीं चपाती के बारे
कह न दे बिटिया
कभी जब पूछती है पत्नी
तब डर नहीं लगता है उसे।

अच्छा ठीक है पिता जी
समय हो गया है
खा लें खाना अब,

* विकास कार्यालय पधर, जिला मण्डी हि०प्र०-175012 (मौलिक व अप्रकाशित कविता)

आदेश था किन्तु
स्नेह का टोकरा उठाए।

दूर ब्याही बेटी को
फिकर है पिता का
किन्तु पढ़ने भेजा बेटा

महीने में एक बार
करता है फोन केवल
वह भी अकाउंट में
डालने को रुपये
क़ाश! बेटा भी
होती एक और बेटी।

*

धर्म

सोपुर के पुल पर
कुछ कहा था
पीछे से उसने
शायद कश्मीरी में
मुड़ा था मैं यंत्रवत।

भौरों के छत्ते से
ताजा टपके शहद सी
मीठी बोली और
उसकी मुस्कान
उगते चंद्र सी
फैल गई थी मुझ में।

तब जैसे
फैल गई थी चहुं ओर
गुनगुनी उष्णता
और जैसे
पिघल गयी थी
पूरी की पूरी
कश्मीर में बर्फ।

उस माकूल मौसम में
मेरी आंखों का समंदर भी
बिल्कुल वैसा ही था
जैसा था उसकी
आंखों का समंदर।

ठीक उतनी ही थी
उसकी सांसों की गति
जितनी थी
मेरे सांसों की गति।

पर अचानक
गोली से बिंधी सी
फड़फड़ाती-तड़पती
लौट गयी थी शवीना
जेहलम ले गयी बहाकर
सब कुछ जैसे।

चूंकि जान-बूझकर
कम्बख्त दोस्त ने
पुकारा जो था
मेरा हिन्दू नाम।

*

बोल की लब आज़ाद हैं तेरे

(फैज़ अहमद फैज़ को समर्पित)

❐ शेख मोहम्मद कलयाण*

माना कि बोलने पर पाबंदी लगने लगी है
माना कि राजा के आदमी कभी भी
खींच लेंगे तुम्हारी जुबान
यह बह रही
मनमोहक हवा भी
तुम्हारी चुगली कर देगी राजा के दरबार में

लेकिन तुम स्वप्न देखना मत छोड़ना
तुम्हारी रातों में घुस आएगा
लंबे दांतों वाला काला दैत्य
तुम चाह कर भी भाग नहीं पाओगे
मेरे बच्चे
कह रहे हैं सारे

राजा की बिसात में
बहुत से मोहरे हैं
जो केवल राजा के कहने पर चलते हैं
तुम उलझ जाओगे
शतरंज के इस चक्रव्यूह में
इस चक्रव्यूह को सिर्फ राजा ही तोड़ सकता है
मेरे बच्चे
कह रहे हैं सारे

बेशक तुम्हारे हाथ में तिरंगा है
बेशक तुमने गाया है राष्ट्रगीत
तुमने बेशक सींचा है
इस देश का बगीचा

अपने लहू से
बेशक तुमने उड़ाई पतंग
बहुत दूर तक
काट दिये जा सकते हैं तुम्हारे हाथ
यह वक्त के हाकिम हैं
कह रहे हैं सारे

राजा कहाँ देखता है अपना आईना
उसे मत भेंट करो आईना
उसे आइनों से सख्त नफरत है
आईना दिखाता है चेहरा
समय का आईना
देख रहा होता है अच्छा बुरा चेहरा
राजा को भ्रम हो गया है
कि समय पड़ा है उसकी जेब में
कह रहे हैं सारे
लेकिन मैं कहता हूँ मेरे बच्चे
जुल्म के खिलाफ बोलने की
जितनी आज ज़रूरत है
शायद इससे पहले कभी नहीं थी
कि हमें बचाए रखनी है अपनी आज़ादी
इसके लिए
हम सबका बोलना जरूरी है

बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे।

*

जीने के सौ विकल्प

❑ कृष्ण कुमार शर्मा*

मरने से पहले
शहीद सैनिक ने
किस को याद किया होगा–
ईश्वर को,
देश को,
बटालियन को,
गांव को,
मकान की छत से
दिखने वाले तारों को,
बूढ़ी मां की झुर्रियों को,
इंतजार करती पत्नी की आंखों को
या अपने बेटे को
जिसमें शहीद
अपनी जवानी जीना चाहता होगा।
मरने से पहले
सैनिक ने
किन को
गालियां निकाली होंगी–
अपने आप को,
गरीबी और बेबसी को,
गोली बरसाते दुश्मनों को,
राजनीति और राजनेताओं को,
दहेज की लोभी अपनी बहन की ससुराल को,
मौत के फरिश्तों को
या
उस बेहतर जीवन जीने के सपने को
जिसे वह
बचपन से देखता आया था।
मरने से पहले
सैनिक ने
क्या सोचा होगा–
काश वह अंतिम बार
अपनी पत्नी को बता पाता
कि वह उससे कितना प्यार करता है।
वह छोटा गर्म स्कार्फ
इस बार की सर्दियों में
बेटी को पहना आता
जो उसने कुछ दिन पहले खरीदा था।
मां को बता पाता
कि वह न रोए
सरकार की तरफ से मिलने वाले पैसे
मरे बेटे की
भरपाई कर देंगे
या उस जिगरी दोस्त के बारे में
जिसके एक बार गले लग
वह जी भर के रो सके।
सैनिक ने
मरने से पहले

---

* पुरखू (गढ़ी मोर) डाकखाना दोमाना तहसील व ज़िला जम्मू-181206 (मो॰ 94191-84412)

क्या सपना देखा होगा–
बाप का सीना कमजोर पसलियों के बावजूद
बाहर निकल आया होगा,
मरणोपरांत कोई मैडल
उसके परिवार को दे दिया जाएगा,
उसकी शहादत को
महामंडित कर
कसीदे पढ़े जाएंगे
या सीमा के दोनों और तैनात
सैनिकों की घृणा
मुहब्बत में बदल जाएगी।
सैनिक
आखिर किसके लिए और क्यों मरा ?
सैनिक खेतों में हल चला कर
किसी सड़क किनारे पत्थर तोड़
किसी विधायक सांसद, अफसर
की जू हजूरी कर
ठेकेदार बन
किसी को लूट कर
दो वक्त का खाना पैदा कर सकता था।
दुश्मनों से लड़ रहे
चारों तरफ से फंसे
सैनिक के पास
शहादत का भले ही
एक विकल्प था
वह चाहता तो,
उसके पास
जीने के तो सौ विकल्प थे।

*

मैं एक मिडिल क्लास का साधारण इंसान हूं

□ सुधीर महाजन*

अगली दो सांसों,
की हवा,
फेफड़ों में भर लेता हूँ
और चल देता हूँ कमाने
बहुत सी हवा,
बहुत से फेफड़ों के लिए।।
और भिड़ जाता हूं
इस जानलेवा सिस्टम से,
लड़ते लड़ते
घुटनों के बल हाथ रखकर
हांफने लगता हूँ
और जमा की हुई दो सांसें भी खर्च कर देता हूँ।
लड़ते लड़ते हांफते हांफते
वो समय भी आ जाएगा
जब खर्च करने को दो सांसें भी जमा न कर पाऊंगा
और घुटने के बल रखे हाथ सीधे हो जायेंगे
और मैं वहीं ज़मीन पर लेटा मिलूंगा।
हताश! परास्त!
मैं मिडिल क्लास का साधारण सा मानव हूं।
यह कौन जानता है
कि
बारिश की बूंद
कितनी ऊंचाई से बूंद बन कर आती है
किंतू
हमें सुनाई तभी देती है

जब
वो धरती से टकराकर मिलने की गर्जना करती है
और
अस्तित्वहीन हो जाती है।
तो क्या,
सुनाई देने के लिए चुप हो जाना जरूरी है ?
दिखाई देने के लिए
अदृश्य हो जाना जरूरी है ?
यह बात जब से मुझे समझ आई है
दीवारों पर टंगी,
पुरखों की तस्वीर
मुझे दिखाई भी देने लगी हैं।
सुनाई भी देने लगी हैं।
यह कौन जानता है....

*

लावण्या

❑ कुंवर शक्ति सिंह*

कई रातें समन्दर की छपाकों पर चल कर
काटी हैं अकेले
सोचा तुम्हारे साथ बिताए पल
लावारिस न हो जाएं
तुम्हारी सब इच्छाओं को
गोद ले लिया है मैंने
एक सुरमई सुबह तुमने कहा था
मेरे कांधे पे अपना हाथ धरे
'बेटी चाहिए मुझे...
नाम सोच लिया है मैंने...'लावण्या'
वह सुबह
अपनी कमीज़ का
एक बटन खोलकर
अपनी छाती में संभाल ली थी मैंने
आज एक अर्सा गुज़र जाने के बाद
मेरे ही गर्भ से हुआ है-
'लावण्या' का जन्म!
यह बच्ची तुम्हारी ही छवि है
सच कहूं तो इसका जन्म
हमारे छोटे से संसार में
तब ही हो गया था
जब तुमने देखा था इसके जन्म का सपना!
हमारा अपना कोई घर नहीं था
घर भी सपना था
'लावण्या' भी सपना!

किचन में जाता हूं तो
तुम्हें सोच कर डालता हूँ
सब्जी में नमक, चाय में चीनी
रात को लावण्या को सुलाकर
सीढ़ियां ढलकर
आ जाता हूं बिल्डिंग के पीछे बह रहे
समंदर के किनारे
पानी की छपाकों पर चुपके से
मेरे पीछे-पीछे आने लगती है-
'लावण्या'
पलटकर देखता हूं तो
तुम होती हो!
कितना काम कर गए
उन एहसासों के स्पर्श!

*

सेमिनार

□ अमिता मेहता *

पीपल के पेड़ों का सेमिनार हुआ
एक पीपल बोला
पेड़ों के लगातार कटने
के कारण कहीं
डायनासोर की तरह विलुप्त
न हो जायें
दूसरा पीपल बोला
हम सबसे ज्यादा ऑक्सीजन
डोनेट करते हैं
फिर भी
मनुष्य हमारे प्राण लेने
पर उतारू रहता है
तभी बूढ़ा पीपल बोला
मूर्खों हमारा अस्तित्व तो कभी
मिट नहीं सकता
हमारी चिन्ता तो सरकार करती है।
मैं हमेशा सबसे कहता हूँ सरकारी मेहमान बनो
सरकारी अवासों, सरकारी भवनों के आँगन, छतों, दीवारों
पर जहाँ चाहे उगो
भूल से किसी निजी मकान या उसकी छत पर
मत आना
वर्ना
आम आदमी की तरह उखाड़

* मकान नं. 96, सेक्टर-3, नानकनगर, जम्मू। (मो०: 9622276910)

कर फैंक दिये जाओगे
तभी छोटे पीपल ने आशंका जताई कि
सुना है सरकारी मकानों दफ्तरों की साफ
सफाई के शासनादेश है,
और समय-समय
पर सफाई अभियान चलाये जाते हैं।
बूढ़ा पीपल हँसते हुये बोला
सफाई सरकारी
इमारतों, छतों में नहीं बल्कि कागज़ों में होती है।
सफाई के स्टेटमेण्ट बड़े दफ्तरों
तक पहुँचते-पहुँचते
एकाध रिम खर्च हो जाता है।
मनुष्य उसकी भरपाई के लिए
पेड़ों को काट लेता है।
पर हमें नहीं
हमें तो आँगन की छत
से झाँकते देखकर
लोग कह उठते हैं।
ये बिल्डिंग सरकारी होगी ?
हमारा अस्तित्व सरकारी इमारतों में पूर्णतः
सुरक्षित है।
इस तरह सेमिनार समाप्त हो गया
तभी से छोटे-छोटे पीपल बड़ी-बड़ी
सरकारी इमारतों में उगते हैं।

*

नारी

❑ सुनीता भड़वाल*

आत्म तृप्ति की मिसाल तुम
परिन्दों की परवाज़ में
हो अपनी उंचाई नापती
अपने हर घर में
पराई कहलाने वाली
बस अपनापन ही बांटती
मन से त्रस्त हो भले
फिर भी मुस्कुराहटें बिखेरती
उम्मीदों के दीये जलाती
स्वयं उसके अंधेरे तले दबती
सब कुछ समझाने वाली
क्यों अपने से हो बेखबर
उठो खुद से आत्मसात करो
मत डूबो निराशा के अन्धेरों में
तुम्हें उठना होगा उठना होगा।

*

मेरे मुहल्ले की वो लड़की

❒ शिवानी आनंद

उम्मीदें भी कभी मरती हैं क्या ?
क्या इच्छाएं भी दम तोड़ती हैं ?
मैंने तो नहीं देखा
हाँ शायद तुमने देखी हो
इनकी अर्थियाँ उठते हुए

मुझे याद है
एक लड़की थी
मेरे मुहल्ले में रहती थी
उम्मीदों के उस पेड़ पर
स्वप्नों की पींग डाले
जब ऊँचे हिलोरे भरती
तो मेरी बालकनी से
दिख जाती थी
उमंगों का सागर तब
पूरे वेग से
उसकी पींग को धकेलता था
और उसके हर धक्के पर
वो आसमान से
एक सितारा चुन लाती थी
वो बारिश की बूँदों संग खेलती
हवा संग बतियाती
कभी ऊपर के जंगल में जांती
तो वापसी में...
इच्छाओं के अनेकों फूल
उसकी झ़ोली में भरे होते
उनसे वो अपनी पींग सजाती
और जो बच जाते
उन्हें सहेजकर
एक बक्से में रख लेती थी
वो फूल वक्त-बेवक्त अब भी
खिलते हैं उस जंगल में
उसकी राह देखते हैं
पर वो लड़की अब नहीं आती
कई वर्षों से मैंने उसे
सितारे चुनते भी नहीं देखा
सुना है वो लड़की अब नहीं रही
वो औरत हो गयी है
उसकी उमंगों का सागर
अब उसे धक्का नहीं देता
उसके स्वप्नों का वो झूला
टूट चुका है
और ऐसा कोई पेड़ अब नहीं है
जिस पर वो नया झूला डाल सके
उसके पुराने आँगन का वो पेड़
जिस पर उसकी पींग थी
अब बूढ़ा हो चुका है
और उसके नए आँगन की मिट्टी
बंजर है शायद
कि वहाँ उम्मीद का कोई बीज
अंकुरित नहीं होता

उस समझदार औरत ने
अब हटा दी है
अपने मानसपटल से
अपने समस्त अधिकारों की सूची
और निगल लिया है उसे
बक्से में रखे
इच्छाओं के उन
फूलों के साथ
सुना है...
उसके गर्भ के स्पर्श से
वो फूल फिर से खिल उठे हैं
उमंगों का सागर भी
भरने लगा है
धीरे-धीरे
अब उसकी छाती में
उसकी नजरें अब फिर
उठती हैं ऊपर
आकाश देखती हैं
मानो अनुमान लगाती हों
कि कितने सितारे रह गये थे
जिन्हें परोक्ष रूप से
अब वो फिर से चुन सकेगी
वो लड़की अब कुछ-कुछ
मुझे वैसी ही लगने लगी है
जैसी कि
वो लड़की थी
जो मेरे मुहल्ले में रहती थी
पूछती थी मुझसे अक्सर
कि उम्मीदें भी कभी मरती हैं क्या ?
क्या इच्छाएं भी दम तोड़ती हैं ?

*

अध्यक्ष मंडल

श्री माधव कौशिक :-

नमस्कार मित्रो,

मैं शुक्रगुज़ार हूं भाई हाज़नी साहब का जिन्होंने यह अवसर दिया कि आप सब को सुन सकूं। राष्ट्रीय साहित्य अकादमी से सम्बद्ध होने की वजह से बहुत सारे डोगरी के रचनाकारों, हिन्दी के रचनाकारों को जानता हूँ। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व से परिचित हूँ। लेकिन आज जम्मू-कश्मीर की कविता का पूरा परिदृश्य देखने को मिला। बहुत अच्छा लगा। हर तरँह की कविता, गीत, ग़ज़ल, नवगीत, आक्रोश, क्षोभ की कविताएं बहुत अच्छी लगीं। ज्यादा न बोलते हुए इस प्रकार के आयोजन के लिए जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी को बधाई देता हूं। अपनी ग़ज़लों के कुछ एक शेयर आपकी नज़र करता हूँ :

दिल में हर दम चुभने वाला काँटा सही सलामत दे।
आँखें दे या मत दे लेकिन सपना सही सलामत दे॥

हमें युद्ध आतंक भूख से मारी धरती बख्शी है।
आने वाली पीढ़ी को तू दुनिया सही सलामत दे॥

बच्चे भी अब खेल रहे हैं खतरनाक हथियारों से।
बचपन की बगिया को कोई गुड़िया सही सलामत दे॥

दावा है मैं इक दिन उसको दरिया करके छोड़ूंगा,
खुली हथेली पर आँसू का कतरा सही सलामत दे॥

आधी और अधूरी हसरत कब तक ज़िंदा रखेगी।
कागज़ पर ही दे पर घर का नक्शा सही सलामत दे॥

***

माँ को देखा तो याद आया मुझे,
खूबसूरत है आज भी दुनिया॥

***

क्या बताएँ दरम्याँ अब फासला कोई नहीं।
सामने मंज़िल है लेकिन रास्ता कोई नहीं॥

जाने किसके पांवों की आहट सुनाई दी मुझे।
घर में पर मेरे इलावा दूसरा कोई नहीं॥

जायज़ा सूरत का अपनी लें तो आखिर किस तरह।
शहर शीशे का है लेकिन आइना कोई नहीं॥

मेरी बस्ती के सभी लोगों को जाने क्या हुआ।
देखते रहते हैं सारे बोलता कोई नहीं॥

उससे क्या उम्मीद रखे अब कोई भी आदमी।
आदमी जितना है उतना खोखला कोई नहीं॥

हंसते हंसते ही हटा दे सबके चेहरों से नकाब।
ऐसा लगता है शहर में सरफिरा कोई नहीं॥

श्रीमती आशा शैली :-

यह जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकैडमी का पहला कार्यक्रम है जिसमें मुझे शामिल होने का अवसर मिला। आज सुबह से ही मैं देख रही हूँ कि एक सार्थक माहौल बना हुआ है। जिसकी हम सबको बहुत आवश्यकता है। ऐसे कार्यक्रम होते रहने चाहिये। एक सार्थक बहस हर विषय पर हुई है। इस सत्र से पहले जो पत्र पढ़े गये उनसे भी हमें बहुत कुछ सीखने को मिला। यह बात नहीं है कि हमारी उम्र ज्यादा है तो हम बहुत जानते हैं। हमारी आने वाली पीढ़ी यानि बच्चे भी बहुत सारी ऐसी चीजें जानते हैं जिनके बारे में हम नहीं जानते। हमने उनसे भी बहुत कुछ सीखा है आज। यह सारे अनुभव मैं यहां से अपने साथ लेकर जाऊंगी और मैं एक पत्रिका निकालती हूँ ''शैल सूत्र'' नाम से, मैं उस में भी अपने अनुभवों को लिखूंगी। जो मैंने यहां इस कान्फ्रेंस में आकर प्राप्त किये हैं। यहां उपस्थित सभी साहित्यकारों के लिए बहुत ही उपयोगी और बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है यह कान्फ्रेंस। किसने कितना ग्रहण किया है वो एक दूसरी बात है। लेकिन रहा यह बहुत उपयोगी। मैं आप सब की बहुत-बहुत आभारी हूं। बहुत अच्छे-अच्छे विचार, बहुत अच्छी-अच्छी कविताएं सुनने को मिलीं। आप सबका धन्यवाद।

*

अध्यक्षीय वक्तव्य

श्रीमती संगीता गुप्ता

मुझे एक बात जो अच्छी नहीं लगी। सबसे पहले मैं यह कहना चाहूँगी कि जो कवि अपनी कविता सुना चुके थे, वो अपना बस्ता लेकर यहां से चले गये। एक अच्छा कवि वो होता है जो स्वयं तो कविता लिखता ही है, किसी और की कविताएं सुनना भी पसंद करता है। कवि के लिए तो सुनना बहुत जरूरी है। क्योंकि अच्छी कविता लिखने के लिए यह आवश्यक है कि वो दूसरों की कविताओं को पढ़े-सुने। उनको पढ़े उससे क्या होता है कि पता चलता है कि क्या लिखा जाना चाहिये और क्या नहीं लिखा जाना चाहिये। मुझे कविताओं का शौक बचपन से था। मुझे बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण लगता है कि मैं जम्मू के सभी कार्यक्रमों में बड़ी ललक से साथ जाती हूं कि मैं कवि हूँ मुझे कवि की तरह पहचाना जाएगा तो वहां पर मुझे कह दिया जाता है कि प्रिंसिपल कमिश्नर इंकम टैक्स आ गयीं। तो बड़ा दुख होता है कि कवियों के बीच में भी कवि रूप दिखाने का मौका नहीं मिलता।

किसी और ब्यूरोक्रैट को आप बुला कर देखियेगा कि वह तीन बजे से लेकर शाम छह बजे तक बैठता है या नहीं। मैं अगर यहां बैठी हुई हूँ तो इसका कारण यह है कि मैं चाहती हूँ कि जम्मू, श्रीनगर और बाहर से आए हुए सभी कवियों को सुनूं। बचपन में एक पत्रिका आती थी धर्मयुग, तो मैं सबसे पहले पत्रिका का बीच का पन्ना खोलती थी क्योंकि उसमें कविताएं छपती थीं। सबसे पहले उसको पढ़ लेती थी और बाकी पत्रिका धीरे-धीरे पढ़ती थी। कविता जो होती है वो केवल पन्नों पे नहीं लिखी जाती उसको जीया जाता है। कविता जीवन जीने की कला है। मैंने 14-15 साल की उम्र से लिखना शुरू किया था और कभी किसी को ज्यादा दिखाया नहीं कुछ Core-group के जो friends होते हैं उनको आप अपनी कविताएं सुना लेते हैं। फिर धीरे-धीरे Civil Serivces को Qualify कर लिया फिर भी लिखना जारी रहा। पहली Posting मेरी इलाहाबाद में हुई। मैं उसको अपना बहुत बड़ा सौभाग्य समझती हूँ क्योंकि वहां मुझे महादेवी वर्मा जी से मिलने का मौका मिला। तब तक मैंने काफी कुछ लिख लिया था। तो एक पांडुलिपी बना रखी थी। उसको लेकर उनके पास मैं गयी और कहा कि अगर आप इस की भूमिका लिख देंगी तो मैं अपने जीवन को सफल मानूंगी। मेरी बचपन से सबसे पसंदीदा कवि आप ही थीं। तो उनका पहला वाक्य जो निकला उनके मुंह से वो यह निकला कि 'भई संगीता ऐसा है कि तुम मुझे बहुत अच्छी लगी, बातचीत भी अच्छी लेकिन मैंने तुम्हारी कविताएं पढ़ी नहीं हैं। मैं तुम्हें ऐसा कोई भी आश्वासन नहीं दूंगी कि मैं इसकी भूमिका लिख दूँगी। अगर मुझे कविताएं अच्छी लगी तो ही मैं लिखूंगी।

तुम देख रही हो कि मेरी तबीयत कितनी खराब चल रही है। मैं समय भी लूंगी।' तो मैंने उनसे कहा कि अगर आपको यह कविताएं अच्छी नहीं लगी तो मैं यह कविताएं ले जाकर संदूक में बंद कर दूंगी। और कोई नहीं पढ़ेगा इनको। उन्होंने कहा 'ठीक है मैं फोन करुंगी।' कोई फोन नहीं आया दस पंद्रह दिन बीत गये। तो मुझे लगा कविताएं शायद ठीक नहीं हैं और एक दिन अचानक लगभग एक महीने बाद पाण्डेय जी का फोन आया। उन्होंने कहा कि 'महादेवी जी आपको याद कर रही हैं।' मैंने कहा 'मैं दफ्तर में बैठी हुई हूँ, घर जाकर आऊंगी।' उन्होंने कहा 'नहीं, महादेवी जी ने कहा है कि दफ्तर से आप सीधे मेरे पास आएं।' मैं गयी उनके पास। उन्होंने कहा 'आप दफ्तर से सीधे आई हो पहले कुछ खा-पी लो।' फल वगैरा काफी कुछ लाया मेरे लिए। और फिर, कहा कि 'सामने वाले स्टडी टेबल के Drawer को तुम खोलो।' मैंने देखा तो उसमें मेरी वो पाण्डुलिपी पड़ी हुई थी। उस पर उनके हाथ से लिखी हुई उसकी भूमिका भी पड़ी हुई थी और अपने हाथ से तीन चार नाम लिखे हुए थे। उन्होंने कहा, 'संगीता मुझे तुम्हारी कविताएं बहुत पसंद आईं। और मैंने सोचा कि इस कविता संग्रह का क्या नाम होना चाहिये। मेरे दिमाग में कुछ-एक नाम आए थे। अगर तुम्हें ठीक लगें तो तुम इनमें से कोई नाम भी रख सकती हो। उन्होंने कहा कि, मेरा तो बहुत मन कर रहा था कि तुम्हारी इस पुस्तक का आवरण चित्र भी बनाऊं, परंतु अब हाथ काम नहीं करते बहुत कांपते हैं। मैं तुमसे दो ही बातें कहना चाहती हूं, तुम किसी खेमे की कवि नहीं हो। तो तुम्हें कोई यह नहीं कहेगा कि तुम्हारा कवि कितना बड़ा है या कितना छोटा है या कवि है या नहीं है तुम्हारे अंदर। पर तुम किसी की बात मत सुनना। तुम कवि हो और रहोगी।' इन्हीं शब्दों के साथ अपनी एक कविता "स्पर्श के गुलमोहर" सुना कर अपनी बात समाप्त करना चाहूँगी ताकि एक मिठास के साथ बात खत्म हो :

लांघना मुश्किल
हमारे बीच पसरे सन्नाटे को
पर
असंभव भी तो नहीं
कभी पुकार कर देखना
या
अपने मौन में ही सुन सको
तो सुनना
मेरी धड़कन।
जानती हूँ
तुम्हारी आँखों की प्यास
गहरी
पर
मेरे आँसुओं की नदी भी

कभी कहाँ सूखती।
पलके झपकाओ तो जरा
मेरी नदी वहीं कहीं बहती है।
तुम्हें सौंपा था
चुपचाप सबसे चुरा
एक दहकती दोपहर,
और मैं अपनी कविताएं
रोप पाई थी
तुम्हारे धधकते मन में।
जरा अपने में झांको
देखना
अग्नि फूल खिल रहे होंगे
वहां।
बांझ तो नहीं थी मेरी कविताएं
एक पल कभी ठिठको
तो अपने पांव देखना
मेरे स्पर्श के गुलमोहर
अब भी दहकते होंगे
वहां
बर्फ सी सुन्न उंगलियां
रखना कभी उन पर
और महसूसना
मेरा होना
सर से पांवों तक।

*

पत्र वाचन

मंचासीन अध्यक्ष मंडल : प्रो० पी.एन. त्रिछल, प्रो० शिव निर्मोही, प्रो० परविंदर कौर तथा अज़रा चौधरी (संपादिका)

पत्रवाचक : श्रीमती योगिता यादव

पत्र वाचन

पत्रवाचक : प्रो० राजकुमार

अभिनव थियेटर में उपस्थित गणमान्य अतिथि

द्वितीय दिवस : 28 मई 2016

प्रथम सत्र	:	पत्रवाचन
अध्यक्ष	:	डॉ० पी०एन० त्रिछ़ल
अध्यक्ष मंडल	:	प्रो० शिव निर्मोही, प्रो० परविंदर कौर
पत्रवाचक	:	प्रो० राजकुमार, योगिता यादव
धन्यवाद प्रस्ताव	:	डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'
मंच संचालन	:	अज़रा चौधरी
सत्र की रिपोर्टिंग	:	यशपाल निर्मल

पत्र वाचन

अभिनव थियेटर के उपस्थित जनसमूह : अतिथि

विरासत में मिले हैं कुछ संघर्ष और सौंपेंगे कुछ सपने

(मुख्य धारा की कहानियों के बीच प्रादेशिक हिंदी कहानियां)

❑ योगिता यादव

लिखना एक उपासना है। खुद की खुद से की गई प्रार्थना। जिसमें व्यष्टि का दर्द समष्टि के हित से जुड़ कर एक नए आनंद का सृजन करता है। जब हम लिखते हैं हम प्रार्थना की मुद्रा में होते हैं। बिना यह सोचे कि इसकी 'पहुंच' कहां तक होगी। हर कहानी इसी तरह लिखी जाती है। कहानी रचना यदि आध्यात्मिक अनुभूति है, तो उसके प्रभाव और पहुंच को नापना घोर सांसारिक उपक्रम। केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इनकी पड़ताल की जाती रही है और की जाती रहेगी।

यहां विषय के अनुरूप में कुछ उपलब्ध कहानियों के आधार पर मुख्यधारा की कहानियों के बीच प्रादेशिक हिंदी कहानियों का आंकलन करने का छोटा सा प्रयास भर कर रही हूं। हालांकि यह मेरी क्षमता से बहुत बड़ा काम है। फिर भी हिंदी संपादक अज़रा चौधरी जी के निर्देश पर हिंदी सम्मेलन के लिए मैंने यह पत्र तैयार किया है।

पत्र पर चर्चा के दौरान प्रश्न इस पर भी खड़ा किया गया कि आखिर मुख्यधारा है क्या ? यह इतना मुश्किल भी नहीं है, जितना बताया जाता है। मौजूदा समय में जिन चुनौतियों का समाज, अथवा समाज का बहुसंख्य समुदाय मुकाबला कर रहा है, जिन प्रश्नों से उसे हर रोज जूझना है, उन प्रश्नों से जूझती, उन विषयों की पड़ताल करती कहानियां ही तो हर दौर में मुख्यधारा की कहानियों में शुमार होती रही हैं। राष्ट्रभाषा से क्षेत्रीय भाषा के स्तर पर सिर्फ लोकेल अर्थात् स्थायनीयता के स्तर पर थोड़ा बहुत फेर बदल हो सकता है। इसके अलावा व्यक्ति के संघर्ष, उसकी चुनौतियां और उसकी अस्मिता के मौलिक प्रश्न अधिसंख्य जगह एक-दूसरे से बहुत अलग नहीं होते। हो सकता है महानगरों में रहने वाले लेखक मेट्रो या लोकल ट्रेन की कहानियां लिखें, और किसी छोटे शहर में रहने वाला लेखक बस या ऑटो रिक्शा के अनुभवों को लेकर कहानियां लिखें। परतुं ये केवल टूल्स हैं असल कहानी तो जीवन के संघर्षपूर्ण सफर की ही है। बस इसे देखने और भोगने की तीव्रता अलग-अलग है। सामान्य भाषा में राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में जगह बनाने वाली कहानियों को भी मुख्यधारा की कहानियों में शुमार किया जाता है। यहां एक आश्वस्ति यह भी है कि राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका में एक लंबी प्रक्रिया और समकालीन कहानियों से गुणवत्ता के स्तर पर

---

* *911, सुभाष नगर, जम्मू-180005*

प्रतियोगिता का सामना करने के बाद ही छप पाना संभव होता है। इस प्रक्रिया को देखते हुए हम सामान्यतः उनकी गुणवत्ता पर विश्वास कर लेते हैं। हालांकि यह फार्मूला भी सौ फीसदी कहानियों पर लागू नहीं होता।

राज्य अथवा क्षेत्रीय स्तर को छोटी पत्रिकाओं में भी कई बार इस दर्जे की कहानियां स्थान पाती हैं, जिनकी चर्चा लंबे समय तक बनी रहती है। कई बार वे अपने समय का सच बताने वाली कहानियों में मिसाल के तौर पर उद्धृत की जाती हैं। बहु चर्चित और कम चर्चित या वह कहानी भी जिसकी बिल्कुल चर्चा न हुई हो, मेरा मानना है कि वह भी अपनी मौलिक, निजी अनुभूतियों के साथ रची जाती है। इसके बाद हम तय करते हैं कि यह किस विषय अथवा किस टारगेट रीडर की कहानी है। मुख्य धारा महासागर है। किसी भी रचना के लिए इस तक की दूरी तय कर पाने के लिए जरूरी है अथक परिश्रम और फोकस दृष्टि। कुछ रचनाकार चले तो थे भरपूर ऊर्जा और रचनात्मकता के पूरे आवेग के साथ, लेकिन जैसे-जैसे आगे बढ़े उनके जीवन में एक के बाद एक नई जिम्मेदारियां या कहें की आग्रह जुड़ते चले गए। आग्रहों की इसी परनाली से उनकी रचनात्मक ऊर्जा भागों में बंटती चली गई। परिणामस्वरूप यह नाशुक्री मुख्य धारा जो किसी को याद नहीं करती, उसने उन्हें भी भूलते देर नहीं लगाई। इसके बावजूद साहित्य की दुनिया का शाश्वत सत्य है 'बचा रहेगा छपा हुआ', उन्होंने जो लिखा वह आज भी छप कर बचा हुआ है। फिर चाहें 1947 में आए सत्यवती मल्लिक के कहानी संग्रह 'वैशाख की रात' हो या अभी हाल ही में आया चंद्रकांता विपिन का कहानी संग्रह 'अलकटराज देखा क्या ?' वैशाख की रात में संकलित कहानियों में से एक 'वंशी और चिट्ठी' प्रवास की आग में तपते प्रेम के जिस द्वंद्व की बात करती है, वहीं द्वंद्व आज की उत्तरभूमंडलीकरण के दौर में लिखी जा रही कहानियों में भी महसूस होता है। देशा काल के मुताबिक थोड़े से बदले हुए परिदृश्य में।

जम्मू-कश्मीर प्रदेश लोक का धनी प्रदेश है। यहां विविधता का अद्भुत सौंदर्य और संवेदनाओं के लिए भरपूर खुराक है। उस पर पीड़ा के ऐसे-ऐसे आघात इस प्रदेश को झेलने पड़े कि उत्कृष्ट साहित्य रचा जाना ही था और रचा भी गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पांचवें दशक में जिन कहानियों और कथाकारों का उल्लेख मिलता है उनमें सत्यवती मल्लिक के बाद मोहन कृष्ण धर का कहानी संग्रह 'केसर के फूल' प्रकाश में आया। एक सैनिक के हृदय की भीतरी उथल-पुथल को केंद्र में रखकर लिखी गई इस कहानी में कई भावपूर्ण दृश्य पाठक को बांध लेते हैं। सैनिक का स्वयं से सवाल करना, कहीं न कहीं पाठक को भी उद्वेलित करता है।

छठे दशक तक आते जम्मू के हिंदी कथा जगत में वेद राही अपनी कहानियों के कारण चर्चा में आ चुके थे। इसी दशक में दीपक कौल, हरिकृष्ण कौल, धर्मचंद प्रशांत, जवाहर लाल कौल और रत्न लाल शांत की कहानियां भी प्रकाशित हुई।

सत्तर के दशक में वेद राही का पहला हिंदी कहानी संग्रह 'दरार' आया। संग्रह की शीर्षक कहानी दरार साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित हुई। जिस पर प्रतिक्रिया स्वरूप देश भर से सैंकड़ों पत्र आए। यह पत्रों का दौर था। इस समय पाठक अपना स्नेह और आशीष पत्रों के माध्यम से ही व्यक्त किया करते थे। जो कालांतर में टेलीफोन और इंटरनेट आने के बाद से घटता चला गया। इसी कहानी को बाद में वेद राही ने डोगरी में अनुदित कर 'दरेड़' नाम का लघु उपन्यास भी प्रकाशित किया। साथ ही इस पर एक फिल्म भी बनाई। इससे पहले उनका कहानी संग्रह 'टूटते वृक्ष, नई पौध' भी प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह में 'सीमा का पत्थर' कहानी साठ के दशक में धर्मयुग में छपी। नई सड़क-दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक 'कहानी और कहानीकार' में डॉ. सुमन कुमार 'सुमन' सातवें दशक के हिंदी कथा साहित्य में वेद राही को महीप सिंह, गिरीराज किशोर, कृष्ण बलदेव वैद, गंगा प्रसाद विमल, महेंद्र भल्ला, दूधनाथ सिंह, सुधा अरोड़ा, मेहरुन्निसा परवेज़ और नरेंद्र कोहली आदि के समकक्ष खड़ा क़रते हैं।

आठवें और नौंवे दशक का माहौल जम्मू प्रदेश में साहित्यिक दृष्टि से सबसे उर्वर दशक कहे जा सकते हैं। आठवें दशक में ही सुरेश शर्मा राम, जितेंद्र उधमपुरी, सत्यप्रकाश आनंद, शिवरैना, सुदर्शन सागर, अश्विनी मगोत्रा, कुमारी ललिता पण्डिता, ज्योतीश्वर पथिक, निर्मल विनोद, रमेश मेहता, अलंकार, सुतीक्ष्ण कुमार आनंदम, ओम प्रकाश गुप्त, दयानंद शर्मा, जगमोहन, राजीव रैणा, आजाद कुमार मानव 'नाहर', डॉ० मनोज शर्मा, फकीर निर्मोही, ओ.पी. शर्मा सारथी, डॉ० गंगादत्त शास्त्री विनोद, इंद्रजीत सिंह पुजारी, विजय रोकड़ी, शुभाष शर्मा, गणेश भार्गव, राजऋषि शर्मा, अमर नन्दा, अनिल सहगल, नीलम खोसला, निर्मल कुसुम काचरू, डॉ० सोमनाथ कौल, मोहनलाल बाबू, अवतार कृष्ण राज़दान और राजेंद्र जेरथ की कुछ कहानियां प्रकाश में आई। जबकि डॉ० ओमप्रकाश गुप्त का 'लहर लहर हर नैया नाचे', दीदार सिंह का 'धुंधलके', डॉ० अर्जुन नाथ रैणा का 'केसर के फूल', ओम गोस्वामी का 'निर्वासित', हरिकृष्ण कौल का 'टोकरी भर धूप', बलनील देवम का 'उल्कापात' और राज भल्ला के कहानी संग्रह 'ये तस्वीरें' ने प्रादेशिक हिंदी कथा जगत की नींव और मजबूत की।

नौवें दशक की प्रादेशिक कहानियों में हमारे पास डॉ० संजना कौल का कथा संग्रह 'वितस्ता के कथा चरण' के अलावा शक्ति शर्मा की 'लहराती हुई पूंछ' और क्षमा कौल की कहानी 'मौसम' प्रकाश में आई। महाराज कृष्ण शाह की खत, बाघ, कहीं कुछ, तिनके तिनके बात, बिना मतलब कहानी, चंद्रकांता की कहानी धराशायी, अलंकार, धुंध, दीदार सिंह की कौरव-पाण्डव, बंद गली, बेटियां, अफशां, अपने लोग, पराये लोग, अग्निपरीक्षा, ज्योतीश्वर पथिक की बनजारे, रमेश मेहता की मृत्युगंध, उखड़ने से पहले, एक दीवार की दूरी, ओ.पी. शर्मा सारथी की स्टेज, आवाज, अभी समय नहीं हुआ, संतोष कौल की कहानी फीकी और

बदरंग जिंदगी, ओंकारनाथ वख्लू की कहानी खून का रिश्ता, डॉ. निर्मल चोपड़ा की कहानी दिशाहीन, किसके लिए, बंसी लाल की कहानी थकान, कस्तूरी, डॉ. रत्नलाल शांत की कहानी सारस, पद्मा सचदेव की कहानी सूरज जग गया, मेरी बेटी, किरण बख्शी की कहानी लौटे नहीं विहग, स्याह आंधी, कोई दूसरा, सुदर्श त्रिलोचन की कहानी कटता हुआ कुछ, वीणा धर की एक कहानी आग, धर्मचंद प्रशांत की जल्लाद, शिव रैणा की मशीनू मामा, नये मोड़ पर, नरेंद्र गुप्ता बेचैन की मोहभंग, वेद राही की पुनर्योग, मनोज शर्मा की जमीन ढूंढते पांव, जिया लाल हण्डू की मुक्तकेशी शीराज़ा और हमारा साहित्य के अलग-अलग अंकों में प्रकाशित हुईं।

इस दशक में प्रकाशित हुए दस कहानी संग्रहों ने हिंदी कथा जगत को और समृद्ध किया। इनमें अवतार कृष्ण राजदान की कहानी संग्रह 'सौगात' अशोक जेरथ का 'चेरी के फूल', राज भल्ला के 'कलाकार के आंसू', हरिकृष्ण कौल के कहानी संग्रह 'अरथी', छत्रपाल का कहानी संग्रह 'रोशनी से दूर', ओम गोस्वामी का कहानी संग्रह 'बारह कहानियां' और 'सर्द आग', डॉ० राजकुमार का कहानी संग्रह 'खुले हाथ', दीदार सिंह का कहानी संग्रह 'अनकही', डॉ. आदर्श का कहानी संग्रह 'दस दरवाजे', डॉ० अशोक जेरथ का 'अनजाने क्षितिज', शामिल हैं। संभवतः कुछ और भी छिटपुट कहानियां लिखी गईं हो, अथवा संग्रह आए हों, जिनका उल्लेख सहज नहीं मिल पाता। क्योंकि इस दौरान प्रदेश के समाचार पत्रों ने भी साहित्यिक सामग्री को स्थान देना शुरू कर दिया था।

नौवें दशक के बाद साहित्य की मुख्य धारा में कहानी के कथ्य और शिल्प में जिस तरह का परिवर्तन आया, उससे यह संकेत तो मिलने ही लगा कि कुछ नई घटना घटी है, कोई क्रांति हुई है, सांस्कृतिक संक्रमण है, मूल्यों का विघटन है और अपनी अस्मिता के लिए तीव्र बेचैनी भी है। यह बेचैनी उन लोगों की है, जो या तो हाशिये पर हैं या जिन्हें सामंती प्रवृत्ति के लोगों ने जानबूझकर परिधि की ओर ढकेल दिया है। लगने लगा कि अब बोलने की बारी शोषितों की है। जिन्हें पहले बौद्धिकता की दृष्टि से उपेक्षित या आईक्यूविहीन माना गया अब उनके भीतर के प्रतिशोध, प्रतिरोध, विरोध और विद्रोह भी कहानी के विषयों में महत्वपूर्ण हो गए। स्त्रियों के यौन को लक्ष्य बनाकर उन्हें प्रताड़ित करने के लिए जो पुरुष अपने अहं को संतुष्ट करता था, अब स्त्रियों ने उन्हें ही चुनौती दे दी और यौन स्वतंत्रता को अस्मिता-विमर्श में सम्मिलित कर लिया।

1990 में भारतीय ज्ञानपीठ से पद्मा सचदेव का कहानी संग्रह 'गोद भरी' प्रकाशित हुआ। डोगरी में अपना नाम स्थापित करने वाली प्रदेश की लेखिका के लिए यह खास सम्मान की बात थी। पद्मा सचदेव मूलतः डोगरी कवयित्री हैं, लेकिन उन्हें चर्चा मुख्यतः अपनी हिंदी रचनाओं के कारण ही मिली। जिनमें उनके साक्षात्कार, संस्मरण और उपन्यास खास

अहमियत रखते हैं। 'गोद भरी' के साथ हिंदी कथा जगत में भी उन्होंने अपना नाम शामिल करवा लिया। इसके बाद वर्ष 2004 में किताबघर प्रकाशन से उनका एक और हिंदी कहानी संग्रह छपकर आया।

इसी वर्ष अर्थात् 1990 में डॉ० राजकुमार का कहानी संग्रह 'जाल' भी प्रकाशित हुआ। आठ कहानियों का यह संग्रह विवरणात्मक शैली में लिखी गई कहानियों को संग्रहीत किए हुए है। कहानियों को विस्तार देने के लिए कहीं कहीं पूर्व दीप्ति और स्मरण शैली का भी सहारा लिया गया है। कहानियों की भाषा और शिल्प मोहक है जो पात्रों की संवेदनशीलता को पाठक तक संचरित करती है। डॉ० राजकुमार स्वयं इन्हें नये मुहावरे की कहानियां कहते हैं।

कश्मीर में जन्मी लेखिका चंद्रकांता जी ने भी मुख्य धारा में अपनी रचनाओं की मार्फत एक मजबूत स्थिति बनाई है। उनके प्रदेश से बाहर होकर लिखने को कई बार प्रादेशिक साहित्य में हाशिये पर लाने की साजिशें भी हुई, लेकिन संवेदनाओं के स्तर पर यदि कोई व्यक्ति बाहर रहकर भी जुड़ा हुआ है तो हमें उसकी संवेदनाओं और रचनाओं दोनों को सलाम करना चाहिए। कई चर्चित उपन्यासों और संस्मरण के अलावा चंद्रकांता से अब तक 13 कहानी संग्रह हिंदी पाठकों को मिल चुके हैं। इनमें सलाखों के पीछे 1975, गलत लोगों के बीच, 1984, पोशनूल की वापसी 1988, दहलीज पर न्याय 1989, ओ सोनकिसरी 1991, कोठे पर कागा 1993, सूरज के उगने तक 1994, काली बर्फ 1996, कथा नगर 2001, बदलते हालात में 2002, अब्बू ने कहा था 2005, तैंती बाई 2006, रात में सागर 2009 और अलकटराज देखा क्या 2013 में प्रकाशित हुए। वे अब तक 200 कहानियां लिख चुकी हैं और उनकी रचनाओं पर 60 शोध हो चुके हैं। जिनमें कश्मीर में एक, जम्मू में एक, केरल, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार यूनिवर्सिटी में कई शोध हुए हैं। चंद्रकांता सिर्फ विस्थापन या स्त्री विषयक कहानियां ही नहीं लिखती, बल्कि उनमें व्यवस्था पर प्रश्न उठाती कहानियों के साथ ही संबंधों के छूटते जाने की भी कहानियां शामिल हैं।

आज कहानी के संसार में जो वरिष्ठ लेखिकाएँ अपनी गहन अनुभूतियों के साथ परिवार, समाज और देश की परिस्थितियों में हो रहे उथल-पुथल के बीच एक नये यथार्थबोध के साथ प्रश्नाकुलता की बेचैनी में घिरी हैं, उनमें से एक चंद्रकांता भी हैं। वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनका नया कहानी संग्रह 'अलकटराज देखा' ? इसी का संकेत है। अलकटराज प्रतीक है निराशा का, कभी न खत्म होने वाले अंधकार का, बेचैनी और छटपटाहट का, तनावों, संत्रासों और घुटन का और न जाने कितने ही ऐसे त्रासद भावों का जिनसे अलकटराज जैसे जेल के कैदी को हर क्षण गुज़रना पड़ता है। चंद्रकांता ऐसी लेखिका हैं, जिन्होंने कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की पीड़ा को समीप से महसूस किया है। उनमें स्त्री उत्पीड़न की भी अनुभूति है। स्त्री स्वातंत्र्य की वे पक्षधर भी हैं, लेकिन उनकी कहानियों के स्त्री पात्रों में

वह मर्यादाबोध है, जिसने यौन उच्छृंखलता की उत्तरआधुनिक संस्कृति उन्हें संक्रमित नहीं कर पातीं। दूसरे शब्दों में कहें तो चंद्रकांता की कहानियों में हर जगह संतुलन की स्थिति है। परंपरा और आधुनिकता या भारतीयता और बाज़ारवादी संस्कृति के कारण नाटकीय द्वन्द्व तो हैं पर कहीं ऐसी उथली अनुभूति, सोच या गतिविधियां नहीं हैं, जो लेखिका के पारंपरिक वैज्ञानिक तर्क का खंडन कर सके। लेखिका का सौंदर्यशास्त्र मर्यादाबाद में निहित है, यही कारण है कि टूटन, तनाव और घुटन के बीच भी लगाव पूरी तरह मर नहीं पाता और आत्मसंघर्ष प्रश्नाकुलता को और भी बढ़ा देता है।

वर्ष 1994 में युवा हिंदी लेखक संघ से प्रकाशित शकुंत दीपमाला का कहानी संग्रह 'कितिज लौट आएगी' जम्मू प्रदेश के हिंदी कथा जगत में शामिल हुआ। सोलह कहानियों का यह संग्रह साधारण लोगों के साधारण मनोभावों और असाधारण जीवन की कहानी लिए हुए है। संग्रह की शीर्षक कहानी के अलावा 'राम प्रसाद' कहानी काफी चर्चित रही है। शकुंत दीपमाला की कहानियों में बाल मनोविज्ञान की गहन पकड़, वातावरण के घिनौनेपन के विरुद्ध आक्रोश भी है। इनकी 'सीमा रेखा' कहानी भी खासी चर्चा में रही। विभाजन से ऊपर उठकर मनो की एकरूपता की बात करती यह कहानी मानव मन के जुड़े रहने की वकालत करती है। कश्मीर में मिलने वाली छोटी चिड़िया 'कितिज' को प्रतीक रूप में रखकर लिखी गई शीर्षक कहानी 'कितिज लौट आएगी' कश्मीर की भयावह सच्चाइयों के कड़वेपन की पूरी प्रखरता से अभिव्यक्त करती है। यह चर्चित कहानी अप्रैल 2014 के ज्ञानोदय पत्रिका के अखिल भारतीय विशेषांक में 'कितिज' शीर्षक से मूल डोगरी कहानी कहकर प्रकाशित की गई है। यहां रचनाकार की नैतिकता भी कठघरे में खड़ी होती है।

इस दशक में प्रो० किरण बख्शी की भी कई कहानियां अलग-अलग पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। प्रो० किरण बख्शी जिस स्थान से आती हैं वहां विभाजन की भीषण त्रासदी, मार काट और बिखराव रहा। आतंक और विस्थापन ने मन में बसी इस पीड़ा में और इजाफा ही किया। उनकी कहानियों में स्याह आंधी, सन्नाटा और ज़िंदगी, शहर में कर्फ्यू, बीजी झील सांस लेती है, भोली, हथेलियों में उगा सूरज, बूढ़े चिनार का सच, रोती नहीं जमीला सराही गई। इतनी कहानियां होने के बाद भी उनका एक भी संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है जबकि वे अभी भी लगातार लिख रही हैं। स्त्री विषयक कहानियों में पहाड़, कोहरा और ग्लेडोलाइ, उसके हिस्से का आकाश, साक्षी रहना नाहर सिंह, औरतें, चिड़िया सीख रही जीना, अब और नहीं, तीसरे किनारे के साथ-साथ आदि शामिल हैं। वहीं संवेदनाओं को दबोच रहे बाजारवाद का प्रतिकार करती उनकी कहानियों में मरे हुए सपने का दर्द, ढलान का सफर, लौटे नहीं विहग, सच के भीतर का झूठ, छूटा हुआ कुछ, लौट आओ तरू आदि शामिल हैं।

2000 के बाद के साहित्य को उत्तर भूमंडलीकरण के साहित्य के रूप में देखा जा रहा है। अब तक इस डेढ़ दशक में कहानी के शिल्प, कहन और खासतौर से विषय में अप्रत्याशित बदलाव आएं हैं। जो कभी मुख्यधारा थी वह अब हाशिये पर है और जो वर्ग, समूह, अंचल कभी हाशिये पर था, आज मुख्यधारा के केंद्र में है। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श, कस्बाई समस्याओं, संबंधों की खींचतान पर इस डेढ़ दशक में खूब कहानियां लिखी गईं। यह सूचनाओं की रेलमपेल और स्मृतियों के छूटने का दौर है इसलिए कथा साहित्य में सबसे ज्यादा इन्हीं स्मृतियों को पकड़ने की छटपटाहट है। इस समय लिखी जा रही कहानियों में अधिकांश का नायक या तो कोई बच्चा है या किशोर। या फिर आधुनिक संघर्षों से मुठभेड़ करता कोई युवा। आर्थिक उदारीकरण और सूचना तकनीक को साथ-साथ साधती इस पीढ़ी की रचनाओं में तात्कालिकता का जैसे उत्सव है वैसा ही स्मृति लोप का भी है। भारतीय ज्ञानपीठ की पत्रिका नया ज्ञानोदय ने वर्ष 2013 जुलाई माह का अंक वर्ष 2000 के बाद के डेढ़ दशक की कहानियों पर केंद्रित किया। इसमें हिंदी कथा जगत की दो पीढ़ियों को समाहित किया गया। जिनमें इनमें हम नहीं थे। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम हिंदी कथा जगत में कहीं नहीं है। हम लिख रहे हैं। मुख्य धारा के विषयों पर कलम चला रहे हैं, संवेदनाओं को संजो रहे हैं।

कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो बाहर रहते हुए भी निरंतर जम्मू-कश्मीर के रचनात्मक जगत से अपना जुड़ाव बनाए हुए हैं। ऐसे ही एक लेखक हैं नरेश कुमार उदास। लंबे समय तक हिमाचल में नौकरी करने के बावजूद जम्मू को उनकी साहित्यिक रचनाएं मिलती रही हैं। वर्ष 2003 में नरेश कुमार उदास का कथा संग्रह 'अंतिम इच्छा', 2011 में 'मां गांव नहीं छोड़ना' चाहती, 2013 में 'यहां तुम्हारा कोई नहीं', 2014 में 'रोशनी छीनते शब्द' और वर्ष 2016 में 'मेरी लोकप्रिय कहानियां' और 'मन के हारे हार' प्रकाशित हुए। संग्रह 'मां गांव नहीं छोड़ना चाहती' के लिए उन्हें राज्य के सर्वश्रेष्ठ पुस्तक सम्मान से भी नवाज़ा गया।

स्मृति लोप और संवेदनाओं के सूखते चले जाने की विडंबना को डॉ० संजना कौल अपनी कहानियों में बखूबी पकड़ती हैं। 2008 में आया उनका कहानी संग्रह 'काठ की मछलियां' प्रादेशिक कथा जगत को संपन्न करता है। इनकी कहानियों की भाषा और शब्द युग्म बहुत सुंदर होते हैं। वे संवेदनाओं और उस पर हो रहे छद्‌म की सूक्ष्म पड़ताल करती हैं। संजना अपने मित्रों में पढ़ने की आदत को लेकर बदनाम की हद तक मशहूर हैं। वे जितना पढ़ती है उतना बस वे ही पढ़ सकती हैं। हर कहानी में शीर्षक से लेकर अंत तक खूबसूरत शब्द युग्मों का प्रयोग इसी प्रभाव को दर्शाता है। इन शब्द युग्मों की मार्फत कई बार बहुत साधारण चीजों से असाधारण बिंब बनाती हैं। संग्रह की 'जल पाखी कहानी' में किनारे पर लगे बल्बों से बना बिंब है-पानी में नाचती रंग-बिरंगी जल परियां। डल झील की सैर को आने वाले पर्यटकों की यादों में वहां के खूबसूरत हाउसबोट रहते हैं। परंतु इन

हाउसबोटों के बाद छोटी-छोटी नावों पर जिंदगी जीने वाले मल्लाहों की जिंदगी की विडंबना कैसी हो सकती है उसका बड़ा ही पारदर्शी चित्रण है इस जलपाखी कहानी में। संग्रह में संकलित उनकी कहानी वनवास और कल्पवृक्ष की डाली भी चर्चित कहानी रही है।

वर्ष 2009 में आए महाराज कृष्ण संतोषी के कहानी संग्रह 'हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता' ने हिंदी कथा जगत का एक बार फिर से प्रादेशिक कहानियों की ओर ध्यान खींचा। महाराज कृष्ण संतोषी की पहचान मुख्यत: कवि के रूप में है। और उनकी कहानियां इसी कवि मन की संवेदनाओं और सुंदर भाषा से गुथी रहती हैं। संग्रह की तेरह कहानियां कश्मीर के निर्वासन और स्मृतियों के सहारे कश्मीर में रिश्तों के विरोधाभास को सामने लाती हैं। एक ही साथ दोस्त होते हुए भी परोक्ष में वही व्यक्ति दुश्मन भी है, लेकिन फिर भी अंतत: दोस्त ही है। उस विरोधाभास को यह कहानियां केंद्र में लाकर लक्षित करती हैं। मूलरूप से यह एक साधारण व्यक्ति की गहन संवेदनाओं की कहानियां हैं। 'हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता', 'कहने वाला कहता है' और 'आएंगे हम लौटकर ऐ वतन' ये तीनों कहानियां हंस में प्रकाशित हुई हैं। जबकि कथादेश में प्रकाशित कहानी 'कोख' और वागर्थ में प्रकाशित कहानी 'बिन्छूघात' ने खूब चर्चा बटोरी।

2012 में आया चांद दीपिका का कहानी संग्रह 'उपहार' और 'मेरा घर कहां है' भी हिंदी पाठकों का ध्यान खींचता है। हालांकि 'मेरा घर कित्थे है' शीर्षक से उनका पंजाबी संग्रह भी आया। इसलिए यह कहना काफी मुश्किल है कि मौलिक कृति पंजाबी की है या हिंदी की। इस शोध के झंझट में पड़े बिना भी संग्रह की 20 कहानियों का आनंद लिया जा सकता है।

2014 में भारतीय ज्ञानपीठ से आया योगिता यादव का कहानी संग्रह 'क्लीन चिट' खासा चर्चा में रहा। संग्रह पर प्रकाशन से पूर्व ही भारतीय ज्ञानपीठ के आठवें नवलेखन पुरस्कार की घोषणा की गई, जिसका मुख्य धारा में निर्विवाद स्वागत किया गया। इससे पहले अगस्त 2013 में नया ज्ञानोदय में प्रकाशित हुई उनकी कहानी 'नागपाश' की प्रदेश में और प्रदेश की बाहर खूब चर्चा हुई। ज्ञानोदय में प्रकाशित होने के बाद इस कहानी का कई ब्लॉग्स पर और ई पत्रिकाओं में पुर्नप्रकाशन किया गया। यह पाठकों का स्नेह ही है कि अगले ही वर्ष 2015 में 'क्लीन चिट' का दूसरा संस्करण पाठकों के हाथ में था।

कैसे एक कहानी मुख्यधारा में जगह बना पाती है। उसके लिए जरूरी है मॉडर्न एप्रोच। जो अब तक लिखा जा चुका है उसे आपके मित्र पढ़ें तो पढ़ें कोई और भला क्यों पढ़ना चाहेगा। कई बार पुराने विषयों पर लिखी गई कहानियां भी ध्यानाकर्षित करती हैं, अपने ट्रीटमेंट के कारण। अर्थात् वे लिखे जा चुके विषय को भी इतने आधुनिक ढंग से उठाती है कि वह नई दिखने लगती है और मुख्यधारा के पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। ऐसी ही

एक कहानी है योगिता यादव की 'झीनी झीनी बिनी रे चदरिया'। इसका शिल्प मुख्यधारा की कहानियों में खासा ध्यान आकर्षित करता है। जिसे वर्ष 2014 में अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में कलमकार पुरस्कार से नवाज़ा गया। क्लीन चिट के बाद बी योगिता यादव लगातार लिख रही हैं। इनकी कहानियां अभी तक शीराज़ा, नया ज्ञानोदय, हंस, कथाक्रम, वसुधा आदि में लगातार छप रही हैं। लोकप्रियता का जो स्वाद नागपाश ने चखा लगभग वही स्वाद हस के मार्च 2016 के स्त्री रचनात्मकता पर केंद्रित विशेषांक में प्रकाशित लंबी कहानी 'राजधानी के भीतर बाहर' ने भी चखा। इस पर कथा जगत के प्रतिष्ठित हस्ताक्षरों में शामिल जय श्री रॉय, डॉ. रजनी गुप्त, डॉ. अजय नावरिया, अवधेश प्रीत, शैलेंद सागर, अंजलि देशपांडे आदि की भी प्रशंसनीय प्रतिक्रियाएं मिलीं। हिंदी कहानी में महिला लेखन की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कहानी के विकास के साथ-साथ महिला कथा लेखन में भी विकास के अनेक आयाम देखे जा सकते हैं। आज का दौर स्त्री विमर्श का दौर कहा जाता है। मौजूदा समय में साहित्य की मुख्यधारा में स्त्री विमर्श में चार पीढ़ियां एक साथ रचनारत हैं। इनमें पहली पीढ़ी में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, रमणिका गुप्ता, अर्चना वर्मा हैं, तो दूसरी पीढ़ी में ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं का नाम शामिल है। तीसरी पीढ़ी की कथा लेखिकाओं में उर्मिला शुक्ल, जया जादवानी, उर्मिला शिरीष, सुषमा मुनींद्र, गीतांजली श्री, रजनी गुप्त का नाम लिया जाता है। स्त्री विमर्श की चौथी पीढ़ी में शामिल कथा लेखिकाओं में जय श्री रॉय, गीता श्री, वंदना राग, नीलाक्षी सिंह, कविता, आकांक्षा पारे के साथ ही योगिता यादव का भी नाम लिया जाता है। डॉ. उर्मिला शुक्ल योगिता यादव की कहानी 'पायल' की तुलना सुषमा मुनींद्र की कहानी की 'पिया बसंती' से करती हैं, जिसमें पुरानी परंपरा से मौन विद्रोह है। जबकि कहानी राजधानी के भीतर बाहर में संकीर्ण मानसिकता और पुरातन पाबंदियों से छटपटाहट और विद्रोह मुखर है। इसी बीच डॉ. आदर्श की किताब 'कथा अनंता' और शारदा साहनी जी का कहानी संग्रह 'संग तराश' भी चर्चा में रहा। जिसे हाल ही में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के हिंदीतर पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

वर्ष 2015 में डॉ. ओम गोस्वामी का एक और कहानी संग्रह 'मरी हुई मछली' नागरी प्रिटंस से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में 14 कहानियों का संग्रह किया गया है। जिनमें कुछ पारिवारिक कहानियां हैं तो कुछ आत्म मंथन और एकालाप की भी। डॉ. ओम गोस्वामी यदि डोगरी और हिंदी के द्वंद्व के बीच झूल न रहे होते तो वे प्रादेशिक हिंदी साहित्य में मौजूद दलित साहित्य की रिक्तता को मजबूती से भर सकते थे। वे अपनी कहानियों में उन विषयों को भी मुखरता से उठाते हैं जिन तक अमूमन शहरी सभ्य नजर नहीं पहुंच पाती। वे बस्तियां यहां अपने भरपूर सौंदर्य के साथ प्रस्तुत होती हैं जिन्हें हम साधारण अथवा चलताऊ भाषा में मलिन बस्ती कह जाते हैं। वे इन मलिन बस्तियों, यहां रहने वाले लोगों के आपसी व्यवहार और उनकी मलिन भाषा से भी जिंदगी का सौंदर्य ढूंढ निकालते हैं। जिंदगी के सौंदर्य और

रिश्तों की विद्रूपताओं का मिलाजुला सार हैं डॉ. ओम गोस्वामी की ये कहानियां। इन कहानियों में भी अनुभव और ताजापन एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि ऐसा कंट्रास्ट हैं जो रचना और रचनाकार दोनों का मानवर्धन कर रहे हैं। डॉ. ओम गोस्वामी वर्षों से लिख रहे हैं और लगातार लिख रहे हैं। हिंदी और डोगरी साहित्य जगत में वे एक विशाल वृक्ष के समान हैं। यह उनकी ताकत है कि हर कहानी में वे एक नए कहानीकार हो जाते हैं। उनका यूं नया हो जाना ही उनकी कहानियों के पात्रों को भाषा, भाव, परिवेश और व्यवहारगत ताज़गी देता है। अनुभव के सूक्ष्म धागों से पिरोई गई इन कहानियों का लिखा जाना ही अपने आप में एक उपलब्धि है।

2016 में पंजाबी रचनाकार बलजीत रैणा के दो कहानी संग्रह 'अग्नि गीत' और 'हल्ला गाड़ी' प्रकाश में आए। बलजीत रैणा स्वयं कहते हैं कि ये सभी कहानियां उनकी पंजाबी कहानियों का अनुवाद है। बलजीत रैणा यौन केंद्रित विषयों पर कहानियां लिखते हैं। संग्रह अग्निगीत में उन्होंने स्त्री पुरुष संबंधों की कहानियों का संग्रह किया है। वे मर्यादा के झंझट में नहीं पड़ते। उनके स्त्री पुरुष जरूरी नहीं कि पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका हों, वे किसी भी स्तर पर जाकर स्त्री-पुरुष संबंधों की गणित बिठा सकते हैं। एक अद्‌भुत बात और भी है जिसकी और ध्यान दिलाया जाना जरूरी है, वह यह कि वर्ष 1975 में बलजीत रैणा ने अपनी पहली कहानी यूनीक मैंने रेडियो पर युववाणी में पढ़ी। इसके बाद वर्ष 1978 से वे हिंदी की राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में लगातार छपते रहे हैं, जिनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, रविवार, हंस, कथादेश, समकालीन भारतीय साहित्य, कल के लिए, लमही, जनपथ, वागर्थ, कहन, वसुधा, सुलभ इंडिया, सुपर आइडिया आदि पत्रिकाएं शामिल हैं। इसके बावजूद उन्होंने अभी तक एक भी कहानी मूल हिंदी में नहीं लिखी। राष्ट्रीय स्तर की हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी ये सभी कहानियां मूल पंजाबी में लिखी गईं जिनका अनुवाद लेखक ने स्वयं किया।

पिछले कुछेक वर्षों में नीरू शर्मा ने भी हिंदी में अच्छी कहानियां लिखी हैं। संभावना है कि वर्ष 2016 के जाने से पहले ही उनका हिंदी कहानी संग्रह पाठकों के हाथ में होगा। जिसमें मौजूदा परिवेश के संघर्ष, स्त्रियों के अपनी अस्मिता के लिए हर स्तर पर किए जा रहे युद्ध और मौजूदा सामाजिक रूढ़ियों और समस्याओं को रेखांकित करती दस कहानियों का संग्रह है। ये कहानियां अब तक शीराज़ा, हमारा साहित्य, पंजाब की पत्रिका चिनाब, उत्तर प्रदेश की पत्रिका उत्तर प्रदेश और राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की पत्रिका हिंदी जुबान में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इन दिनों मानसी शर्मा भी हिंदी में कहानियां लिख रही हैं, लेकिन यदि प्रो. रीता जितेंद्र की परंपरा मे अलग उन्हें अगर रेडियो से हटकर साहित्यिक जगत में पैठ बनानी है तो साहित्यिक विषयों और शिल्प को भी साधना होगा।

उपरोक्त के अलावा भगवत प्रसाद साठे, श्रीवत्स विकल, बंधु शर्मा, ऊषा छवि व्यास, डॉ. आदर्श प्रकाश सहित कई और कहानीकारों ने भी हिंदी कथा जगत में अपना साहित्यिक अवदान दिया है। परंतु रचनाएं उपलब्ध न होने के कारण मैं उन पर अलग से कोई टिप्पणी नहीं कर पाई। संभवत: कुछ और कहानियां भी चर्चा से चूक गई होंगी, इस अज्ञानता के लिए सभी वरिष्ठ जन मुझे क्षमा करेंगे, ऐसी आशा है।

नई सदी में प्रकाशन के तमाम प्लेटफार्म उपलब्ध हुए हैं। आज ब्लॉग्स, फेसबुक, ई पत्रिकाएं आदि हैं जहां प्रकाशन की निरंकुश सुविधाएं उपलब्ध हैं। यहां बिना खेमेबाजी में पड़े आप सीधे अपनी वॉल या अपने ब्लॉग पर अपनी रचना के लिए पाठक जुटा सकते हैं। यदि फिर भी आप कहें कि हम खेमेबाजी में नहीं पड़ते इसलिए छिटक गए हैं, तो यह कोरा एक्सक्यूज ही है। एक क्लिक ने किलोमीटर की दूरी को डिलीट कर दिया है। दूर दराज कस्बे में बैठा लेखक भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की वेब पत्रिकाओं में छप सकता है। वंदना शुक्ला, गुजरात की अपर्णा मनोज, बंगाल के विमलेश त्रिपाठी, मध्य प्रदेश के पंकज सुबीर, प्रदीप जिलवाने, गोवा की जयश्री रॉव, गुड़गांव की लीना मल्होत्रा यदि इन माध्यमों को अपनाकर साहित्य की मुख्यधारा में जगह बना सकती हैं तो हम भी बना सकते हैं। साहित्य में हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों को थकने और हारने के संस्कार नहीं देने, बल्कि उनकी सपनीली आंखों में अपनी जीवट के किस्से सजाने हैं।

(पत्र लेखन के दौरान मैंने अपनी समझ और उपलब्ध सामग्री के अनुसार पूरी सतर्कता बरती है। फिर भी यदि कोई त्रुटि अथवा कोई कमी रह गई हो, तो पाठकों से करबद्ध अनुरोध है कि वे अवगत जरूर कराएं। आपकी टिप्पणी मेरे लिए आगे और बेहतर लेखन का मार्ग प्रशस्त करेगी।)

*

हिन्दी साहित्य और अनुवाद का महत्व

❐ प्रो० राजकुमार*

हिन्दी शब्द का प्रथम प्रयोग छठी शताब्दी में भारत की भाषाओं के लिए ईरान में हुआ। ईरान के फारसी के विद्वान बजरोया ने फारसी में अनुदित पंचतंत्र की भूमिका में कहा है। 'यह अनुवाद 'जबाने हिन्दी' से किया है', पंचतंत्र मूलतया संस्कृत में लिखा ग्रंथ है। इसी तरह सातवीं शताब्दी में पहलवी में महाभारत का अनुवाद किया गया और 'महाभारत' की संस्कृत भाषा को 'जबाने हिन्दी' कहा गया। इन दोनों अनुवादकों ने संस्कृत को 'जबाने हिन्दी' माना है।

12वीं शताब्दी में जब पृथ्वीराज चौहान को और दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान में राजपूतों और पूर्व में राठौर वंश के राज्यों को पराजित कर के मुहम्मद गौरी ने इस समूचे हिन्दी प्रदेश पर तुर्की मुसलमानों का राज्य स्थापित कर लिया तो देश के इस मध्य देश में खड़ी बोली तथा हिन्दी की अन्य बोलियां प्रकट होने लगीं। हिन्दी के इस आदिकाल में अपभ्रंशों का विस्तार हुआ जिन्हें उत्तरकालीन अपभ्रंश; पुरानी हिन्दी कहा गया, इस समय की हिन्दी में डिंगल और पिंगल दो रूप देखे गए। इसी समय दिल्ली मेरठ की हिन्दी में अरबी फारसी शब्दावली के प्रयोग से खड़ी बोली का विकास हुआ।

अमीर खुसरो ने भारतीय मुसलमानों के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया जो उसी काल में मध्यदेशीय भारतीय भाषा के लिए सहज ही प्रयुक्त होने लगा। अमीर खुसरो ने अनेक स्थानों पर मध्य प्रदेश की भाषा के अर्थ में 'हिन्दवी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि एक लम्बे समय तक 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग जनभाषा के रूप में न होकर साहित्यिक भाषा के लिए होता रहा था और जन भाषा के लिए 'देहलवी' का प्रयोग होता था। वास्तव में उन दिनों 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के द्वारा प्रयुक्त अरबी फारसी शब्द मिश्रित भाषा के लिए होता रहा, जिसे बाद में उर्दू नाम दिया गया, तथा संस्कृतनिष्ठ मध्यदेशीय भारतीय भाषा को 'हिन्दी' नाम से जाना जाने लगा। जबकि अमीर खुसरो जैसे कवियों ने 'हिन्दी' की साहित्यिक भाषा के लिए खड़ी बोली शब्द का प्रयोग किया।

जब मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण पर आक्रमण कर राज्य स्थापित कर लिया तो दक्षिण में साहित्य सृजन दक्खिनी हिन्दी में होने लगा, फिर भी शासकीय संरक्षण में खड़ी बोली

विकसित होती रही, जबकि जिस भाषा में हिन्दु संस्कृति की सुंगध बनी रही, वह ब्रज भाषा और अवधी के रूप में साहित्यिक भाषा बनती गई।

वास्तव में मुगल शासन काल में 1526 ईस्वी से भारत की जन भाषाओं ने स्वयं को अपने अपभ्रंश प्रभाव से मुक्त कर नवीन साहित्यिक रूप को प्रतिष्ठित करना आरम्भ कर दिया और हिन्दी भाषा के तीन साहित्यिक रूप विकसित होने लगे–ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली।

हिन्दी वास्तव में है क्या ? इस पर चर्चा करने से पूर्व हमें जान लेना चाहिए कि 1961 की जनगणना के अनुसार भारत की 75% आबादी में 574 के लगभग आर्य भाषाओं (बोलियों) का प्रयोग हो रहा था, मोटे तौर पर तब निग्रो, किरात, तिब्बती, चीनी, द्रविड़, आर्य परिवार की कुल मिलाकर 1200 भाषाएं प्रचलित थीं जिनमें से काफी भाषाएं अलिखित एवं अल्प प्रयुक्त हैं, परिपक्व भाषाओं को ही संविधान की आठवीं सूची में शामिल किया गया है।

यदि भारत में प्राक् ऐतिहासिक काल से प्रयुक्त हो रही भाषाओं का सर्वेक्षण किया जाए तो निग्रो के बाद भारत में आग्नेय आए, जो मुण्डा और कोल में बदल गए और आज भी छोटा नागपुर, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य बंगाल, मध्य प्रदेश तथा खासी की पहाड़ियों के निवासी हैं, इन सभी समुदायों के लोगों को संस्कृत में निषाद कहा गया है। इनके बाद द्रविड़ों का आगमन हुआ, जिनकी 153 बोलियां मुख्यतया तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं के अंतर्गत आती हैं।

हिमालय की घाटियों में आकर बसे विशत या तिब्बती, बर्मी या स्यामी चीनी लोगों की भाषाओं की संख्या लगभग 200 है, इनमें से मणिपुरी और लद्दाखी के लिखित रूप काफी हैं परन्तु इनमें से अनेक ऐसी भाषाएं हैं जिनका कोई लिखित रूप नहीं। आर्यों के आने से वे चाहे जब भी आए हों। भारतीय (हिन्दी के) भाषाई स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

यहाँ तक हिन्दी साहित्य की बात है तो मुसलमानों के आने से पूर्व संस्कृत के अतिरिक्त पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्य लिखा ही जा रहा था। 12वीं शताब्दी से संस्कृत के अतिरिक्त अपभ्रंशों से विकसित होने वाली हिन्दी में वीरगाथाएं लिखी गईं–ढोला मारु रदूहा, लिखा गया। मुसलमानों के आने से जो हिन्दी विकसित हुई उसमें जनभाषाओं के शब्द रहे, प्राकृत अपभ्रंश के सहयोग से साहित्य सृजन की हिन्दी भी विकसित की जाने लगी। क्योंकि मुसलमानों का भारत में प्रवेश सिंध, पंजाब के सीमान्तों की ओर से हुआ। अत: इन प्रदेशों की भाषाओं और संस्कृति से बाह्य विद्वान प्रभावित हुए। भारत में आने के पूर्व ही ईरान के विद्वान 'पंचतंत्र' और 'महाभारत' का अनुवाद 'जबाने हिन्दी' से फारसी और पहलवी में कर रहे थे तो जबाने हिन्दी के साहित्य के प्रति जिज्ञासा, ज्ञान पिपासा, धार्मिक आध्यात्मिक रुचियों

और हिन्दी संस्कृति के कला, शिल्प, संगीत आदि के प्रति आकर्षण के कारण। व्यापारिक आदान प्रदान के लिए भी व्यापारियों को अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में दो भाषियों को साथ रखना पड़ता था, धर्म प्रचारकों को भी अपने-अपने प्रचार क्षेत्र के लोगों की भाषा को जानना, समझना पड़ता था तथा बोलचाल और व्यवहारिक भाषा को सीखना पड़ता था। इसके लिए अनुवाद का महत्व आरम्भ से ही रहा है।

जब से विदेशी ताकतें भारत आने लगीं और यहां के ज्ञान-विज्ञान, कलाओं के प्रति आकर्षित होने लगीं, तभी से यहां के साहित्य आदि के अनुवाद की आवश्यकता अनुभव करने लगी। संस्कृत साहित्य का अरबी फारसी में इसी कारण अनुवाद हुआ, चीनी यात्री ह्यूनसांग, फाहयान यहां से बौद्ध मत से जुड़े ग्रंथों की प्रतियां ले गए, उन्हीं ग्रन्थों का बाद में अनुवाद होता रहा। मुस्लिम शासकों के रोजनामचे लिखने वालों को हिन्दी लिपिकों की लिखतों का अनुवाद करना पड़ता रहा है बाबरनामा, शाहजहांनामा आदि उन्हीं लिखतों के आधार पर लिखें गए हैं।

मुगल शहज़ादे दारा शिकोह में 'जबाने हिन्दी' में रची गई उपनिषदों में संचित अध्यात्म-ज्ञान की भूख रही है। इसी भूख की तृप्ति के लिए उसने अपनी भाषा में उपनिषदों का अनुवाद कराया। मुगल बादशाह हुमाऊं के पुस्तकालय के 'जबाने हिन्दी' की अनुदित पुस्तकों का भण्डार था। यहां के राजकाज और प्रशासन तंत्र की जानकारी के लिए भी विदेशी शासकों को यहां के ग्रन्थों का अनुवाद करवाना पड़ता रहा है। भारतीय जीवन और संस्कृति के आधार ग्रन्थ 'महाभारत' क्रा विदेशी शासकों ने तो अनुवाद करवाया ही, गुरु गोबिन्द के दरबारी कवि मंगल ने 'महाभारत' के कुछ खण्डों का अनुवाद किया। जम्मू के महाराजा रणजीत देव के पुत्र ब्रजराज देव के दरबारी कवि दत्तु ने भी 'महाभारत' के एक खण्ड को अनुवाद किया। कांगड़ा और गुलेर के दरबारों में मौलिक सृजन के साथ-साथ संस्कृत साहित्य का अनुवाद हुआ। तुलसीदास की 'रामचरित मानस' और कवि केशव 'रामचन्द्रिका' के कुछ प्रसंगों का अपनी भाषा-बोली में देहरा गोपीपुर के कवि ने किया है। गुलेर की रानी ने 1680 ईस्वी के आसपास डोगरी (कांगड़ा) पहाड़ी में स्वयं रचना की तो उसके दरबार में 'रामायण' और राधा कृष्ण के जीवन प्रसंगों को अनुदित कर काव्यबद्ध करने का भी यत्न हुआ, गुलेर की चित्रकला इन्हीं प्रसंगों को मूर्त रूप देती रही है। महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में हिन्दी के कवि ग्वाल रहे और वहां रहकर उसने कई रचनाओं का सृजन भी किया, वहीं से वह गढ़वाल चले गये। महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में पंजाबी के कवि हाशम ने कई किस्से लिखे, कवि शहरयार उस दरबार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि रहा। महाराजा के दरबार में अरबी, फारसी, पंजाबी, हिन्दी भाषाओं के जानकार कर्मचारी तो राजकाज कर ही रहे थे। उसकी सेना नें फ्रेंच, जर्मन आस्ट्रियन, अमरीकी लोगों का भी राजकाज और फौजी अनुशासन प्रशासन में दखल था। अंग्रेज़ी शासन के साथ महाराजा रणजीत सिंह का टकराव रहा फिर

भी उनसे संधि और व्यवहार के लिए दरबार में दो भाषिए रखे गए। जम्मू-कश्मीर राज दरबार में भी अनेक अनुवादक रहे हैं। मुझे स्वयं रणवीर लॉयब्रेरी में संगृहीत प्राचीन अनुदित पाण्डुलिपियाँ देखने का अवसर मिला है, इसी तरह अनेक अनुदित पाण्डुलिपियां कई रियासतों के राजघरानों के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में मिल जाती रही हैं, जिनके आधार पर साहित्य के इतिहास लिखे गए हैं।

मुगलों के उपरांत भारत में पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, अंग्रेज़ आए अपने-अपने उपनिवेश स्थापित करके राज्य करते रहे। उन्होंने भी यहां के साहित्य और ज्ञान-विज्ञान तथा प्रशासन तंत्र से जुड़े ग्रंथों का अनुवाद करवाया। अंग्रेज़ों ने तो यहां की भाषाओं को अपने अंग्रेज़ अफसरों और कर्मचारियों को सिखाने के लिए फोर्ट विलियम कालेज तक खोल दिया। स्वयं उन्होंने भारतीय ज्ञान के विलुप्त प्राय: ग्रन्थों को ढूंढ निकाला और उनका मुद्रण और प्रकाशन तक करवाया। वैदिक साहित्य पर जर्मनों और अंग्रेज़ विद्वानों ने गवेषणापूर्ण और विश्लेषणात्मक काम किया। रुडियाड किप्लिंग ने The light of Asia नामक काव्य ग्रन्थ लिखा जिसका बाद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी अनुवाद बुद्ध चरित काव्य में किया। स्पष्ट है कि विदेशी ही नहीं स्वदेशी विद्वान भी भारतीय भाषाओं की साहित्यिक सम्पदा से रू-ब-रू होना चाहते रहे हैं इसी कारण *माइकल मधुसूदन* की बंगला कविताओं, काव्य, नाटकों का अनुवाद हुआ। टैगोर ने कबीर के कुछ पदों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने के साथ-साथ स्वयं ही अपनी बंगला कृति 'गीतांजलि' का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने टैगोर के निबंधों का अनुवाद 'सरस्वती' में प्रकाशित किया, और हरिवंश राय बच्चन ने शैक्सपीयर के 'ऑथालों' मैक्बेथ का अनुवाद किया और ओम्मर खय्याम की रुबाइयों का भी अनुवाद किया, ओम्मर की रुबाइयों का तो मैथिलीशरण गुप्त तक ने भी अनुवाद किया है। प्रेमचन्द ने जॉहन गॉल्सवर्दी के *'सिल्वर बॉक्स'* का अनुवाद किया है, देवेन्द्र इस्सर ने मण्टों के उर्दू साहित्य का अनुवाद किया, इसी तरह बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों का कई हिन्दी लेखकों ने अनुवाद किया है। रूसी साहित्य के अच्छे अनुवादक भीष्म साहनी रहे हैं, अमरीकन लेखक विलियम फॉक्नर की कहानियों का अच्छा अनुवाद राम कुमार ने किया है, दास्तोवस्की, गोर्की, अल्बर्ट कामु यहां तक कि उच्च कोटि के विदेशी दार्शनिकों, भाषा विज्ञानियों, समीक्षकों के चिंतन मनन की चिंताओं से आज यदि हम परिचित हो रहे हैं तो अनुवाद के माध्यम से ही। यहां उन्हीं ग्रंथों का जिक्र किया गया है, जो पठनीय भी हैं और साहित्यिक संस्कार को विकिसत करने में सहायक भी हैं।

वैसे तो जो मेरे प्रपत्र का विषय है वह मैंने लिख/पढ़ दिया, छपने पर आपके सामने आ ही जाएगा। फिर भी मुझे कुछ और भी कहना है। वह यह कि जिस तरह से लगातार अनुवाद छप रहे हैं वे कई बार हमें मूल ग्रन्थ से, उसकी मूल संवेदना से भटका भी रहे हैं, परे भी ले जा रहे हैं। मूल लेखक ने संभवत: वह सब नहीं चाहा/सोचा होता जो अति उत्साही अनुवादक लिख/छाप देते हैं।

वैसे स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय दूतावासों में अनुवादकों की आवश्यकता को समझते हुए लोग अनुवाद की शिक्षा ग्रहण करके रोजगार चला रहे हैं। उनके व्यवसायिक ज्ञान-विज्ञान, राजनीतिक शास्त्र के ग्रंथों के अनुवाद के प्रति मुझे कुछ नहीं कहना, सिर्फ यह देखना है कि जो कलात्मक अनुवाद हो रहे हैं, उनके प्रति हमें सचेत रहना चाहिए क्योंकि कलात्मक अनुवाद वैज्ञानिक अनुवाद से सर्वथा भिन्न होता है। वैज्ञानिक अनुवाद में व्यवस्थित ज्ञान होता है, ज्ञान तर्क संगत, सुसम्बद्ध एवं वस्तुनिष्ठ होता है, जिसमें केवल अर्थ ही महत्वपूर्ण होता है, भाषा अर्थ के साथ जुड़ी नहीं होती परन्तु कलात्मक अनुवाद में स्थिति इसके विपरीत होती है। वास्तव में कलात्मक अनुवाद केवल शब्दों का प्रतिस्थापन मात्र नहीं है बल्कि एक प्रकार का पुनः सृजन है, जिसमें अनुवादक को कुछ जोड़ना कुछ छोड़ना पड़ता है। जिसमें किसी दूसरे के भाव बोध को अपनाकर लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करना होता है। अनुवाद में बोध गम्यता, सहजता, स्पष्टता, प्रवाहमयता और सम्प्रेषणीयता अनिवार्य गुण माने जाते हैं, जिसमें अनुवादक की सृजन शक्ति, मूलपाठ की सीमाओं में बंधी रहती है। व्यक्ति-विशेषताओं की अपेक्षा उसे मूल पर ध्यान केन्द्रित रखना होता है। अनुवाद तभी कला है जब वह पुनः सृजन की प्रक्रिया से होकर गुजरता है।

इस संदर्भ में अनुवादक को अनुवाद के लिए साहित्य की वही विधा अपनानी चाहिए जिसमें उसकी रुचि हो और जिसमें उसकी स्वयं की सृजन प्रक्रिया सतत् गतिमान रह सके, क्योंकि साहित्य की प्रत्येक विधा (वह चाहे कविता हो, नाटक हो, कहानी हो, उपन्यास हो, निबन्ध हो, की अपनी व्याकरण होती है। कवि कविता में ही भाषा की बहुस्तरीयता, छन्द, शिल्प, प्रतीक, बिम्ब योजना को हृदयंगम कर सकता है और लक्ष्य भाषा में (पूर्णतया तो नहीं) निकटतर पहुंच कर पुनः सृजन कर पाता है। इसी तरह रंगमंच के ज्ञान के बिना पात्रों की भात भंगिमाओं को देखे समझे बिना संवाद को समयबद्ध रूप में वही अनुदित कर सकता है जो स्वयं नाटककार और रंगकर्मी हो। साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना अनुशासन है। उसमें हर कोई छलांग नहीं लगा सकता। जबकि पढ़ने देखने में ऐसे छलांग फलांग वाले अनुवादक दिख ही जाते हैं।

*

अध्यक्षीय मंडल

प्रो. शिव निर्मोही :-

मेरे विद्वान मित्रो!

आज का जो सत्र था, प्रत्येक दृष्टि से बहुत ही सफल रहा। मैंने राष्ट्रीय स्तर पर बहुत से ऐसे सेमीनार और कान्फ्रेंसस में भाग लिया है। परंतु इस कान्फ्रेंस में मुझे बहुत अच्छा लगा, हर एक पत्र पर गहन विचार विमर्श, बहस और तर्क-वितर्क विश्लेषण किये गये जो कि कान्फ्रेंस की सफलता माने जाते हैं।

योगिता जी स्वयं कहानीकार हैं ज्ञानपीठ के नवलेखन पुरस्कार से सम्मानित हैं। कहानी की इन्हें पूरी पहचान है। इनका पत्र बहुत अच्छा था। इन्होंने बहुत से कहानीकारों का ज़िक्र किया है जिनमें से कुछ को मैं भी नहीं जानता था। इन्होंने प्रत्येक क्षेत्र को जोड़ने का प्रयत्न किया है।

जो हिंदी कहानी लिखी जा रही है वह केवल जम्मू तक ही सीमित नहीं है। बल्कि पुंछ, राजौरी, किश्तवाड़, लद्दाख, लेह और कश्मीर तक इसका विस्तार है। हिंदी का दायरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में हिंदी के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ रही है। हिंदी जम्मू-कश्मीर के तीनों क्षेत्रों, जम्मू, कश्मीर और लद्दाख में सर्वमान्य है। हिंदी या हिंदी कहानी के भविष्य को लेकर जो चिंताएं प्रकट की जाती हैं मेरा व्यक्तिगत तौर पर ऐसा मानना है कि हिंदी दिन प्रतिदिन विकास की और अग्रसर है।

हिंदी कहानी का रूप-सरूप, कथ्य बदलता जा रहा है। कहानी कहानीकारों के लिए लिखी जा रही है, पाठकों के लिए नहीं लिखी जा रही। मेरी अकसर अपने साहित्यिक मित्रों से इस विषय पर बात होती है। पहले कहानी जिस प्रकार हृदय को स्पर्श करती थी, उसमें एकरस होता था, अनुभूति होती थी, संवेदना होती थी, पर अब बौद्धिकता है, विचार है। उस प्रकार की कहानी जो पहले लिखी जाती थी जो आम जनता का प्रतिनिधित्व करती थी उसमें दर्द होता था, पीड़ा होती थी। वर्तमान समय की समस्याओं, विडम्बनाओं को उस प्रकार से कहानी में अभिव्यक्ति नहीं मिल रही है जिस प्रकार मिलनी चाहिये।

यहां तक्त अनुवाद का प्रश्न है। डॉ. राजकुमार प्रकांड विद्वान हैं। जम्मू कश्मीर का हिन्दी साहित्य और अन्य कई इनके प्रकाशित ग्रंथ हैं। इन्होंने हर विषय पर बड़ी सूक्षमता से अध्ययन प्रस्तुत किया है। एक मुख्य प्रवृति आ गई है कि क्षेत्रीय भाषाओं के स्थापित लेखक हिंदी

में आना चाहते हैं। जम्मू-कश्मीर के लेखकों के साथ भी ऐसा ही है। चाहे वह डोगरी लेखक हैं, चाहे कश्मीरी या लद्दाखी, प्रयास यह हो रहा है कि वह राष्ट्रीय पहचान के लिए हिन्दी में लिख रहे हैं। मेरे बहुत से मित्र हैं जो क्षेत्रीय भाषाओं के स्थापित लेखक हैं लेकिन हिन्दी में भी लिख रहे हैं।

इस तरह अनुवाद के माध्यम से साहित्य का आदान-प्रदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। मैं आज के इस सत्र के दोनों पत्र वाचकों को बहुत-बहुत बधाई देता हूं और इस प्रकार के आयोजन के लिए जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी को बहुत-बहुत बधाई। धन्यवाद।

प्रो. परविंदर कौर

सर्वप्रथम अमन जी को मुबारकवाद कि उन्होंने दो दिवसीय हिन्दी लेखक सम्मेलन का आयोजन करवाया। इस संगोष्ठी का शीर्षक है 'वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य'। अगर मैं वर्तमान युग की ही बात करूँ तो मुझे लगता है कि यह वर्तमान युग कुछ टेढ़ा-मेढ़ा चल रहा है। टेढ़े-मेढ़े से मेरा अर्थ क्या है कि बातें उतनी सीधी हैं नहीं जितनी होनी चाहिये। अब हमें अपने दुश्मन की भी पहचान आसानी से नहीं हो पाती। पहले हम समझते थे कि कौन हमारे बिरुद्ध है कौन हमारे साथ है। अब हमें यह भी समझ नहीं आती कि कौन हमारा दुश्मन है और कौन दोस्त। इस सारी स्थिति में जबकि बजारवाद है, मीडिया है, तकनीक है। हालांके हम इन चीजों से आंखें चुरा नहीं सकते। हमें इनका सामना करना है। कल भी यह बात चल रही थी कि हमें मीडिया का इस्तेमाल करना चाहिये। भई करेंगे, जरूर करेंगे लेकिन उसके लिए भी पूँजी की जरूरत है और पूँजी और मीडिया के गठजोड़ ने इतनी स्थितियां भयानक बना दी हैं कि यथास्थिति एकदम बदल कर हमारे सामने आ गयी है। अब जिसकी लाठी उसी की भैंस। जो ताकतवर है वही सारी चीजें हथिया लेता है। इस सारे परिदृष्य के बीच में भी साहित्य जो है, न वो बिकने के लिए तैयार है और न ही झुकने के लिए तैयार है। कल भी नरेन्द्र मोहन जी कह रहे थे कि मैं एक ही प्रश्न मंटो से पूछूंगा कि भई तुम कब आओगे ? यानि हम आज भी इंतजार कर रहे हैं उन लोगों का जो प्रतिरोध कर सकें। मैं एक सामान्य सी बात कहती हूँ कि Yes Man संस्कृति चल पड़ी है। सब लोग कहते हैं हां जी, हां जी। क्योंकि इसमें सब लोग खुश रहते हैं। नकार सुनने के लिए कोई तैयार नहीं। लेकिन आज इन दो पत्रों को लेकर जो चर्चा हुई। तो मुझे खुशी हुई कि भई हम Yes man नहीं हैं। अगर हमें कोई बात पसंद नहीं आती तो हम उसके विरोध में अपनी अवाज़ रख सकते हैं। बाकी सोचने की बात है कि उस पर किस तरह की प्रतिक्रियाएं आती हैं और किस तरह से नहीं आती। आज दो पत्र पढ़े गये। एक योगिता जी ने पढ़ा। मैं इसके शीर्षक के हिसाब से अंदाजा लगा रही थी कि संभवता यह प्रादेशिक कहानीकारों की तुलना अन्य कहानीकारों से करेंगी। लेकिन इन्होंने पूरा एक कोश तैयार कर दिया प्रादेशिक कहानीकारों का। कुछ छूट गये होंगे जैसे कि कुछ सुझाव भी उनके पास आएं चाहे वो हिन्दी के हैं,

किसी दूसरी भाषा के हैं। हां इतना था कि उनका पत्र कोश जरूर था। मैं जो उम्मीद कर रही थी उसमें मुझे एक बलजीत रैना जी की कहानियों की समझ आई और दूसरा चन्द्रकांता की कहानियों की कि उनमें क्या है। बाकी तो केवल मात्र नाम ही चलते रहे। मैंने कहा न कोश। यह सूचना का जमाना है, हमारे पास आती हैं सौ खबरें दो मिनट में। एक खबर अभी दिमाग में बैठती नहीं कि दूसरी, दूसरी नहीं तो तीसरी, बड़ी तेजी से हम चलते हैं। लेकिन जितनी मेहनत योगिता ने इन सारे कहानीकारों को एकत्रित करने में की और उनको पढ़ा भी होगा। पढ़ा होगा तो मैं उम्मीद करती हूँ कि आने वाले समय में यह उस में से कम से कम दस पत्र और निकालेंगी। क्योंकि अभी तो उन्होंने सिर्फ डाटा इकट्ठा किया है कि कौन-कौन से कहानीकार हैं और कहाँ-कहाँ के हैं। उनके कितने कहानी संग्रह है और उनमें मुख्य रूप से क्या चीजें हैं ? कल नरेन्द्र मोहन जी ने एक प्रसंग सुनाया था कि भई राजा सींघ धारी है। इस प्रकार पत्र में कुछ ऐसी चीजें आनी चाहिये जिन्हें हम लेकर जाए कि भई यह हैं अगर केवल-मात्र नाम आ जाएगें तो वह हमारे लिए उतनी उपयोगी नहीं है। मेरा एक सुझाव है जो इन्हें आने वाले दिनों में लाभ पहुँचाएगा। मैंने कहा कि इन्होंने जो डाटा तैयार किया है उसमें से कम-से कम दस पत्र तैयार करेंगी। मैं इन्हें पत्र के लिए मुबारकवाद देती हूँ। और कात्यायनी के शब्दों में मैं कहना चाहूँगी, वह कहती हैं :

इस सांद क्रूरता भरे समय में
एक लड़की के लिए जीना ही क्या कम है
कि वो रचने चली कविता ?

और यह कविता भी लिखती हैं, कहानियां भी लिखती हैं इसके लिए इनको मुबारकवाद।

दूसरा पत्र था प्रो. राजकुमार जी का। मैं सोच रही थी कि मुझे आयोजकों ने कहां बिठा दिया यानि डॉ. पी. एन. त्रिछ़ल भी मेरे गुरु रहे हैं, डॉ. राजकुमार जी से भी मैं पढ़ी हूँ और डॉ. शिव निर्मोही जी से भी। यह तीनों गुरु हैं इनके बीच में एक अदना सा शिष्य क्या कर सकता है। लेकिन आपने एक जिम्मेदारी मुझे सौंपी तो मैंने कहा कि चलो दो शब्द बोल ही देती हूं।

प्रो. राजकुमार जी का पत्र जैसे कि इन्होंने कहा, हिन्दी भाषा और अनुवाद जो इनको दिया गया था लेकिन बाद में इन्होंने कहा हिन्दी भाषा और अनुवाद का महत्व। यहां पर चर्चा भी चली थी कि यह दो पत्र हैं। क्योंकि हिन्दी भाषा अलग से है और साहित्य अलग से। अगर यह हिन्दी साहित्य से शुरू करते तो इनके लिए भी असानी रहती और जो प्रश्न उठे, उनके उत्तर भी इनको न देने पड़ते। हिन्दी कब आई, कहां से आई कैसे आई यह प्रश्न अब काफी पीछे छूट चुके हैं। जैसा कि मैं उम्मीद कर रही थी हिन्दी साहित्य और अनुवाद का महत्त्व क्या है ? कितने अनुवाद हिन्दी साहित्य से हो चुके हैं। लेकिन जिस प्रकार का पत्र इनको दिया गया इन्होंने भरसक प्रयास किया कि हिन्दी से हुए अनुवादों के महत्व को हमारे सामने रखें। प्रश्न तो आ ही जाते हैं इसमें कोई संदेह नहीं और जिस पत्र पर प्रश्न

न हों उस पत्र का लाभ क्या ? दो चार प्रश्न तो सामने से आने ही चाहिये। हाँ यहां तक अनुवाद का सम्बंध है। इन्होंने खुद ही कहा भई उसे उस विधा का अनुशासन मालूम होना चाहिये जिसका वह अनुवाद करने जा रहा है। भाषा की विशेषताएं और विविधताएं भी पता होनी चाहियें। भाषा का मुहावरा पता होना चाहिये। जब तक आप किसी भाषा को बहुत नजदीक से नहीं देखते। उसे आत्मसात नहीं कर सकते। आप अनुवाद नहीं कर सकते। मैं पंजाबी की एक कहानी का छोटा-सा उद्धरण बताना चाहूँगी। जिसमें एक व्यक्ति है उसका एक पड़ोसी है जो उस व्यक्ति से बहुत नफरत करता है। चाहता है उसे मार ही दे लेकिन नहीं मार पाता। ऐसा हुआ कभी कि किसी और ने उसकी गर्दन काट दी, वो सुबह-सुबह जब चार बजे घर से बाहर निकला तो उसने देखा पड़ोसी की गर्दन पड़ी हुई थी। अब पंजाबी में कहूँ तो उसने उसकी गर्दन को ''ढुड्ड मारा'' अब हमने करना है इसका अनुवाद। 'ढुड्ड मारने' को उसने ठोकर मारी, जोर से मारी यानि कि 'ढुड्ड मारने' में जो Concept है उसके अनुवाद करने में थोड़ी-सी दिक्कत तो आती है। आप बिलकुल वैसे शब्द नहीं ढूँढ पाते जो एक भाषा में है। हर एक भाषा का अपना एक मुहावरा होता है। उस भाषा की संस्कृति को अगर आप जानते हों। अनुवाद की अपनी कुछ दिक्कते हैं। मैं प्रो० राजकुमार को भी उनके पत्र के लिए बहुत-बहुत मुबारकबाद देती हूँ।

*

अध्यक्षीय वक्तव्य

प्रो. पी. एन. त्रिछ़ल : इस सत्र में दो पत्र वाचन हुए। योगिता यादव ने कहानी पर पत्र पढ़ा। मैं इस पत्र को सुनकर के दंग रह गया। प्राय: इस प्रकार के सत्र में जो इतनी लम्बी परिधि में फैला हुआ विषय हो उसे कैसे समेटा जाए, किस तरह से किया जाए। जब ऐसा पत्र प्रस्तुत किया जाता है तो वह केवल Discriptive Catalogue मात्र रह जाता है। लेकिन ऐसे जोखिम उठाते हुए भी जिस कुशलता से योगिता जी ने एक लाइन में ही सही अपने Comments दे दिये। जो-जो संकलन इनकी नजरों से गुज़रे, जो इन्होंने पढ़े उनके बारे में। और उस रूप में भी कहीं इन्होंने द्वंद्व को कहानी का शाश्वत तत्व माना जो पहले भी था अब भी है। इस वर्तमान समय में साहित्य के अनेक पैंतरों के होते हुए भी और अनेक़ नाम ले लिए और उनके बारे में भी अपने Critical, Analytical Remarks देती चली गयी। वो वाकेअ ही श्लाघ्य हैं। और कुछ ऐसे नाम पुन: स्मरण कराए जिनको प्राय: हम भूल चुके हैं। जैसे मोहन कृष्ण धर, दीपक कौल, हरि कृष्ण कौल, ओम प्रकाश सारथी आदि। इन्होंने बहुत से स्थापित प्रसिद्ध साहित्यकारों के केवल नाम नहीं गिनाए। उनके साहित्यिक योगदान पर बिंदू सारांश भी प्रस्तुत किया। ऐसी टिप्पणियां या भाव यूँ ही नहीं आ जाते जब तक न गहरा अध्ययन हुआ हो। यह एक संवेदनशील साहित्यकारा हैं। और इनमें जो In Built ज्ञान का भंडार है उस में से निकली हुई Point Summaries हैं। उनको एक चलती हुई बात कहना सही नहीं होगा। इन्होंने कहानियों में प्रतिशोध, विरोध की भी बात की और विद्रोह की भी बात की। यह प्राय: Angry Youngmans Period की विशेषताएं थीं। लेकिन इस प्रदेश के हिन्दी लेखकों ने किस प्रकार उनको अपनी कहानियों मं स्थान दिया। यह भी देखा गया कि किस प्रकार उन्होंने विकृत स्थिति का परिचय देते हुए भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। क्या यह सचेत प्रयास रहा है उनके बारे में ? इसके बारे में लेखिका मौन हैं। लेकिन इंगित कर रही हैं कि ऐसा हुआ है। इन्होंने शकुन्त दीपमाला जी द्वारा लिखित 'नया क्षितिज' का उल्लेख किया। क्यों न हो शकुन्त दीपमाला कोई नया हस्ताक्षर नहीं हैं। हम पिछले चार दशकों से उनको जानते हैं। बड़ी प्रौढ़ कवयित्री हैं। उनका हिन्दी में कहानी लिखने का जो प्रयास है, जो हिंदी कहानी संग्रह इन्होंने दिया है। योगिता जी की नज़रों से वो भी नहीं छूटा है। इन्होंने यह भी प्रश्न उठाया कि यह जो सीमाएं, हैं आधुनिक युग की। क्या ऐसा चिंतन नहीं होता रहा है। यह प्रश्न भी जो इनके पत्र के माध्यम से उठा है यह क्या कम उपलब्धि है। अपनी आयु में मुझ से छोटी होने के कारण मैं इनको साधुभाव दे सकता हूँ लेकिन लेखन की दृष्टि से यह बहुत ऊपर हैं। और इस प्रकार इन्होंने कई विमर्शों की बात की जो प्राय: हिंदी लेखन में प्राश्रय पाता

जा रहा है और हमारे इस प्रदेश के हिन्दी लेखकों में भी उसकी अनदेखी नहीं की है, चाहे वो स्त्री विमर्श है, चाहे वो दलित विमर्श है। इन्होंने कई लोगों के नाम गिनाए जिनमें बलजीत रैना है, ओम गोस्वामी हैं और इनके जो Remarks हैं वो बड़े गहरे हैं। मैं इनको साधुभाव देता हूँ और मुबारकवाद देता हूँ।

प्रो. राजकुमार जी का पत्र था हिन्दी साहित्य और अनुवाद। इन्होंने हिंदी शब्द पर भी बड़ा प्रकाश डाला, साहित्य पर भी और अनुवाद पर भी। जैसा कि एक शोधत्सु को करना चाहिये। हिंदी का यहां पर संबंध है अनेक अर्थों में है। हमें जब इसका प्रयोग करना होता है हमें इनको संकुचित करना पड़ता है। क्योंकि जब अतिव्यक्ति होती है किसी शब्द में उसको स्वयं संकुचित करना पड़ता है। हिंदी का मतलब जो हिंद का है। चाहे वो तमिल है, चाहे संस्कृत रही है चाहे प्राकृत रही है। लेकिन संकुचित अर्थ में हम किसको हिंदी कहते हैं ? और उसका प्रयोग उस रूप में जिस रूप में हम आज करते हैं, वो अमीर खुसरो की एक फ़ारसी ग़ज़ल में मिलता है। जिसमें उसने कहा है कि उसे अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिंदवी भी आती है। हिंदी में सबसे पहला अनुवाद हिंदी साहित्य के प्रवर्त्तक भारतेंदू हरिश्चंद्र ने किया था। जब उन्होंने Merchant of Venus का Translation किया। उसका नाम भी भारतीय रखा 'दुर्लभ बंधू'। चरित्रों को भी भारतीय नाम दिये और उसके बाद अगर कोई प्रसिद्ध नाम आता है तो वह स्वयं प्रेमचंद का।

प्रो. राजकुमार ने हिंदी का विकास भी बताया और फिर जो नाम आते हैं हितोपदेश, पंचतंत्र की कहानियों से लेकर के महाभारत, रामायण से लेकर के दाराशिकोह ने जो स्वयं उपनिषदों का अनुवाद किया। और जो उन्होंने अनुवाद किया फारसी भाषा में, ऐसी विचित्र बात देखी हमने कि जो पहले 35-40 पृष्ठ की Dictionary सी दे रहे हैं। जो बहुत ही श्लाघय है और उसकी भी चर्चा उन्होंने की। बड़ा ही सुखद आश्चर्य हुआ। कौन किस भाषा का मूल लेखक है और अनुवादक इस पचड़े में न पढ़ें। मेरा निजी विचार है कि जब हम हिंदी पढ़ रहे हैं तो मुख्यधारा और प्रादेशिक धारा यह भेद रहता नहीं है। हम हिंदी के हैं। हिंदी एक धारा है, कहीं से भी कोई सीर मिल जाए उसमें तो उससे उसका जायका भी उस नदी में आ जाएगा। यह तो एक नदी है कोई सरिता इधर से आकर के मिल गयी कोई उधर से तो वह हिंदी ही बन जाती है। चाहे कश्मीर से बहे, चाहे जम्मू से, चाहे यू.पी. से, चाहे कहीं से भी बहे, वो तो हिन्दी है। हिंदी हिंदी ही है। और हिन्दी में जो कुछ लिख रहा है, वो जो खेमों में नहीं बंटना चाहते हैं, समस्या उनकी है। वो लेखक के रूप में लेखक बने रहना चाहता हैं। यहां पर आ जाती है मुख्यधारा और प्रादेशिक धारा।

जब हम अनुवाद करते हैं तो कुछ दे भी जाते हैं। डॉ. राजकुमार ने स्वयं अपनी एक कहानी में 'होंद' शब्द का प्रयोग किया है अस्मिता के लिए। 'होंद' शब्द हिंदी का नहीं है लेकिन बड़ा खप रहा है वहां। ऐसे शब्द भी अगर हिंदी को मिलते हैं प्रादेशिक भाषाओं से तो हिंदी समृद्ध होगी। हमारा संविधान भी कहता है कि दूसरी भाषाओं से जो शब्द मिलें

लेने चाहिये। तो फिर हम प्रादेशिक कह करके एक लाइन क्यों खींच देते हैं। जैसा कि किसी कवि ने कहा है, you draw a line and put me out. हमारी यह धारणा है कि Draw a Circle and Put You in हम अलग नहीं है उनकी मुख्यधारा से, मुख्यधारा हम ही हैं। तो हम अगर अपनी मातृ भाषा या पहली भाषा से उसके कुछ विशेष रूप ले लें तो इससे हिन्दी समृद्ध ही होगी। डॉ. राजकुमार जी ने अनुवाद की उपयोगिता और महत्त्व पर बल दिया है वह उचित है सामूहिक रूप से यह सत्र मेरी दृष्टि में पूरी तरह सफल रहा। पत्र वाचकों ने अपने विषयों के साथ न्याय किया है। मेरे ख्याल में जो प्रो. राजकुमार जी का पेपर है अपने आप में पूर्ण है। चूंकि वो एक अनुसंधान की दृष्टि से, रिसर्च की दृष्टि से लिखा गया है। इसलिये जितने भी शब्द हैं उनकी व्याख्या, उन पर प्रकाश डालना, अनुसंधान की दृष्टि से लिखे गये पत्र का एक गुण ही होता है। इसलिये वो सम्पूर्ण पत्र है आपको भी बहुत-बहुत बधाई डॉ. राजकुमार जी।

*

धन्यवाद प्रस्ताव

❑ डॉ. अरविंदर सिंह 'अमन'
(अतिरिक्त सचिव)

मुझे पता है वक्त बहुत हो गया है। आज के पहले सत्र में जो पर्चे पढ़े गये उन पत्र-वाचकों का और अध्यक्ष मंडल में बैठे हमारे महानुभावों का बहुत-बहुत शुक्रिया। आप सबने इसे बड़े धैर्य से सुना और इसमें होने वाली चर्चा में भाग लेकर इसे सफल बनाने का प्रयास किया इसके लिए आप सबका बहुत-बहुत शुक्रिया। इस बात के साथ कि जब हमने इस लेखक सम्मेलन की योजना बनाई थी, जब अपने सहयोगियों के साथ बैठ कर पहली मीटिंग की थी तो हमने एक बात जेहन में रखी थी जो मैं आपसे Share करना चाहूँगा कि हम आइंदा से सेमीनार इस तरह से Plan करेंगे कि उसके बाद हर साल वो सेमीनार हो। लेकिन Repetition न हो। वो पहले साल के सेमीनार का 2nd Part हो। यहां हमने इस सेमीनार को आज छोड़ना है अगले साल हम उसको वहां से शुरू करें। तो वो एक कदम आगे की ओर होगा। वरना आज हम जैसे वहीं विकास पर टिके रहेंगे। वही पर्चाकार पर्चा पढ़ेंगे और हम हाल में बैठे नोट करते रहेंगे या फिर इस प्रकार की Repetition पर ध्यान देते रहेंगे। हमारी यह बड़ी संजीदा कोशिश है, एक ख्वाब है जिसकी पूर्ति आपके बिना बिल्कुल संभव नहीं है। इसलिये हम कोशिश करेंगे जैसा डोगरी में हमने कोशिश की थी कि सेमीनार की रूपरेखा तैयार करने के लिए हमने डोगरी के बुद्धिजीवियों एवं Scholar's को बुलाया था। उनके साथ मीटिंग की थी।

अज़रा जी के साथ बैठकर हमने यह Discuss किया कि यह जो कान्फ्रेंस का Special Number छपेगा शीराज़ा का उसमें पूरी यह जो वीडियो रिकार्डिंग, आडियो रिकार्डिंग और Still Photography हो रही है, इस पूरी कार्यवाई को हम शीराज़ा में छापेंगे और उसके बाद हम कुछ नुक्ते निकालेंगे ताकि अगले साल जब हम किसी को जम्मू-कश्मीर की कहानी पर पर्चा लिखने के लिए दें तो इस सैशन में हमने कहानी को कहाँ छोड़ा है वो उसके पास एक Draft Note के रूप में पहुंच जाए। ताकि जब वो उसको आगे Develop करें तो वो वहां से आगे बात हो। यह एक हमारी कोशिश है। अगर हम सब मिल कर एक टीम की तरह काम करें। अकैडमी जो है वो सिर्फ आपको infrastructure दे सकती है। मौके दे सकती है। मंच दे सकती है। और आप क्योंकि बुद्धिजीवी हैं। आप भाषा के माध्यम से हमारी ज़िंदगी के रहबर हैं, जिनको आपने हमारे सामने लाकर के नयी Generation को देना है। इ-पाठक का यह जो विषय है यह हमने हिंदी भाषा में भी रखा है। आगामी समय में पंजाबी की कान्फ्रेंस करने जा रहे हैं उसमें भी हमने इस टापिक को रखा हुआ है। इ-पाठक और पंजाबी साहित्य। हम यहां घुसना चाहते हैं। हम इस इ-पाठक के साथ सीधा सम्पर्क बनाना चाहते हैं। अपनी उस सारी विरासत के साथ जो हमारे पास folk के रूप में खजाना मौजूद है। अगर आप सभी इसी प्रकार हमें सहयोग दें तो हम जरूर कामयाब होंगे। आप सभी लोगों का बहुत-बहुत शुक्रिया। इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया का भी धन्यवाद।

*

28 मई 2016

द्वितीय सत्र	:	पत्रवाचन
अध्यक्ष	:	प्रो० रत्नलाल शांत
अध्यक्ष मंडल	:	डॉ० निर्मल विनोद, डॉ० सतीश विमल
पत्रवाचक	:	श्री पवन चौहान, बंदना ठाकुर
मंच संचालन	:	अज़रा चौधरी
सत्र की रिपोर्टिंग	:	यशपाल निर्मल

पत्र वाचन

मंचासीन अध्यक्ष मंडल : प्रो० रत्न लाल शांत, डॉ० निर्मल विनोद, डॉ० सतीश विमल तथा अज़रा चौधरी (संपादिका)

पत्रवाचिका : सुश्री बंदना ठाकुर

पत्र वाचन

पत्रवाचक : श्री पवन चौहान

अभिनव थियेटर में उपस्थित गणमान्य अतिथि

आलेख

हिन्दी बाल साहित्य : संभावनाएं एवं महत्व

❑ पवन चौहान*

छोटे बच्चों को ध्यान में रखकर रचे गए साहित्य को बाल साहित्य का दर्जा दिया जाता है। अच्छा बाल साहित्य बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में अपनी अहम भूमिका अदा करता है। यह जहां बच्चों का मनोरंजन करता है वहीं उन्हें शिक्षा, संस्कार और मानव मूल्यों का ज्ञान भी कराता है। हम यह कहें तो गलत न होगा कि बाल साहित्य बच्चों के विकास की नींव है। भारत में कई भाषाओं का समावेश है। हर भाषा में बाल साहित्य की रचना हुई है जो बाल साहित्य को समृद्ध करते रहे हैं। यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि बच्चों के लिए लिखी कहार्नी, कविता, बालगीत, नाटक आदि को सिर्फ बच्चे ही पसंद नहीं करते अपितु बड़े लोग भी इसका भरपूर आनंद उठाते हैं। इसका सीधा-सा प्रमाण बच्चों के लिए चलाए जा रहे कार्टून कार्यक्रमों को देखकर भी लगाया जा सकता है। इन्हें सिर्फ बच्चे ही नहीं बल्कि उनके बड़े भी साथ बैठकर मजे से देखते हैं। यह बाल साहित्य के प्रति बड़े लोगों के आकर्षण के रूप में लिया जा सकता है। वैसे भी जिस व्यक्ति में बाल सुलभ चंचलता नहीं है उसे पत्थर के समान ही माना गया है।

यदि हम अपने समाज की बात करें तो बाल साहित्य यहां सदियों से हमारे घरों में नाना-नानी, दादा-दादी की कहानियों, कहावतों व प्रश्नोत्तरी आदि में विद्यमान रहा है। बेशक, उस समय यह लिखित रूप में न हो लेकिन यह परंपरागत तरीके से आगे से आगे बढ़ता चला गया और अपनी जड़ें मजबूती से जमाता रहा तथा संस्कारों की उपजाऊ जमीन तैयार करता रहा। नाना-नानी, दादा-दादी के पास बैठकर बच्चा जहां उनका स्नेह व प्यार पाता था वहीं उन्हें करीब से जान भी लेता था। इससे बच्चों का अपने बुजुर्गों के प्रति आदर-सत्कार व प्यार हमेशा कायम रहता था और उनसे संस्कारों की विरासत को ग्रहण करता था। लेकिन आज संयुक्त परिवारों के टूटने से यह सिलसिला भी टूटता-सा चला गया है। आज एकल परिवारों में बंटा हमारा समाज सिर्फ रुपयों के पीछे भागता चला जा रहा है। परिवार में अपनों के लिए उसके पास वक्त कहां बचा है। इससे बच्चों पर बहुत गलत असर पड़ रहा है। परिवार के लिए समय की इस कमी की वजह से बच्चा अपने परिवार के लोगों को सही

---

* *गांव व डॉ० महादेव, तहसील-सुन्दरनगर, जिला मण्डी (हि०प्र०)-175018*
फोन-094185 82242, 098054 02242 E-mail-chauhanpawan78@gmail.com

ढंग से समझ नहीं पाता है। वह खुद को उपेक्षित-सा महसूस करता है। यह संस्कारों की गिरावट का बहुत बड़ा कारण हो जाता है।

बाल साहित्य बच्चों के लिए तीन उद्देश्य लेकर आता है जो मनोरंजन, नैतिक शिक्षा के साथ-साथ उनके विकास की विभिन्न प्रकार की जानकारियां उपलब्ध करवाता है। नैतिक शिक्षा को बच्चे बोरिंग समझते हैं। इसलिए इसे बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से दिया जाना चाहिए जैसे पंचतंत्र में दी गई है। बच्चों के व्यक्तित्व में निखार लाने के लिए बाल साहित्य की नितांत आवश्यकता है। बचपन की शिक्षा बच्चों का भविष्य तय करती है। वैज्ञानिकों की माने तो बच्चों के मस्तिष्क का बहुत-सा विकास छोटी उम्र में ही हो जाता है। यदि इस उम्र में बच्चों को सही, संपूर्ण और सकारात्मक शिक्षा उपलब्ध करवाई जाए तो हमें भविष्य में इसके सुखद परिणाम नज़र आएंगे जो एक बेहतर समाज के निर्माण में मदद करेंगे।

वैसे लिखित रूप में 1623 में जटमल की कृति 'गोरा बादल की कथा' को बच्चों की पहली किताब माना जाता है। यह किताब मेवाड़ की महारानी पदमावती की रक्षा करने वाले गोरा बादल की कथा है। 1862 में 'बाल दर्पण' तथा 1874 में 'बाल बोधिनी' पत्रिकाओं का प्रकाशन भारतेन्दु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से हुआ। इन पत्रिकाओं से ही हिन्दी बाल साहित्य का जन्म हुआ है। इसके बाद की पत्रिकाओं जैसे शिशु, वानर कुमार, बालसखा, विद्यार्थी आदि पत्रिकाओं से सही मायने में बाल साहित्य की मौलिक, सामयिक और उद्देश्यपूर्ण लेखन की शुरुआत हुई मानी जाती है। बाल साहित्य में इसके बाद भी बहुत सारी पत्रिकाएं प्रकाशित हुई जिसमें बाल हितकर, बाल प्रभाकर, बाल बोधिनी, मानीटर, चमचम, अमर कहानी, राजा भैया, बालक, मेला, बाल मेला, छात्र हितैशी, दोस्त कलरव, तारा, बाल लहर, बाल परंपरा आदि। इन पत्रिकाओं ने निःसंदेह बाल साहित्य को नई दिशा और दशा प्रदान की। 1940-50 में बाल साहित्य में एक नया जोश और गति प्रदान हुई जिसमें श्रीधर पाठक, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, विष्णुकांत पांडे, लल्ली प्रसाद पांडे, द्वारका प्रसाद माहेश्वरी, सोहन लाल द्विवेदी, निरंकार देव सेवक, अयोध्या सिंह हरिऔध, कामता प्रसाद, आनंद प्रकाश, हरिकृष्ण देवसरे, रामनरेश त्रिपाठी, सुखदेव चौबे, गिरिजादत्त शुक्ल, चक्रधर नलिन, चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' आदि बहुत से लेखकों ने बाल साहित्य के विकास, प्रचार-प्रसार और इसके उत्थान के लिए अपनी सारी ऊर्जा और प्रतिभा को लगा दिया।

इसके बाद बहुत सारी पत्रिकाएं आईं जिन्होंने बाल साहित्य के क्षेत्र में अपने स्तर, पठनीयता, पेंटिंग, रेखांकन और स्तरीय सामग्री के कारण बाल पाठकों के दिलों में जल्दी ही अपना घर बना लिया। इनमें हम पराग का नाम लें तो गलत न होगा। हरिकृष्ण देवसरे ने इस पत्रिका में कई प्रयोग किए। उन्होंने इस पत्रिका में कल्पना लोक, चमत्कार आदि के घेरे से निकलकर पाठकों को हकीकत की दुनिया का सामना करवाया। देवसरे ने तर्क संगत, समय सापेक्ष्य और यथार्थ परक दृष्टि के कारण बाल साहित्य में एक नई नींव रखी। पाठकों

ने देवसरे के इस प्रयोग को सहर्ष स्वीकार किया और जल्दी ही 'पराग' सबकी पसंदीदा पत्रिका बन गई। बाल साहित्य में एक विशेष घटना तब हुई जब अहिन्दी क्षेत्र मद्रास से 1948 में 'चन्दामामा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका को बाल पाठकों ने बहुत जल्द ही अपने पाठन का हिस्सा बना लिया और यह पूरे देश में बहुत लोकप्रिय हो गई। बाल साहित्य में इस वक्त तक कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि हर विधा में लिखा जाने लगा था अर्थात् बाल साहित्य का संपूर्ण परिदृश्य पाठकों के सामने था।

1901 से 1947 अर्थात् आज़ादी से पूर्व के काल में बाल साहित्य का काफी विकास हुआ। प्रसिद्ध बाल साहित्यकार प्रकाश मनु की बात करें तो वे आज़ादी के बाद से 1970 तक के समय को बाल कविता का 'गौरव युग' कहते हैं। उनके अनुरूप इस दौर में काव्य क्षमतापूर्ण, संभावनापूर्ण और नए युग की चेतना से लैस प्रतिभाओं ने बाल कविता को खूब निखारा। 1970 के बाद के समय को मनु जी ने 'विकास युग' कहा। इस काल में बाल साहित्य का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। खूब बाल गीतों की रचना हुई। वैसे यह कहना भी गलत नहीं होगा कि बाल साहित्य ने हर दौर में अपने मुकाम को छुआ है और सफलता की सीढ़ी को चढ़ा है।

शुरुआती दौर के प्रौढ़ साहित्यकारों ने भी बाल साहित्य खूब लिया और बाल साहित्य को एक पहचान दी। इनकी रचनाएं आज भी उसी आकर्षण के साथ पढ़ी जाती है जैसे इन्हें पूर्व में प्यार मिलता रहा है। इन साहित्यकारों ने बाद में प्रौढ़ साहित्य की ओर अपना रुझान कर लिया जो बाल साहित्य के लिए सही नहीं था।

यदि वर्तमान समय की बात करें तो आज बाल साहित्य खूब लिखा-पढ़ा जा रहा है। पहले विद्यार्थी बाल साहित्य को अपने शोध का विषय बनाने से डरते थे। उन्हें इस बात की चिंता हनेशा बनी रहती थी कि उन्हें बाल साहित्य भरपूर मात्रा में नहीं मिल पाएगा। लेकिन आज हालात बदले हुए हैं। आज बाल साहित्य को बहुत से विद्यार्थी अपने शोध का विषय चुन रहे हैं। बाल साहित्य की आज कमी नहीं रही है। इस बात की पुष्टि इस बात से स्वत: ही हो जाती है कि देश के बहुत से विश्वविद्यालय बाल साहित्य की महत्ता को समझते हुए इस पर शोध कार्य करवा रहे हैं। इनमें कानपुर विश्वविद्यालय (कानपुर), जीबाजी विश्वविद्यालय (ग्वालियर), आगरा विश्वविद्यालय (आगरा), भोपाल विश्वविद्यालय (भोपाल), सत गाडगे बाबा विश्वविद्यालय (अमरावती), शिवाजी विश्वविद्यालय (महाराष्ट्र), शांति निकेतन विश्वविद्यालय (पश्चिम बंगाल), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (कुरुक्षेत्र), पंजाब विश्वविद्यालय (पंजाब) आदि प्रमुख हैं। देश के मशहूर बाल साहित्यकार डॉ० परशुराम शुक्ल जी के अनुसार अब तक 100 से ज्यादा शोध कार्य बाल साहित्यिक कृतियों पर हो चुके हैं और लगभग 50 पर वर्तमान में कार्य जारी है। यदि एम. फिल को भी इसमें जोड़ दिया जाए तो यह गिनती बहुत आगे तक चली जाती है। उपरोक्त आंकड़े इस बात की गवाही

दे रहे हैं कि आज बाल साहित्य भरपूर है। बस, हमें दो कदम इसकी तरफ बढ़ाने की आवश्यकता है, हमें यह हर जगह उपलब्ध हो जाएगा। इसे आप चाहें तो नैट में सर्च करके प्राप्त कर सकते हैं या किसी पुस्तकालय में खोज सकते हैं या फिर किसी प्रकाशक से यह मंगवाया जा सकता है। आज ई-मीडिया बहुत प्रभावी ढंग से कार्य कर रहा है। हम इसके इस्तेमाल से बाल साहित्य ही हर सामग्री को तुरंत मंगवाकर अपनी इच्छापूर्ति कर सकते हैं।

आज का बाल साहित्य कई विविधताओं से भरा पड़ा है। आज के बाल साहित्य में जहां परियों, राजा-रानी, पशु-पक्षियों की कहानियां सम्मिलित हैं वहीं इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आज के वर्तमान समय के यथार्थ को प्रस्तुत करती कहानियां बखूबी पढ़ी जा सकती हैं। कई पत्रिकाएं परी कथाओं, भूत-प्रेत, राजा-रानी की कथाओं को सिरे से नकारती नज़र आती हैं। वे इन कहानियों को बच्चों को यथार्थ से दूर ले जाने का इलज़ाम जड़ती है। लेकिन सुप्रसिद्ध लेखिका पुष्पा भारती ने अपने एक आलेख में इस बात को कुछ इस तरह से ब्यान किया है। उनके अनुसार कुछ वर्ष पहले समाजशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों और शिक्षकों के सम्मेलन में यह बात सामने आई कि बच्चों को पूरी कथाएं आदि सुनाई जाती हैं। हाथी, भालू, शेर, खरगोश आदि की कहानियां उनके लिए लिखी जाती हैं, वे सब बेकार हैं। ये कहानियां, बच्चों के जेहन को कुंद बनाती हैं। आज विज्ञान का युग है और बच्चा जानता है कि चांद में कोई बुढ़िया बैठी चरखा नहीं कातती और परी या राक्षस जैसी कोई चीज नहीं है। बच्चा जानता है कि आसमान में कोई स्वर्ग नहीं होता, वहां कोई भगवान नहीं है, देवता नहीं है। ऐसे काल्पनिक साहित्य से बच्चे बोर होते हैं। उनकी सामाजिक चेतना कुंठित होती है, वे झूठ के साथी बनने लगते हैं, बगैरह-बगैरह कई तर्क दिए गए। इन लोगों के सुझाव थे कि बच्चों को परी कथाओं की जगह वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित कहानियां लिखकर बदलते सामाजिक परिवेश के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

लेकिन लेखिका इन सब बातों से सहमत नहीं होती। वे कहती है इस तरह की कोशिशें बच्चों के दिमाग पर जबरदस्ती प्रौढ़ प्रवृत्ति लादने जैसा काम हो जाता है। अभी कुछ समय पहले के शोध कार्य के दौरान वैज्ञानिकों को इस बात का पता चला कि बच्चे कंप्यूटर, टेलीविजन या वीडियो पर जो तथाकथित वैज्ञानिक कहानियां देखते हैं, उनसे उनके दिमाग का केवल वही हिस्सा प्रभावित होता है जो वह सामने के दृश्य जगत को देख पाता है और मूवमैंट को समझ पाता है। बस, इन्हें निरंतर देखते रहने से दिमाग के बाकी हिस्से कुंद पड़ने लगते हैं। इन वैज्ञानिकों का यह निष्कर्ष था कि टेलिविजन या फिल्म देखने के बजाय काल्पनिक कहानियां सुनकर बच्चों के मस्तिष्क के सामने का वह हिस्सा प्रभावित होता है, जिसके स्पंदन से बच्चे के व्यवहार का निर्माण होता है, बच्चे में इमोशन और भावना निर्मित होती है और संवेदनशीलता आती है। कल्पनाशक्ति बढ़ने के साथ-साथ उसका दिमाग भी तेज़ होता जाता है। यहां आज दोनों तरह के हिस्सों की सख्त जरूरत है। ताकि बच्चा यथार्थ में रहकर अपनी

कल्पनाशक्ति से भी लबरेज रह सके और उसके संस्कार, व्यवहार में भी आत्मीयता बनी रह सके।

चित्र कथाएं बच्चों को बहुत आकर्षित करती हैं। आज लगभग सभी पत्र-पत्रिकाएं इन चित्र कथाओं को नियमित प्रकाशित कर रही हैं ताकि बच्चों का पत्रिका के प्रति आकर्षण बना रह सके। इन पत्र-पत्रिकाओं में इसके अलावा बच्चों को बहुत-सी चीजें सीखने के लिए सामग्री दी जाती है। जिसमें बिंदु से बिंदु मिलाओ, रंग भरो, पज़ल, अल्फाबेट गेम, माथा पच्ची, वर्ग पहेली, गणित पहेली, विश्व की बहुत सारी जानकारी और अन्य प्रकार की बहुउपयोगी सामग्री दी जाती है। इस तरह की जानकारी बच्चों के सर्वांगीण विकास में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है।

बच्चों के लिए लिखी जाने वाली और सुनाई जाने वाली कहानियों से हम उनके भविष्य की मजबूत नींव बना सकते हैं। यह कार्य हमें बहुत अहतियात से करना होगा। इसी सावधानी से हमें भविष्य में अच्छे नागरिकों का निर्माण करने में मदद मिलती है। आज विज्ञान का युग है। बच्चों के नन्हें-नन्हें विश्वासों और काल्पनिक जगत से जोड़कर उन्हें सामाजिक और वैज्ञानिक जानकारी देनी होगी तभी उसे वे आत्मसात कर सही मार्ग पर आगे बढ़ सकेंगे।

यदि जम्मू-कश्मीर के बाल साहित्य की बात करें तो स्थानीय साहित्यकारों से मिली जानकारी के अनुसार यहां वर्ष 1962-63 के आसपास हिन्दी की 'रत्न' पत्रिका तथा 1964-65 के नजदीक हिन्दी और उर्दू की पत्रिका 'उस्ताद' में बाल साहित्य का समावेश था। इसका मतलब साफ है कि यहां आज़ादी के बाद बाल साहित्य लिखा जाने लगा था। डोगरी की पत्रिका 'जोत' का शुभारंभ 1987 में किया गया लेकिन 1996 में इसका प्रकाशन भी बंद हो गया। इस पत्रिका ने भी बाल साहित्य को खूब स्थान दिया। कुछ समय से जम्मू-कश्मीर अकादमी की पत्रिका 'शीराज़ा' (हिन्दी) बाल साहित्य को प्रौढ़ साहित्य के साथ-साथ कुछ पन्ने देकर प्रकाशित कर रही है। वर्ष 2015 में 'शीराज़ा' हिन्दी का बाल विशेषांक यहां अवश्य ही बाल साहित्य के सुनहरे भविष्य की ओर इशारा करता है। शीराज़ा की बाल विशेषांक की इस शुरुआत को पूरे भारत भर में सराहा गया। 'योजना' पत्रिका में छिटपुट बाल साहित्य परक रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। मिली जानकारी के अनुसार जम्मू-कश्मीर के बाल साहित्यकारों में शकुंतला सेठ, शिवदेव मन्हास, कृष्णा गुप्ता, ओम गोस्वामी, पी०एल० परिहार ज्ञानेश्वर, निर्मल विनोद, श्यामदत्त पराग, बलनील देवम, विजय शर्मा, योगेन्द्र पाल, छत्रपाल, शीतल शर्मा, मनोज हीर, अशोक खजूरिया, मोहन सिंह, नरसिंह देव जम्वाल, नरेश कुमार उदास आदि का नाम लिया जा सकता है। इन बाल साहित्यकारों ने बाल कविता, बाल गीत, बाल कहानी में मुख्यत: अपना योगदान दिया है। यहां हिन्दी बाल साहित्य बहुत कम लिखा जा रहा है जो चिंता का विषय है। यहां हिन्दी बाल साहित्य की नींव को मजबूती प्रदान करने की बेहद आवश्यकता है ताकि बाल साहित्य सृजन में शामिल प्रतिभाएं खुद को बाल

साहित्य लेखन में मजबूती के साथ जोड़ पाएं और बाल साहित्य के राष्ट्रीय परिदृश्य में अपनी धाक जमा सकें।

पिछले कुछ एक वर्षों में बाल साहित्य को घर-घर तक पहुँचाने वाली कई बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो चुका है। जो निश्चय ही बाल साहित्य और बाल साहित्यकारों के लिए अच्छी खबर नहीं है। लेकिन बावजूद इसके आज भी बहुत सारी पत्र-पत्रिकाएं बाल साहित्य को सहर्ष प्रकाशित कर रही हैं। वर्तमान में नंदन, बालहंस, बाल भारती, चंपक, चकमक, बालवाटिका, बालप्रहरी, नन्हें सम्राट, बच्चों का देश, बालवाणी, देवपुत्र, अक्कड़-बक्कड़, टिंकल, बाल लेखनी, बाल प्रभात, अभिनव बालमन, स्नेह, लोट पोट, हंसती दुनिया, कोंपल, रीडर्स क्लब बुलेटिन, पुष्पवाटिका, अपूर्व उड़ान आदि ऐसी बहुत-सी पत्रिकाएं हैं जो पूर्णतय: बाल साहित्य को समर्पित हैं। किशोरों की पत्रिका सुमन सौरभ को भी हम यहां शामिल कर सकते हैं। इसके अलावा बाल साहित्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रौढ़ साहित्यिक पत्रिकाओं ने भी बाल साहित्य की महत्ता को समझते हुए इसे अपनी पत्रिकाओं में कुछ पन्ने देकर नियमित रूप से प्रकाशित करने की जिम्मेवारी उठाई है। यह इस बात का प्रमाण है कि अब बाल साहित्य ने अपनी जड़ें मजबूती से जमा ली हैं। ऐसी पत्रिकाओं में साहित्य अमृत, शीराज़ा, अंतिम जन, कर्त्तव्य चक्र, समावर्तन, सोमसी, परिंदे, साहित्य समीर, समाज धर्म, सत्यदर्शन जैसे पत्रिकाओं का नाम लिया जा सकता है। अभी हाल ही में पिछले वर्ष जम्मू-कश्मीर अकादमी की पत्रिका 'शीराज़ा' तथा इस वर्ष की शुरुआत में हिमाचल प्रदेश सूचना एवं जनसंपर्क विभाग की पत्रिका का बाल विशेषांक प्रकाशित हुआ है जो बाल साहित्य के विकास की गवाही देते हैं। इसके अलावा आजकल, मधुमती, साहित्य अमृत, नया ज्ञानोदय, नवनीत, कादंबिनी, हरिगंधा, समकालीन भारतीय साहित्य, शब्द सामयिकी, राष्ट्र समर्पण, साहित्य समीर, साहित्यांचल, सार समीक्षा आदि ऐसी पत्रिकाएं हैं जो वर्ष में एक अंक बाल साहित्य पर निकाल रही है। बहुत-सी ऐसी पत्रिकाएं और भी हैं जो बाल साहित्य विशेषांक निकालने की योजना पर गंभीरता से कार्य कर रही हैं। यह बाल साहित्य और बाल साहित्यकार दोनों के लिए बहुत ही शुभ संकेत है। इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्र भी बच्चों के लिए हर सप्ताह या पाक्षिक अंतराल में बच्चों की सामग्री लेकर आते हैं। इनमें जनसत्ता, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक भास्कर (बाल भास्कर), दैनिक हरिभूमि (बाल भूमि), मध्य प्रदेश जनसंदेश (बालरंग), प्रभात खबर (बाल प्रभात), गिरिराज, नेशनल दुनिया, जनसत्ता, अमर उजाला, दैनिक जागरण, राष्ट्रीय सहारा, राजस्थान पत्रिका, नई दुनिया, पंजाब केसरी, अजीत समाचार, वीर प्रताप, दिव्य हिमाचल, दैनिक न्याय सेतू, हिमाचल दस्तक, आपका फैसला, डेली मिलाप, नवभारत टाइम्स, आज, दैनिक नवज्योति, जनवाणी हिन्दुस्तान आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। वैब पत्रिकाएं भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रही हैं। वे भी बाल साहित्य को साहित्य की अन्य सामग्री के साथ सहर्ष छाप रही हैं। इनमें हस्ताक्षर, जयविजय, जनकृति आदि पत्रिकाओं का नाम लिया जा सकता है। इसके अलावा देश की प्रमुख महिला पत्रिकाएं भी

बाल साहित्य में अपना योगदान दे रही हैं। वे छोटे बच्चों से लेकर किशोरों की परवरिश, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनके विकास आदि विषयों पर बहुत अच्छी व शोधात्मक सामग्री लेकर आती हैं। निश्चय ही यह सामग्री छोटे बच्चों की ओर अभिभावकों के नज़रिए को सकारात्मकता प्रदान करते हैं जो बच्चों के विकास, उनकी देख-रेख व उनके सुनहरे भविष्य के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है।

बेशक बाल साहित्य आज खूब लिखा जा रहा है लेकिन यह बच्चों तक सही तरीके से नहीं पहुंच पा रहा है। यह सबसे बड़ी चिंता का विषय है। बच्चों तक बाल साहित्य को पहुँचाने के लिए हमें और ज्यादा प्रयासों की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षक भी यदि सहयोग दें तो कार्य आसान हो जाएगा। शिक्षक स्कूलों के लिए दी जाने वाली विभिन्न ग्रांटों के जरिए भी इस कार्य में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर सकते हैं। ग्रांट के कुछ हिस्से से दूर पार, कठिन व दुर्गम इलाके के स्कूलों के बच्चों के लिए बाल साहित्य की विभिन्न पत्रिकाओं को लगाकर उन्हें इनका पाठक बनाया जा सकता है। देशभर में बहुत सारे ऐसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो बच्चों में बाल साहित्य को पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। लेकिन यह सरकारी स्तर पर कम ही दिखाई देते हैं। बाल प्रहरी पत्रिका तथा अभिनव बालमन की पूरी टीम बच्चों में बाल साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए पूरी तन्मयता के साथ लगी हुई है। वे हर वर्ष छोटे बच्चों की ऐसी कार्यशालाओं का आयोजन कर उन्हें कविता, कहानी, चित्रकला आदि के माध्यम से बाल साहित्य के विकास में अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं। इसके साथ ही 'दिवार पत्रिका' का चलन बढ़ रहा है जिसके अंतर्गत विद्यालय में पढ़ रहे बच्चे अपनी लिखी गई रचना या चित्र आदि को बड़े-बड़े चार्टों में चिपकाकर, उसे सही तरीके से सजाकर दीवार पर टांग देते हैं। जिसे पूरे विद्यालय के बच्चे आते-जाते रोज पढ़ते हैं। इस वजह से अन्य बच्चों में जहां लिखने व पढ़ने की एक आदत विकसित होती है वहीं उनमें बाल साहित्य के प्रति रुचि भी जागृत होती है।

इसके अलावा देश में आज बहुत से युवा व प्रौढ़ साहित्यकार हैं जो बाल साहित्य की हर विधा की रचना में तन्मयता के साथ लगे हैं और इसके विकास में अपना योगदान जारी रखे हुए हैं। यदि हम बाल साहित्य के पूर्व काल में नज़र डालें तो हमें इस बात की जानकारी मिल जाती है कि बाल साहित्य इसके प्रारंभ काल में काफी उपेक्षा का शिकार भी रहा है। लेकिन फिर धीरे-धीरे सबके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और हर भारतीय भाषा में इसकी जरूरत महसूस की जाने लगी। बाल साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट' ने बच्चों के लिए हिन्दी, असमिया, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, तमिल, मराठी, मलयालम, कन्नड़ व तेलगू आदि भाषाओं में सचित्र पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो एक सराहनीय कदम है। कहा जा सकता है कि बाल साहित्य को लेकर आज गंभीर चिंतन और विमर्श का सिलसिला शुरू हो चुका है। यहां एक बात बताना मैं जरूरी समझता हूँ

कि हमारे बहुत से ऐसे नामी प्रौढ़ साहित्यकार हैं जिन्होंने बाल साहित्य को रचा है लेकिन वह उनकी डायरियों के पन्नों में ही बंद होकर रह गया है। उन्हें इस बात का डर है कि कहीं यह दुनिया के सामने आ गया तो अन्य प्रौढ़ साहित्यकार उन्हें बाल साहित्यकार का ठप्पा लगा देंगे। जो वे नहीं चाहते। पता नहीं वे बाल साहित्य के लिए इतना हल्का क्यों सोचते हैं ?

यूं बाल साहित्य के हमारे प्राचीन स्त्रोत मुख्यतः भारतीय महाकाव्य, प्राचीन लोककथाएं, पौराणिक कथाएं आदि रही हैं। इसके साथ ही पंचतंत्र, कथा सरित सागर जैसे प्राचीन कथा साहित्य बाल साहित्य की रीढ़ की हड्डी हैं। आज मुख्यतः इस बात पर चिंता जताई जा रही है कि मल्टीमीडिया जिस तरह से बच्चों के ऊपर हावी हो चुका है। वह बच्चों का बचपन गुम करता जा रहा है। बच्चा मल्टीमीडिया के इन तमाम तंत्रों जैसे कम्प्यूटर, लैपटाप, स्मार्टफोन आदि से बाहर ही नहीं निकल पा रहा है। वह वही देख रहा है जो उसे दिखाया जा रहा है। उसकी सोच पर मल्टीमीडिया पूरी तरह से हावी हो चुका है। बहुत से ऐसे कार्टून चैनल हैं जहां बच्चों को बच्चों की सामग्री परोसी जा रही है। वह वैज्ञनिक दृष्टिकोण तो लिए हुए है लेकिन वह हमेशा लड़ाई-झगड़े, गुंडागर्दी, आतंकवाद आदि तमाम ऐसे विचारों से गुज़रते हैं जो बच्चों में प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। यही कारण है कि इससे बच्चों की जीवन शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा है और यह बच्चों को हिंसक और आक्रामक बना रहा है।

आज बेशक, इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि बच्चों में वैज्ञानिक सोच जागृत हो सके लेकिन यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह सोच उन्हें अपराध की ओर न धकेलकर उनमें अच्छे संस्कारों का विकास कर पाए। तभी बाल साहित्यकारों का बच्चों के लिए लिखना सार्थक सिद्ध हो पाएगा और वे एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए बीज बो सकेंगे।

संदर्भ

(अ) दिविक रमेश जी की पुस्तक ***'हिन्दी बाल साहित्य-कुछ पड़ाव'*** *के पढ़ते हुए।*

(ब) 'आजकल' पत्रिका में पुष्पा भारती जी के आलेख को पढ़ते हुए।

*

जम्मू कश्मीर का हिन्दी रंगमंच

❑ बन्दना ठाकुर*
(पी०एच०डी)

जम्मू कश्मीर जैसे हिन्दीत्तर राज्य में हिन्दी नाटक और रंगमंच का एक लम्बा इतिहास रहा है। सम्पूर्ण भारत की भांति यहां भी हिन्दी नाटकों के मंचन से पहले लोक-नाटकों की ऐतिहासिक परम्परा रही है। भांड-पाथर, जागरण, भगतां, हरण, रास लीला, रामलीला का यहां खूब प्रचलन रहा है क्योंकि इन लोकनाटकों के लिए किसी विशेष रंगमंच या अधिक साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं होती थी। खुले मैदानों तथा चौराहों पर कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन कर लोगों का ध्यान आकर्षित करते आए हैं। इन लोक-नाटकों का सम्बन्ध यहां के लोक जीवन लोगों की रुचि तथा संवेदना से रहा है।

जम्मू-कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल में 'रघुनाथ नाट्य कम्पनी' की स्थापना हुई और यह नाट्य-संस्था महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में सक्रिय हुई। यहां तक कि महाराजा हरिसिंह के मुंडन संस्कार पर मुम्बई की पारसी रंग कम्पनी विक्टोरिया को राजा ने यहां बुलाया था। जम्मू के मुबारक मण्डी के ग्रीन हाल में कई दिन नाटकों का प्रदर्शन होता रहा। इन पारसी नाटकों से प्रभावित होकर यहां ऐमेच्योर थियेटर ग्रुप की स्थापना हुई। जिसने 'चन्द्रावली' 'जानकी मंगल' 'भीष्म प्रतिज्ञा' आदि नाटकों का मंचन किया। यही नहीं पारसी रंगमंच के प्रभाव स्वरूप अनेक रंगमंचीय क्लबों की स्थापना हुई जिन्होंने आगा हश्र कश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक के अनेक नाटकों का मंचन किया। धीरे-धीरे रंगकर्मियों की संख्या बढ़ती गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व देशप्रेम की भावना जगाने के लिए 'इप्टा' ने भी कई नाटकों का यहां मंचन किया। '1952' में 'कश्मीर हमारा है' सुधार समिति के कलाकारों ने खेला। लगभग सौ प्रस्तुतियां इस नाष्टक की हैं। 1958 में जम्मू-कश्मीर अकादमी की स्थापना ने इस क्षेत्र में क्रांति ला दी। यहां के रंगमंच को समृद्ध बनाने में नाट्य निर्देशकों, रंगकर्मियों, नाटककारों नाट्य संस्थाओं तथा अन्य शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी प्रदेश के तीनों हिस्सों (जम्मू कश्मीर व लद्दाख) मे भाषा संस्कृति और कलाओं को समृद्ध बनाने में लगी हुई है। जम्मू को छोड़कर प्रदेश के बाकी दो हिस्सों में हिन्दी नाटक और रंगमंच की स्थिति अच्छी नहीं है। कश्मीर

में 1970-80 का दशक हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिए सुनहरा रहा है। इस दौर में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के हिन्दी में रूपान्तरित तथा अनुदित महत्वपूर्ण नाटक मंचित होते रहे हैं जैसे रक्तबीज, सन्तोला, नदी प्यासी थी, जुलूस, खामोश अदालत जारी है, एक और द्रोणाचार्य, 'हत्या एक आकार की' 'रजनी गंधा', 'कोणार्क', 'पागल कौन', बाकी 'इतिहास' तथा गॉदो के इन्तजार में आदि नाटकों के सफल प्रदर्शन हुए हैं। कश्मीर का रंगमंच जो बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था 1989 में विस्थापन तथा आतंकवाद की दहशत के कारण थम सा गया। पिछले कई वर्षों से यहां हिन्दी नाटक और रंगमंच ना के बराबर है। ऐसा नहीं है कि कश्मीर में नाट्य मण्डलियों या निर्देशकों की कमी है यहां आज भी ऐय्याश आरिफ, अशोक जेलखानी तथा मुश्ताक अली अहमद खां जैसे प्रसिद्ध निर्देशक हैं जो रंगमंच को आगे बढ़ाने में प्रयासरत हैं। वर्तमान की यदि बात करें तो यह सुखद समाचार है कि कश्मीर में टैगोर हाल दुबारा खुल जाने से यहां के रंगमंच में फिर से गतिशीलता आई है।

लद्दाख में महीपम उत्सल जैसे 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' से प्रशिक्षित नाट्य-निर्देशक हैं, अकादमी की एक शाखा यहां सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए प्रयासरत है किन्तु हिन्दी नाटक यहां कोई नहीं खेला गया। ऐसा भी नहीं है कि यहां के लोग हिन्दी भाषा बोलना या समझना नहीं चाहते। हिन्दी यहां सम्पर्क भाषा के रूप में विद्यमान है। फिर भी हिन्दी नाटकों का मंचन यहां नहीं हो पाता। सम्भवत: यहां का मौसम भी इसके लिए एक बाधा हो सकती है।

इनकी तुलना में जम्मू का हिन्दी रंगमंच अधिक सक्रिय और समृद्ध है। जम्मू-कश्मीर, कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी द्वारा प्रत्येक वर्ष नाट्य समारोह आयोजित किए जाते हैं जिसमें यहां की नाट्य संस्थाएं भाग लेती हैं। यहां बहुत से राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रंगकर्मी, नाट्य निर्देशक जैसे कविरत्न, मोतीलाल क्यमू, बलवन्त ठाकुर, मुश्ताक काक, कुमार अ. भारती, तपेश्वर दत्ता, दीपक कुमार, सुधीर महाजन, संजय कपिल, विजय मल्ला, विक्रम शर्मा, बलजीत सिंह रैणा, इफरा काक, सुमित शर्मा, अभिषेक भारती सक्रिय हैं। अधिकतर रंगकर्मी किसी न किसी नाट्य मण्डली तथा नाट्य-संस्था से जुड़े हुए हैं-बहुरंगी नाट्य संस्था, नटरंग, आमेच्युर थियेटर ग्रुप, रंगयुग, नटराज नाट्य कुंज, थियेटर मित्रा, शिवानी कल्चरल सोसाइटी, समूह नाट्य-संस्था, रंगशाला, दा परफार्मर, अजेका, रूपवानी कलामन्दिर पचेन थियेटर, विराट कल्चरल सोसाइटी, रंगोली, प्रोडक्शन दा रिफ्लैक्स प्रतिभा आदि।

नाट्य संस्था 'बहुरंगी' के संस्थापक एन.एस.डी. प्रशिक्षित कविरत्न ने अनेक लोकप्रिय हिन्दी नाटकों का मंचन किया है जिनमें 'खामोश अदालत जारी है' 'आधे-अधूरे' 'पंछी ऐसे आते हैं', पगला घोड़ा स्पार्टकस 'कागज की दीवार, थैंक्यू मिस्टर गलाड, भूखे भजन न होए' शुतुर्मुग आदि प्रमुख हैं। मोतीलाल क्यमू ने स्वतन्त्र रूप से नाटकों का निर्देशन किया है उनके द्वारा निर्देशित हिन्दी नाटक हैं-आधे अधूरे, डाकघर, द्रोपती चीरहरण, नगर उदास, शाप आदि। इसके अतिरिक्त इन्होंने लोकनाट्य 'भाड पाथर' शैली में भी नाटक मंचित किए हैं।

नटरंग द्वारा मंचित हिन्दी नाटक इस प्रकार है– 'फंदी', 'पोस्टर', 'रक्तबीज', 'नीली झील', 'सिंहासन खाली है', 'चरणदास चोर', 'कबीरा खड़ा बाज़ार में', 'एक था गधा', 'अंधों का हाथी', 'सईया भयै कोतवाल' 'नींद क्यों रातभर नहीं आती', 'मरणोपरान्त' आदि। आमेच्युर थियेटर ग्रुप प्रयोगधर्मी कलाकारों का है। जिन्होंने बहुत से चर्चित हिन्दी नाटक किए हैं–अंत हाज़िर हो, बकरी, प्रतिबिम्ब, एक ओर दुर्घटना, लोटन, धुंध के घेरे, दो कोड़ी का खेल, आधी रात के बाद, अंधेर नगरी, राजा, अंधा युग आदि।

रंगयुग नाट्य संस्था के दीपक कुमार द्वारा मंचित प्रमुख हिन्दी नाटक हैं–आधे-अधूरे, आषाढ़ का एक दिन, पोस्टर, रक्तबीज, एक था गधा, मरणोपरान्त आदि। रंगयुग के संस्थापक दीपक कुमार ने जम्मू में पहली बार 'इन्टीमेट थियेटर' की शरुआत की थी। जिसमें दर्शकों को मंच पर ही बिठा दिया जाता है ताकि वे कलाकारों की हर हरकत को करीब से देख सकें। 'नटराज नाट्य कुंज' के कुमार भारती ने 'पासपोर्ट' 'कबीरा खड़ा बाज़ार में', गुडबाय स्वामी, इन्सानियत, 'फंदी' तथा 'अंत हाज़िर हो', आदि नाटकों का मंचन किया।

सुधीर महाजन की समूह नाट्य संस्था ने 'भारत दुर्दशा' अंधेर नगरी, डाकघर, सिंहासन खाली है, अंधा युग, बाकी इतिहास, तीसवीं शताब्दी आदि नाटकों का मंचन किया।

यहां के रंगमंच को आगे बढ़ाने में थियेटर मित्रा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। संजय कपिल के निर्देशन में इस संस्था द्वारा मंचित नाटक हैं। 'ताजमहल का टेंडर', 'सखा राम बाइंडर' 'राजा नंगा', 'चौराहा', 'बाढ़ का पानी', और राक्षस आदि। शिवानी कल्चरल सोसाइटी द्वारा मंचित नाटक हैं, 'महासागर', एक ओर द्रोणाचार्य, अंत नहीं, एक सपने की मौत, कलिगुल्ला आदि। रंगमंच की गतिशीलता को बनाए रखने में उक्त सभी संस्थाओं का प्रयास सरहानीय है। कुछेक निर्देशकों की नाट्यसंस्थाओं के प्रदर्शनों में उनके बंधे बधाये दर्शक ही बिराजमान होते हैं। कोई एक विशेष अधिकारी मुख्य अतिथि के रूप में मौजूद रहता है। नाटक एक सामाजिक विधा है उस मंचन का भी रसास्वाद नहीं लिया जा सकता है।

जम्मू में अभिनव थियेटर के फिर से खुल जाने से यहां के कलाकारों में उत्साह का पुनः संचार हुआ है। हाल ही में आयोजित 18वें भारत रंग महोत्सव में अमेरिका, इटली, रवांडा तथा श्रीलंका के रंगमंच समूहों के कलाकारों ने स्थानीय कलाकारों के साथ प्रदर्शन किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्थानीय कलाकारों को अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों के साथ काम करने के लिए मंच प्रदान करना था। जम्मू-कश्मीर में नाटककार तथा निर्देशक दोनों की नाटक को लेकर अवधारणाएं अलग-अलग हैं। कुछ एक वरिष्ठ निर्देशकों का यह मानना है कि यहां के हिन्दी नाटककारों में मौलिकता की कमी है और ऐसे नाटक रंगमंच की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते जो केवल पाठक को ध्यान में रखकर लिखे गए हों। कुछ रंगकर्मी तो यहां तक कहते हैं कि स्थानीय नाटकों का स्तर ही नहीं है इसलिए स्तही नाटकों का

मंचन हम नहीं कर पाते। उन्हें नाट्य रूपान्तरों, अनूदित नाटकों तथा विदेशी भाषाओं के नाटक लेने पड़ते हैं। उनकी इस सोच के लिए हम यही कह सकते हैं कि जयशंकर प्रसाद के नाटक रंगमंच को ध्यान में रखकर तो नहीं लिखे गये थे। बहुत कठिन मंचीय व्यवस्था के बावजूद ब.ब कारन्त ने उनकी कई-कई प्रस्तुतियां की हैं। कुछ कांट-छांट के बाद अन्य कई निर्देशकों ने भी उन्हें खेला है। अत: बिना प्रयास के यह मत बना लेना कहां तक उचित है कि यहां के हिन्दी नाटक स्तरीय नहीं है।

हिन्दी शीराज़ा के विभिन्न अंकों तथा विशेषांकों में छपे नाटकों के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कुछ नाट्य संग्रहों का भी पत्र में मूल्यांकन किया गया है।

(जम्मू-कश्मीर के नाटककार हिन्दी प्रदेश के नाटककारों की तरह आकर्षक, प्रासंगिक या सम्भावनापूर्ण नाट्कीय विचार-विवेचन में अधिक सक्षम तो नहीं हैं पर वे यहां के हिन्दी नाटक और रंगमंच को समृद्ध बनाने का प्रयास अवश्य कर रहे हैं और भारतीय सामाजिक संदर्भों को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति देने में सामर्थ्य का परिचय देने में लगे हुए हैं।)

नाटककारों ने समाज की प्रत्येक समस्या जैसे–पारिवारिक विघटन, स्त्री-शोषण, दलित-शोषण, वैयक्तिक स्वार्थ से प्रेरित सम्बन्धों में बिखराव की स्थिति, राजनीति और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की नीतियों से अवगत कराने का यथासम्भव प्रयास किया है।

स्वार्थ प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्ति, अर्थ की अंधी दौड़ में लगे माता-पिता, नारी चेतना, वैवाहिक जीवन में बढ़ती घुटन और दूरी, गरीबी, अंधविश्वास आदि को ओम गोस्वामी के 'सफेद चील', 'जीवन और संघर्ष', 'अंधेर नगरी का जालिम गरीब', डॉ० सुधीर महाजन के 'बेटी नहीं चाहिए', वो जो खो गया, अनन्या, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम के 'हां पिता जी' धुंध के घेरे, आदि नाटकों में देखा जा सकता है।

मीराकांत का 'कागजी बुर्ज', गोरी शंकर रैणा का 'पाताल केतु' तथा ओम गोस्वामी का 'परिंदे एक पेड़ के' में विश्व में फैले आतंकवाद का सांकेतिक चित्रण तो है ही साथ ही मानवीय रिश्तों में भाईचारे का संदेश देने का प्रयास किया गया है।

मोतीलाल क्यमू का 'दर्पण अन्त:पुर का', 'संध्या बीती तथा नंगे', छत्रपाल का 'तैराक', वरुण सुथरा का 'रास्ते ओर भी हैं' आनन्दम के 'मगर यह सच है', 'ताकन लागे काग', 'पागल', 'हां पिता जी', 'एक मुट्ठी धूप' आदि नाटकों में स्वहित में लगी संस्थाओं की पोल खोली गई है।। फिल्म इंडस्ट्री के ग्लैमर के पीछे छिपी हैवानियत को सुधीर महाजन के 'प्रकाश रोमियों' में दिखाया गया है। साथ ही इन नाटककारों ने समाज के हाशिये पर फैंके गये दलितों, शारीरिक तथा मानसिक रूप से असामान्य व्यक्ति की पीड़ा को भी उजागर किया है। इस संदर्भ में बलजीत सिंह रैणा का नाटक 'एक दलित प्रेम कथा' रजनीश के

'कठपुतलियां', 'प्रश्न चिन्ह' तथा वरुण सुथरा के 'हम ऐसे क्यों हैं' आदि नाटकों में देख सकते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि यहां के हिन्दी नाटकों के कथ्य प्रभावी हैं किन्तु वर्तमान की अनेक ज्वलन्त समस्याएं जिनके कारण यह राज्य प्रभावित हुआ है वे नाटकों में दिखाई नहीं देती। विभाजन का दंश इस राज्य ने झेला और आज भी आजादी के लगभग सत्तर वर्षों के बाद भी उस दंश की पीड़ा हर घड़ी यहां के लोग झेलते हैं इस पर नाटककारों की दृष्टि नहीं गई। आतंकवाद तथा विस्थापन का मुद्दा भी मुख्य रूप से दिखाई नहीं देता जबकि ये ऐसी समस्याएं हैं जो मंच प्रस्तुति के कारण अधिक प्रभावी साबित हो सकती हैं।

एक विडम्बना यह भी है कि यहां के निर्देशकों का स्थानीय नाटककारों के साथ रिश्ता सहज नहीं हो पाया है। अच्छे, स्तरीय मंचनीय, संरचनात्मक संवाद की भी यहां बड़ी आवश्यकता है जिसका यहां अभाव देखा गया है। नाट्य लेखन के स्तर को बढ़ाने की भी आवश्यकता महसूस होती है।

नाट्य संस्थाओं के निर्देशकों को भी सरकारी सहायता मिलनी चाहिए क्योंकि बहुत सी ऐसी नाट्य संस्थाएं हैं जो नाट्य मंचन तो करना चाहती हैं लेकिन आर्थिक स्थिति कमज़ोर होने के कारण वर्ष में केवल एक ही नाटक कर पाती हैं। टिकट प्रणाली नहीं होने के कारण भी संस्थाएं अधिक मंचन नहीं करतीं।

कुछेक निर्देशकों ने टिकट सिस्टम की अनिवार्यता भी बताई क्योंकि नाटक प्रेमी दर्शक इस विधा की जीवन्तता को समझते हैं अत: वे जरूर आएंगे। यदि नाट्यकला का सही प्रयोग किया जाए तो मीडिया के तकनीकी सौन्दर्य के बावजूद रंगमंच की क्षमता स्वत: सिद्ध हो जाएगी। नाटक की जीवन्तता के समक्ष मीडिया का आकर्षण बेजान अनुभव साबित होगा ऐसा हमारा मानना है।

*

अध्यक्षीय मंडल

सतीश विमल :-

बंदना ठाकुर और पवन चौहान जी का बहुत-बहुत शुक्रिया कि उन्होंने बहुत अच्छे पेपर लिखे। आजकल एक रिवाज सा हो गया है पत्र में नाम गिनाने का। एक से लेकर अंत तक नाम गिनते जाएं और पत्र हो गया। क्योंकि शोध की जो चीजें हैं, शोध के जो ऐलीमेंटस हैं, हम अगर भरतमुनि को देखें उन्होंने नाट्यशास्त्र लिखा था कई शताब्दियों पूर्व। उनका लिखने का तरीका जो शताब्दियों पूर्व था वो आज तक हमें सलीका नहीं दिखा कि हम कैसे बात करें। जब हम शोध पत्र लिखते हैं, किसी भी भारतीय भाषा में क्योंकि दो तीन भाषाओं के साथ मैं भी जुड़ा हुआ हूँ। राष्ट्रीय स्तर पर घूमते रहते हैं जहां पर कई भाषाओं का एक साथ festival होता है। तो इसी तरह के पत्र हर जगह पेश किये जाते हैं। समीक्षा या आलोचना का तो सवाल ही पैदा नहीं होता है। और वही शब्द जो आज से पच्चीस साल पहले, या तीस साल पहले नामवर सिंह ने नरेंद्र मोहन जी के बारे में लिखे थे वही शब्द दूसरे तरीके से मैं शेख मुहम्मद कल्याण जी के बारे में लिख कर के फारिग हो जाऊँगा। मुझे याद आता है कि श्रीनगर में एक बार कोई आलोचनात्मक लेख रहमान राही पर लिख कर लाया तो मेरे टेबल पर रख दिया कि आप प्रसारण के लिए इसे देख लीजिये। मैंने पढ़ा और उसके बाद उसे कहा कि अगर इसमें से रहमान राही का नाम निकाल कर के अमीन कामिल का नाम डाल दिया जाए तो क्या फर्क पड़ेगा। तीन कविताओं के अंश आपने इसमें डाले हैं मैं उनके डाल दूंगा, बातें इसमें वही हैं इनमें प्रगतिशीलता है, इसमें समाज का दर्द है, वही सारी बातें हैं। हमें सलीका कोई बुनियादी, चीज परखने का जो है वो पैदा करना होगा। यह हमारे स्तर की ही बात नहीं है। यह उस शीर्ष स्तर के लिए भी मैं बेझिझक कहना चाहता हूं। इसमें कोई दो राय नहीं है। यह वहां से शुरू होगा। हम चाहते बहुत हैं, लेकिन जब करने पर आते हैं तो बड़ी सहजता से निकल जाते हैं। कश्मीर के नाटक के हवाले से बात करता हूँ, मुझे कुछ वर्ष पहले साहित्य अकादमी ने कहा कि कश्मीरी थिएटर के जो इस वक्त के World Connections या प्रभाव जो कश्मीरी थिएटर पर हैं उनपे एक लेख लिख कर दो। जो बिमारी होती है वो अपने हिसाब से ही आदमी को परेशान करती है। मैं चला गया, पीछे, पीछे, पीछे और बहुत पीछे। और वहां तक चला गया यहां तक नाटक से जुड़ा हुआ कोई व्यक्ति नहीं गया था। बहुत कुछ रहा है अभी बाकी। लेकिन मैं चला गया। जहां तक चला गया मुझे बड़ा अफसोस हुआ कि कश्मीर के थिएटर से जुड़े हुए लोगों ने जितने भी लेख या किताबें लिखी है। दर्जनों किताबें आज तक आई हैं। क्योंकि इस भारतीय साहित्य में अगर नाटक की परंपरा को देखें तो बहुत पुरानी रिवायत है कश्मीरी

नाटक की। कई किताबें लिखी गयी हैं, और सभी लेखकों ने कहा कि सताहरवीं शताब्दी से पहले कोई ऐतिहासिक संदर्भ नहीं मिलता। Directly जो थिएटर की बात करता हूँ। सब किताबों में ऐसा ही लिखा है। हैरानी होती है यह किताबें कैसे छपती हैं? और जो हमारे शोध का विस्तार है कितने छोटे तरीके से करके निकल जाते हैं। हमारे कश्मीर के लोगों ने तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी शताब्दी में नाटक लिखे जो सम्पूर्ण नाटक हैं, जो आज भी तीन-चार हमारी लाइब्रेरियों में मौजूद हैं। भाषा की बात छोड़ दीजिये और कई सारे तिब्बती ग्रंथों में नाटककर्मियों के संदर्भ मिलते हैं और उनसे जुड़ी हुई बातें मिलती हैं। कल्हण ने जो राजतरंगिनी लिखी तो उसी वक्त मंख 'Sociocultural History' लिख रहा था 'श्री कंठचरित्रम' अपने गुरु के नाम पे रखा था उसने उस किताब का नाम। उसमें करीब पच्चीस-तीस बार यह जिक्र मिलता है कि कश्मीरी थिएटर किस प्रकार खेला जाता था। पूरी कार्यप्रणाली को व्याखित किया हुआ है। एक Reference ढूंढने में हमारे नाटककारों के पास कोई टाइम ही नहीं है। वो कह रहे हैं 17वीं सदी से पहले कोई Historical Reference नहीं मिलता। यही Situation हमारी हर एक चीज में हो गयी है। जब मैं आज की कविता की समालोचना कर रहा होता हूँ। तो मैं भूल जाता हूँ कि कविता के लिए बुनियादी उसूल क्या हैं। काव्य-शास्त्र का मुझे ज्ञान ही नहीं है और मैं आलोचक हो गया हूँ और मैं समीक्षक हो गया हूं। हम हर चीज को अपने मूल से काट कर देखते हैं। वो सहज है। और वो हमारी सुविधा भी। वह हमें कहीं Place करने के लिए ठीक है। बड़ी दिक्कत होती है जब हम तुलनात्मक अध्ययन भी करते हैं। दो नाटकों का, दो कहानियों का, दो भाषाओं के लेखकों का, तो हम भूल जाते हैं कि हम उन नाटकों के सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परिवेश और पृष्ठभूमि को भी नज़र में रखें। अचानक कोई लेखक हवा में खड़ा नहीं होता। मैं कबीर और ललद्यद का तुलनात्मक अध्ययन करूं तो मैं उनके पद मौत के बारे में, ललद्यद ने क्या कहा ? कबीर ने क्या कहा ? मैं वही, Cut Paste, Cut-Paste और बच गया। हमारा Comparative Study भी इसी तरह है, हमारा Constructive Study भी इसी तरह हैं और हमारा पत्र-वाचन भी इसी तरह हो गया। मैं इन चीजों की तरफ आपका ध्यान इसलिए दिला रहा हूँ। क्योंकि हम एक Serious Literary Discourse में बैठे हैं। नयी पीढ़ी भी बैठी हुई है मैं ज्यादा बातें उनसे एक उम्मीद को लेकर कर रहा हूँ कि हमें इन चीजों पर ध्यान देना होगा। जब हम कहते हैं कि भरत ने कई शताब्दियों पूर्व कहा था कि जो साहित्य है वो हमारी प्रकृति का आइना होता है। हम देखिये कितनी तरक्की कर गये, हमने कहा, यह हमारे समाज का आइना होता है। हमने इसे और छोटा कर दिया। और फिर देखिये साहित्यकार बंधु, मैं उसमें शामिल हूँ, क्योंकि मैं अपनी पीढ़ी को ही Represent कर सकता हूँ, कहीं और से नहीं आया हूँ। और हम क्या करते हैं, यह एक बार का आइना है। यह स्त्रीवाद की लेखिका हैं, यह स्त्रीवाद का लेखक है, यह दलित साहित्य का लेखक है, यह प्रगतिशील है, यह यह है यह वो है। हम नीचे आ रहे हैं कि ऊपर जा रहे हैं। हम खुद सोच ही नहीं रहे हैं, इन मूल प्रश्नों पर।

एनतोनियो पोर्चेआ एक लेखक है जो अर्जनंटीना का है। अभी हाल ही में 15-20 साल पहले उनकी मृत्यु हो गयी और उस आदमी को अर्जनटीना सरकार ने अपना राष्ट्रीय कवि घोषित कर दिया। उस कवि ने एक कोने में एक किसान की जिंदगी गुज़ार कर साहित्य लिखा। बुनियादी तौर पर हर साहित्यकार आम चीजें ही लिखता हैं जहां से, जिस परिवेश से वह आता है वही बातें करता है। लेकिन आज उसका Translation आप भी पढ़ियेगा। बहुत छोटी-छोटी तीन-तीन पंक्तियों की कविताएं लिखता हैं एनतोनियो पोर्चेआ। आपको पता चलेगा कि परिवेश की कविता को प्रकृति की कविता कैसे बनाया जाता है। आज भी ऐसे लोग मरे नहीं हैं। पर हम क्या हैं ? हम प्रकृति को परिवेश तक लाना चाहते हैं और कहते हैं कि हम आज के जमाने के Representative हैं। साहित्यकार रोजनामचा जुबान और रोजनामचा Treatment करके कितनी देर जिंदा रहेगा ? जितनी देर परिवेश है, जितनी देर Context है। हमें इस परिवेश को प्रकृति बनाना है। हमें इस परिवेश को ऐसे स्तर पर ले जाना है, जहां पर दो Jew's एक जगह रैन बसेरे के लिए बैठे हैं, Oliver की Poem जो हर युनिवर्सिटी के सिलेबस में है India में भी पढ़ाई जाती है। दो Jew's की पीड़ा है। Context कहीं पर है लेकिन जब मैं पढ़ रहा हूँ। बिना Context के पढ़ रहा हूँ। मुझे नहीं पता यह किस परिवेश में से आए हैं, लेकिन पढ़ रहा हूँ तो आँसू खुद छलक आते हैं। साहित्य ऐसे रचा जाता है। मैंने इस संदर्भ में कल से लेकर आज तक कुछ वाक्य सुने। उन वाक्यों से यह बातें निकल रही हैं। वो यह कि यह आज के समाज का Representative नहीं है। मुझे याद है कि कुछ दिन पहले कश्मीर में Discourse हुआ था इसी बात पर। एक आदमी ने एक Key Note Address पढ़ा था एक सेमीनार में उसने कहा था बड़ा अफसोस है कि यहां पे इतने हालात खराब हैं और कोई Directly इन हालात पे नहीं लिख रहा है। यार, हम अखबार वाले नहीं हैं। हम Politician नहीं हैं कि Direct आकर के खिताब करना शुरू कर दें। कहीं हत्याएं हो रही हैं और मैं वैसे ही Directly शाम को आकर के कविताएं लिख दूँ। जैसे रोजनामचा अखबार में News आती हैं। जिसका Context दूसरे दिन मर जाएगा और मेरा साहित्य दूसरे दिन अखबार की तरह रद्दी में चला जाएगा। हमने साहित्य को Context से ऊपर उठा करके प्रकृति बनाना है और यह एक बहुत बड़ा Challenge है आज के साहित्य के लिए। मैं हिन्दी वालों से कम से कम आग्रह करना चाहता हूँ। यहां पर नरेन्द्र मोहन जी बैठे हैं, हमारे गुरु हैं, इनके सामने इस प्रकार आवेग में बोलना भी अच्छा नहीं है पर आपसे क्षमा के साथ। दर्द जो होता है वो आवेग के साथ ही आता है। जो भारतीय भाषाएं, छोटी-छोटी भाषाएं अभी डोगरी के साथ ही बोडो भाषा को भी संविधान की सूची में डाल दिया गया है। उसका साहित्य पढ़िये। उसकी कविता पढ़िये। वो लोग भी आज के परिप्रेक्ष्य में कविता लिख रहे हैं। संथाली की कविता पढ़िये वो लोग भी वही सब झेल रहे हैं, जो हम झेल रहे हैं। वहां दलितों की आदिवासियों की संख्या हमसे ज्यादा है। उनकी पीड़ा को देखिये और Context को खत्म करके उसका Translation अपनी भाषा में करिये और फिर देखिये उसका प्रभाव क्या होता है तो यह सब चीजें सोचने के लिए मंच को सौंपता हूँ। शुक्रिया।

डॉ. निर्मल विनोद :-

नाटकों की जहां तक बात है, आदरणीय जम्वाल जी बहुत सी बातें कह गये हैं उनके बाद कईं और चीज़ें जुड़ गयीं। कुछ बिंदु मैंने नोट किये थे वो सारे आ गये हैं। आज तो बात यहां तक हो रही है, मुशताक काक जी कह रहे थे तीन-चार दिन पहले कि Script भी गैर जरूरी हो गया है। इस तरह की बात आ रही है नाटक के लिए। खैर! थोड़ा सा यह है कि जैसे 'जसमां ओढ़न' किया स्वर्गीय कवि रत्न जी ने तो उस गुजराती नाटक का उन्होंने एक तरह से डोगरीकरण किया और उसको यहां के वातावरण में लाकर उसकी प्रस्तुती की। यह बहुत बड़ी बात है तो इस तरह से वो Adoptation थी। यहां तक बाल साहित्य की बात है। मैं दोनों पत्र वाचकों को बधाई देना चाहूंगा। लेकिन एक बात यह है कि सतीश जी ने बड़े अच्छे तरीके से बहुत अच्छी बातें कहीं। नाम गिनाना जिसे परिगणन शैली कहते हैं साहित्य में। यह जरूरी नहीं है। आप प्रवृत्तियों की बात करिये, आप उसके योगदान की बात करिये, उसके विकास की बात करिये। सतीश जी कह गये हैं मैं केवल संकेत कर रहा हूँ। हम में से कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कहते हैं भई मेरा नाम नहीं आया। नाम आना जरूरी नहीं है। आखिर नाम आएगा तो क्या हो जाएगा? देखना यह है कि आप उस प्रवृति के अंतर्गत आते हैं या नहीं। कोई आपका खास योगदान है या नहीं, यह महत्वपूर्ण है। बाल साहित्य की जहां तक बात है। पवन जी ने बहुत मेहनत की है। बड़ा व्यापक और विस्तृत कैनवस लेकर उन्होंने सारी बातें की हैं। मुझे भी इन्होंने दो-तीन बार फोन किया कुछ सूचनाएं एकत्रित करने के लिए। इन्होंने भी पत्र लिखने में बहुत मेहनत की है। आपने भी इनके पत्र से महसूस किया होगा। भविष्य में यह और अच्छा काम करेंगे। कितने ही Aspects इन्होंने ले लिए। कुछ कहने के लिए खास है नहीं। क्योंकि बात शुरू करूंगा तो फिर लम्बी हो जाएगी। शुक्रिया।

*

अध्यक्षीय वक्तव्य

प्रो. रत्न लाल शांत :-

मित्रो! वास्तव में मैं सोच रहा हूँ कि इस सत्र में हम एक बहुत ही खुशकिस्मत, नदी के किनारे बैठे हैं। खुशकिस्मत इसलिये क्योंकि जो बातें साहित्यिक चर्चाओं में हाशियों पर छूटती जाती हैं उनको लेकर आज इस सत्र में बात हुई। यह दुर्भाग्य की बात है कि रंगमंच भी तकरीबन हाशिये पर छोड़ दिया जाता है जब साहित्यिक चर्चाओं की बात होती है और साहित्य चर्चाओं में अकसर उन नाटकों का जिक्र होता है जो मंचीय नहीं होते। इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि नाटक वही है जो मंच के लिए लिखा जाए। जो मंच पर खेला जा सके। इसलिये यह बहस जब चली थी कि नाटक किसका माध्यम है ? क्या लेखक का माध्यम है। क्या निर्देशक का माध्यम है। क्या पात्र या चरित्र का माध्यम है? वास्तव में नाटक निर्देशक का माध्यम होता है। निर्देशक उसके बहाने कुछ कहना चाहता है और कह देता है और उसी नाटक के बहाने एक निर्देशक कुछ कहता है। सत्यदेव दूबे कुछ कहते हैं और गिरीश कर्नाड़ कुछ कहते हैं। तो ऐसा क्यों ? क्योंकि नाटक कोई भी हो यह माध्यम है निर्देशक का। और निर्देशक मंच से जुड़ा हुआ है अगर मंच नाटक पर बहस न हो तो मेरे ख्याल में साहित्यिक नाटक पे बहस करना फजूल है। यह बड़ी खुशकिस्मती की बात है कि अकैडमी ने एक सैशन, जो पहले लग रहा था कि यह क्या दो विषय रखे हैं। एक रंगमंचीय नाटक और दूसरा बाल साहित्य। यह दोनों जो हैं हाशिये पर हैं। बाल साहित्य तो और भी हाशिये पर है। कहां बहस होती है ? कौन इसपे लिखता है ? और कौन इसके बारे में इतना सीरियस है ? मुझे शाबासी देनी पड़ेगी अकैडमी को कि कम से कम इन दो के लिए एक अलग सत्र रखा। बातें बहुत हैं और बहुत बातें कही गयी हैं। मंच के साथ हम सभी लोग किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। सबके कुछ न कुछ अनुभव हैं। ज्ञान बहुत है आप सब लोगों का मैं उसमें क्या इजाफा करूं। मैं हमेशा यह सोचता हूँ कि हमारे पत्र-वाचक भी यह मन में हमेशा रखें कि मैं और इजाफा नहीं कर सकता हूँ जो लोग पहले से जानते हैं। इसलिए जिसकी तरफ मेरे मित्रों ने भी इशारा किया कि हर बार वही इतिहास से शुरू न कीजिए। हर बार ज्यादा से ज्यादा सूचना न दीजिए। खाली सूचनाएं साहित्य नहीं होता और जो साहित्य सूचना बन जाता है जिसे मेरे मित्र सतीश ने Contextual साहित्य कहा। जो सूचना का साहित्य होता है वो हमारे अंदर Click नहीं करता। और जब Click

नहीं करता तो उस पर बहस करना निरर्थक है। जब लिखा जाए जम्मू-कश्मीर का रंगमंच। यानि जम्मू-कश्मीर का नाटक नहीं लिखा है तो लेखक को सोचना होगा कि उसे कितनी सी बात कहनी है। ''जम्मू-कश्मीर का हिन्दी रंगमंच'' और बहुत हर तक बन्दना जी ने इस विषय के साथ न्याय किया, हिन्दी रंगमंच के साथ। आप केवल रंगमंच बताइये। रंगमंच का विकास बताइये। रंगमंच का इतिहास मत बताइये। फिर वहां से मत शुरू कीजिए यहां से नाटक शुरू हुआ। क्योंकि यह सब यहां केईं बार, केईं सेमीनारों में कहा जा चुका है। बहुत लोगों ने कहा। हमने कई-कई बार सुना है। आप बताइये कि इस वक़्त जो हिन्दी रंगमंच हमें उपलब्ध हैं जो विश्व तक पहुंचा है। जिसका श्रेय हमारे बहुत ही काबिल निर्देशकों को दिया जाना चाहिये। उनका जिक्र कीजिए। अगर इतिहास बताना चाहें तो बताइये कि यह चौखटा रंगमंच से शुरू करके Open air theatre तक कैसे, कब पहुँचा, क्यों पहुँचा, क्या जरूरत थी ? और क्यों अभी भी चौखटा रंगमंच चल रहा है जबकि नुक्कड़ और Street Theatre ज्यादा प्रभावी और प्रभावशाली माध्यम अभी भी स्वीकृत है तमाम दुनिया में। जबकि जिस नाटक में एक भी Property नहीं होती, ज्यादा अच्छे तरीके से अपनी बात ज़ाहिर करता है। मुझे याद है यहां पे एवमं इन्द्रजीत पेश किया गया बिल्कुल Street Theatre के रूप में। सब के सब पात्र स्टेज पर मौजूद रहे शुरू से लेकर अंत तक। और बात कितनी प्रभावशाली थी। यह देखिये कि जम्मू का हिन्दी रंगमंच इस स्थिति तक कैसे पहुंचा ? इसका विकास बताइये और अभी भी नाटक हो रहे हैं। चौखटा रंगमंच के नाटक अभी भी हो रहे हैं तो यह दोनों क्यों Co-exist कर रहें हैं? क्या इसमें दर्शकों का बहुत जबरदस्त Participation है? अगर ऐसा है तो फिर रोना क्यों कि दर्शक कम हैं, लोग टिकट लेकर देखने नहीं आते। यह हमारी समस्याएं हैं। इन समस्याओं पर सीधी बात कीजिये लेकिन इन पे सोचना पड़ेगा और हमें इनके लिए काफी संवेदनशील भी होना पड़ेगा। बातें बहुत-सी हैं। एक-आध बात कह कर मैं समाप्त करूंगा।

हिन्दी बाल साहित्य सम्भावनाएं। इन्होंने कोशिश की थी कि तमाम बाल साहित्य यहां जैसा लिखा जा रहा है उसका कम-से-कम एक परिचय तो मिले। इन्होंने लिखा, इन्होंने लिखा, इन्होंने लिखा। पर्चा बहुत अच्छा था लेकिन एक बात की तरफ उन्होंने खास और पर इशारा नहीं किया जो कि एक आधारभूत बात है। किसी भी बाल साहित्य के बारे में बात करते हुए। तथ्य यह है कि हमारा बाल साहित्य कम इसलिए हो रहा है क्योंकि हम बहुत ज्यादा Sensible हो रहे हैं। मेरा व्यक्तिगत तौर पर ऐसा मानना है, या यूं कहें बहुत ज्यादा समझदार हो रहे हैं। यह समझदारी जो है हमारी, जो कि Serious है। जमाना Serious है। समस्याएं इतनी हैं। और यह सब हम बाल साहित्य तक पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं। देखिये, जब भी बाल साहित्य का ज़िक्र होता है तो क्या कहते हैं इससे अच्छे संस्कार मिलें, इससे इनको अच्छी आदतें पैदा हो जाएंगी। इसमें इनकी राष्ट्र के बारे में जानकारी बढ़ेगी। इनकी जानकारी इस बारे में बढ़ेगी यानि जो कुछ हम अपने लिए नहीं कर सके वो बच्चों को दो। क्यो बाल साहित्य शब्द सामने आते ही हम में संस्कार ज़ागने लगते हैं राष्ट्र प्रेम

ज़ागने लगता है। बच्चों में वो चीजें Popular हुई हैं आज तक यह विश्व रिकार्ड है जो Non Sensible है। जिनका कोई मतलब ही नहीं है, जो Rhymes हैं, सिर्फ Rhymes। Rhymes के इलावा कुछ भी नहीं।

'अक्कड़-बक्कड़ बम्बे पों', यह बच्चों में ज्यादा Popular है। या उसके बाद जो किशोर साहित्य है उसमें भी वो चीजें जो उनके अंतस को छूएं और हमें भी उस घेरे से बाहर निकाले जो हमने अपने आप के ऊपर डाल रखा है। इसलिए बाल साहित्यकारों एवं बाल साहित्य पर लिखने वालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम क्यों लिख रहे हैं ? और किताब लिखेंगे किनके लिए ? धन्यवाद!

*

28 मई, 2016

तृतीय सत्र	:	कहानी गोष्ठी
अध्यक्षा	:	प्रो० रीटा जितेंद्र
अध्यक्ष मंडल	:	डॉ० संजना कौल, डॉ० ओम गोस्वामी
कहानीकार	:	प्रो० रत्न लाल शांत प्रो० किरण बक्शी सुश्री आशा शैली श्री गौरी शंकर रैणा सुश्री रजनी बाला
धन्यवाद	:	डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'
मंच संचालन	:	अज़रा चौधरी
सत्र की रिपोर्टिंग	:	यशपाल निर्मल

कहानी सत्र

मंचासीन अध्यक्ष मंडल : प्रो० रीटा जितेन्द्र, प्रो० संजना कौल, डॉ० ओम गोस्वामी तथा अज़रा चौधरी
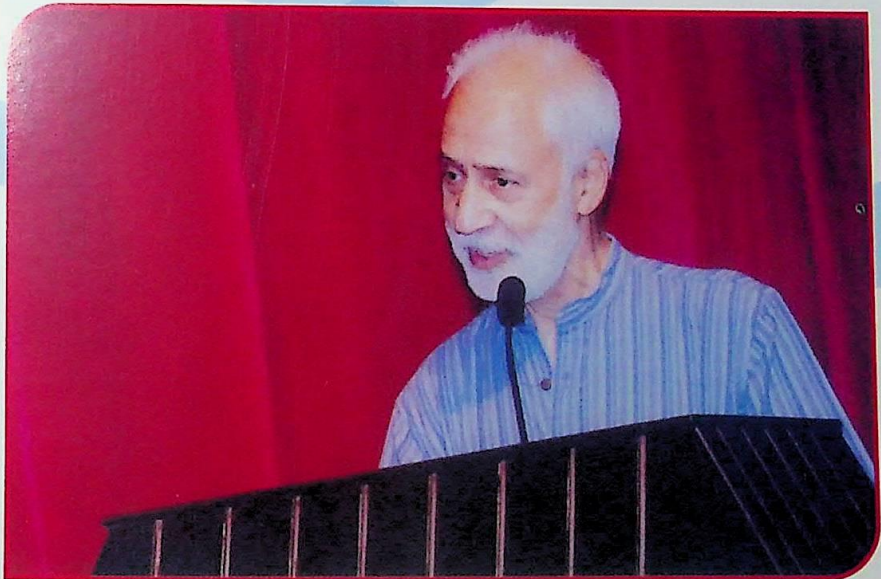
कहानी पाठ : डॉ० रत्न लाल शांत

कहानी सत्र

कहानी पाठ : प्रो० किरण बक्शी

कहानी पाठ : सुश्री आशा शैली

कहानी सत्र

कहानी पाठ : श्री गौरी शंकर रैणा

कहानी पाठ : श्रीमती रजनी बाला

कहानी सत्र

मंच संचालन : अज़रा चौधरी

अध्यक्षीय वक्तव्य : प्रो० रीटा जितेन्द्र

कहानी

एक बैठक की शव परीक्षा

प्रो० रतनलाल शान्त

बैठक के पूर्वी दीवार वाले कोने में बॉडी फ्रीज़र का डब्बा रखा हुआ था। ज़मीन से करीब तीन फुट ऊपर। डब्बे के ऊपरी शीशा घर में मृतक की देह रखी गई थी। शव चित लेटा था। आंखें अधखुली सी, दोनों हाथ सीने पर, शेष शरीर सफेद चादर से ढका हुआ।

सामान्य फ्लैटों में जगह की उपलब्धता देखते हुए बैठक लंबाई चौड़ाई में ठीक थी। (किचन और बाथरूम के सामने की खुली जगह को भी शामिल किया जाए तो बैठक में तीस चालीस मेहमानों के लिए एक फंक्शन कराया जा सकता था।) इस समय बड़े से शव फ्रीज़र के कारण बैठक कुछ छोटी लग रही थी यद्यपि फर्नीचर सारा बाहर कॉरीडार में अटाया गया था। बैठक की दीवारों पर परिश्रम और सुरुचि की छवि इस समय खमोशी दुख और असमंजस में मलीन दिखाई दे रही थी। फर्श पर केवल कालीन और चादरें बिछाई गई थीं, जिस पर सुबह सुबह सोसाइटी में मृत्यु का समाचार फैलते ही आने वाले पुरुष और स्त्रियां अलग-अलग समूहों में बैठने लगे थे। परन्तु कोई समूह पूरा बन नहीं पा रहा था। दो चार व्यक्ति आ बैठते, आपस में फुसफुसाते और बगलें झांकते हुए उठ खड़े होते। फिर धीरे-धीरे खुले दरवाज़े की तरफ खिसक लेते।

स्त्री समूह में तीन स्त्रियां बैठी थी, फीके रंगों वाली साड़ियां पहने। मिसेज़ शर्मा दो मिनट पहले आई थीं, मिसेज़ कौल आई तो उनके कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से पूछा- 'कब मरे' ? शायद आज रात को ? शर्मा ने बिना मुंह फेरे कहा - 'क्या पता। रोना धोना कुछ सुना नहीं।' उसी क्षण मिसेज़ वर्मा को बैठक में प्रवेश करते देख कौल उनके बैठने का इंतज़ार करने लगी और उसके बैठते ही उनसे यही सवाल दोहराया। वर्मा बोली- 'मुझे कैसे पता चलता, ये सुबह वॉक करने न निकलते और कारीडॉर में इतना सामान फैला देखकर पूछ गिछ न की होती तो।'

'आप ऊपर रहते हो ?' शर्मा ने उनसे पूछा।

'404 में' वर्मा ने सीधा संक्षिप्त जवाब दिया। वह चारों ओर नज़रें दौड़ा कर बैठक और किचन का मुआइना कर रही थीं।

शर्मा ने अपनी स्पष्टता देना बेहतर समझा –'हम 101 में हैं। लिफ्ट के बिल्कुल सामने। हर आने जाने वाले को देख लेते हैं।'

अब कौल की बारी थी–'तब तो आपको यहां की सारी एक्टिविटी मालूम होनी चाहिए। क्यों ?' समर्थन के लिए वर्मा की ओर देखकर उन्होंने प्रश्न वस्तुतः शर्मा से किया।

'वही तो हैरानी हुई हमें कि यह सब चोरी छिपे क्यों ?' शर्मा की आखें हैरानी में फैल गई थीं। पर कौल की तफतीश करना बाकी था। सो उनसे सीधा सवाल यद्यपि शर्मा ने किया पर वर्मा की आंखों में वही सवाल तैरने लगा था–

''पर सच बताएं मिसेज़–'' बोलते हुए रुक गईं और मिसेज़ कौल ने उनका वाक्य पूरा किया–'कौल। मिसेज़ अर्चना कौल।'

'हां मिसेज़ कौल। इसीलिए तो आपको हमसे ज्यादा मालूम होना चाहिए।' मिसेज़ वर्मा ने सिर हिलाकर हामी भरी। अपनी तरफ से इतना और जोड़ा–'बल्कि हमें तो लगा था कि रातों रात इतना सब हो गया, शव फ्रीज़र आया, बैठक सज गई और इस वक्त देखो जैसे सब तैयार है...यह सब आप लोगों ने मिलकर किया होगा।'

'आप लोगों ने' में खुद को निशाने पर पाकर कौल ज़रा तिलमिलाई, पर समय की नाजुकी को देखते हुए सवाल का रुख बदल दिया। पूछा–

'आप कब से यहां हो ?'

'छः महीने हुए होंगे। तब यहां सारे ब्लाक करीब खाली थे। वीरानी समझो थी पूरी। सेक्योरटी वाले माली, ये सब अब लगाए गए हैं।' शर्मा बोली।

'तब तो आप जानती होंगी।' अब वर्मा ने पूछा

'किन्हें ?' शर्मा ने कहा।

'अरे यह तो बताओ मिसेज़–' वाक्य पहले की तरह मिसेज़ वर्मा ने पूरा किया–

'वर्मा। मिसेज़ सुरेखा वर्मा। हमारे ये कर्नल हैं। कर्नल सुधीर वर्मा।' हां, क्या बताना है, पूछो।

'यह तो बताओ ये पति किसके थे ?' लगा कि यह प्रश्न तीनों के मन में गूंज रहा था जो अब बाहर फूटा।

'मुझे खुद मालूम हो तो बताऊँ....लगता है ये लोग अभी अभी आए थे....बेचारी।'

कौल हर आने जाने वाली को घूर घूर देख और पहचान रही थी।–'जो भी हो, वह है कहां ? उधर मरदों में फिर भी दो चार जमे हैं, इधर कोई फटक ही नहीं रहा।'

शर्मा ने अपनी ओर से जोड़ दिया–'दुख जताएं तो किसे ?'

तभी 30-35 वर्ष की मंझले कद की स्त्री बैडरूम से एक टोकरी लेकर निकली और बैठी हुई तीनों स्त्रियों के बगल से रास्ता बनाती हुई फ्रीज़र के पास बैठे मर्दों के पास आई। उसने टोकरी से एक थाली, घड़ा, छोटे तौलिए, फूल, चावल आदि निकाल कर एक पुरुष को दिए। किचन से उम्र में कुछ बड़ी दिखने वाली एक और स्त्री एक पोटली लेकर गई और उसी पुरुष के सामने रख दी। दोनों स्त्रियों के चेहरे मुर्झाए हुए थे और कपड़े जैसे कीचड़ में लिथड़े।

शर्मा ने हाथ मुंह से लगाकर कान में फुसफुसाते हुए कहा– ''इन्हीं में से कोई होनी चाहिए। मेरे ख्याल में छोटी वाली ?''

वर्मा ने वैसे उसकी मंदबुद्धि पर तरस खाते हुए कहा– ''मुर्दा तुम्हारे सामने पड़ा है। क्या उम्र होगी ?''

कौल ने साड़ी का पल्लू अपने सिर पर ठीक करते हुए कहा– ''अरे जाने दो। आजकल चेहरे मोहरे से उम्र का पता चलता है ? यहां आके जो बैठे तो पूछें।''

वर्मा उकडूं बैठकर कहने लगी– ''आप पूछना। मुझे बच्चों के लिए ब्रेकफास्ट बनाकर उन्हें स्कूल भेजना है। फिर आऊंगी।'' और वह उठ खड़ी हुई। फिर सिर झुकाए धीरे धीरे दरवाज़े से वाहर निकल गई।

कौल ने शर्मा को इशारे से बताया कि बड़ी स्त्री बहुत तेज़ और सक्रिय लग रही है। शर्मा ने सनक में अपनी भौंहें ऊपर माथे तक खींच ली और राज़ की बात बोली–

''मिसेज़ कौल! बता देती हूं। गांठ बांध लेना। मुझे ये कुछ ठीक नहीं लग रही। उसकी फुर्ती तो देखो जैसे इसकी बेटी की मेंहदी रात हो....''

कौल ने समर्थन में कहा–''अरे मुर्दे को ठण्डे बक्से में रखवा दिया, यह कुछ कम है....।''

अचानक शर्मा खड़ी हुई, पर पहले कौल से कहा– ''सुनो, मैं अभी आती हूं। आप तब तक बैठे रहना जब तक कोई और यहां आ के बैठे नहीं। या इन्हीं दो में से कोई आए। उससे पता करना और फिर मुझे बताना। आखिर यह तो अच्छा नहीं लगता कि उप्पर मरद बैठे हो और यहां स्त्री कोई न हो।....'' स्थिति समझा कर वह चल दी।''

स्त्रियों की तुलना में मर्द मंडली में खुलकर ऊंची आवाज़ में बातें हो रही थीं। जो टोकरे में लाई नई चीजों को अन्तयेष्टि के लिए व्यवस्थित कर रहे थे, उनके लिए शेष के मन में विशेष आदर भाव स्पष्ट था।

एक बोले–'रातों रात बिना किसी को डिस्टर्ब किए सब कुछ अरेंज करना, रियली, मैं तो एडमाइर करता हूं।' बोल कर दूसरे की आंखों में जिज्ञासा देखकर अपना वक्तव्य यों पूरा किया– ''दर, मैं दर हूं, सुरेश दर। बी–904''

''मैं 804 में हूं पर आपको कभी देखा नहीं।''

''मैं ज्यादा बाहर रहता हूं। यू नो! टूर पर। अच्छा, आप बिज़िनेस में हैं ?''

'हां। कपूर एंड को। आपने ज़रूर देखा होगा।'

एक और सज्जन इस वार्तालाप में शामिल होने को उतावले लग रहे थे। पर वे इन से दो और जनों की दूरी पर बैठे थे बोले–''अरे हां, शाम कपूर! मैं जानता हूँ।''

कपूर ने मुस्कुरा कर वक्ता को देखा। वक्ता ने बाजू लंबा करके उनसे मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया और कहा–''मैं खर हूं। के ब्लाक के ग्राउंड फ्लोर में मेरे दो फ्लैट हैं दूसरे में मेरा बेटा बहू रहते हैं।''

अब दर ने थाली फूल फल आदि सामान संजोने वाले पुरुष को गंभीर स्वर में संबोधित किया– ''राम नाम ही सत्य है। आपकी हिम्मत और सहन शक्ति देखकर आपको नमन करने को जी करता है।''

लगा कि पुरुष इस अपाचित प्रशंसा से अचंभित हुआ, पर शीघ्र अपने को संभालता हुआ बोला–''ठीक कहा आपने।.... चाहे कहां कहां से आए हों, पर इस सोसाइटी से पड़ोसी बन गए तो हिम्मत करनी ही पड़ेगी ना ?''

अभी तक ज़िसे मृत व्यक्ति का निकट संबंधी समझ रहे थे, उससे अन्यथा सुनकर दर कपूर और खर तीनों एक दूसरे को देखने लगे। इंतज़ाम इतना पक्का और निर्बाध पर कर्ता कौन यह प्रश्न उनको बेचैन किए दे रहा था।

कपूर ने तुरंत विषय बदला–''बैठक बड़ी नहीं, पर देखो आज भी सजी धजी लगती है।''

खर ने झट उनकी बात को सही अर्थ देने की कोशिश की– सजी कहां है। सामान नहीं, सजावट नहीं। फिर भी फ्रीज़र में पड़ा घर का मालिक उठा दिए जाने पर पछता रहा होगा।

दर की नज़रें बैठक की नाप तौल कर रही थीं। बोलो, जैसे अपने आपसे बतिया रहे हों–

"इस ब्लाक और हमारे ब्लाक के डाइमेंशन बराबर हैं, पर यह बैठक हमारी बैठक से ज्यादा चौड़ी लग रही है। है ना ?"

पास बैठे पुरुष ने हामी भरी–"हां। इतने लोग बैठे हैं, इतना बड़ा फ्रीज़र है पर भीड़ नही लगती।' क्या काम करता था ? इशारा मृत व्यक्ति की ओर था।

पुरुष ने अनजान होने की मुद्रा बनाई। फिर पूछा–"ये जो दो स्त्रियां अंदर बाहर आ जा रही हैं, इनमें से कोई एक इसकी बीवी होगी।"

दर ने यह अनुमान एकदम रद्द करते हुए कहा–"क्या कह रहे हैं आप? अरे वह उधर होगी, औरतों के बीच बैठी हुई।"

पुरुष ने तुरंत सबूत पेश करके अपने अनुमान की पुष्टि की–"वहां सिर्फ दो महिलाएं बैठी हैं। उनमें एक मेरी पत्नी है और दूसरी टी-ब्लाक की है। आप कब से यहां सोसाइटी में हैं ?"

दर ने प्रश्न में निहित व्यंग्य का जवाब न देकर कपूर की ओर अगले वार्तालाप की दिशा मोड़ी--'आपको नहीं लगता बहुत देर होनी है ?'

कपूर ने एक नज़र शव पर और दूसरी दरवाज़े से आने जाने वालों पर दौड़ाकर घोषणा की : "दो बज जाएंगे, चाहो तो लिख के देता हूं। अरे आज कल मर जाना सबसे मुश्किल काम है। और यहां तो देख रहा हूं इंतज़ाम ढीला ढाला है।" कहकर कपूर उठ के चल दिए और दर को उनके पीछे ही जाना पड़ा। दरवाज़े से बाहर कारीडॉर में दोनों एक दूसरे से बोले–"कुछ खा पी लें तो।"

खर दो आंगतुकों को सपत्नीक आते हुए देखकर खासे प्रभावित लग रहे थे। डिज़ायनर कुर्ता पजामा पहन के और चेहरों पर गंभीरता ओढ़ कर आए हैं।

अरथी के सामान को संजोने वाला पुरुष दर से बोला–'आपको कहां कैसे जाना है यह सब पहले से ही तय है। सफेद कपड़े पहनने हो या रंगीन, कुर्ता पाजामा हो या सूट बूट। मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं। क्यों ?'

खर को आगंतुकों के कपड़े पसंद आ गए थे पर कपड़ों का दर्शन पसंद नहीं आया। उनके मन का यह विश्वास दृढ़ जरूर हुआ था कि अर्थी वाला यह व्यक्ति मृतक का निकट का कोई संतंधी है। सो पूछा–

"लंबी बीमारी थी ?"

अब उस व्यक्ति का क्रोध निर्बंध छूटने लगा। चेहरा कस गया और फुसफुसाहट में भी आवाज़ की तीक्षणता ज़ाहिर हुई-

"देखिए भाई साहब न आप इस सोसाइटी के दामाद है न मैं साला। फिर कौन जाननहारा कौन पूछने वाला ?"

खर साहब स्पष्ट ही खिसिया गए।

अर्थी वाले पुरुष को उन पर दया आई। समझौते की पेशकश में कहा-

"मरा सो मरा-अब हमें जल्दी करनी चाहिए।"

"देखिए! इतना काम करने को था तो हज़ार हाथ होने चाहिए था।"

बैठे लोगों के समूह में पीछे से कोई बोला, मगर पीछे मुड़कर किसी ने उसे नहीं देखा। लोग खड़े होने लगे क्योंकि शव को फ्रीज़र में बिठाया गया था। फिर उसे उठाकर कारीडार में रखे तखत पर रखकर नहलाने ले गए। फिर उसे कफन पहनाया गया और फूलों की मालाओं से अर्थी सजाई गई। किसी आगंतुक या सोसाइटी के किसी निवासी को कोई आवश्यक चीज़ मंगाने बोलने की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि बोलने से पहले ही वह चीज लाकर सामने धर दी जाती थी। पुरुषों या स्त्रियों के प्रश्नों से खुले मुंह खुले रह गए लग रहे थे। थोड़ी देर में अर्थी को उठाकर लिफ्ट से नीचे उतारा गया। दोनों लिफ्टें कई बार ऊपर आईं और लोग उतर गए।

बैठक खाली हो गई थी। अंत में मंझले कदवाली और बड़ी उम्र वाली दोनों स्त्रियां बाहर आ गईं। बड़ी ने दरवाजे पर ताला लगाया। मंझोली उसके बगल में खड़ी थी और उसने देखा कि जाने कहां से पांच छः स्त्रियां आईं और बड़ी को घेर कर खड़ी हो गईं। उन्हें इस दुखद घटना के केंद्रीय व्यक्ति की पहचान हो गई थी। एक उससे बोली-

"बहुत बुरा हुआ। बीमार थे क्या ?"

वह जवाब दे इससे पहले दूसरी ने पूछा-

"जब सोसाइटी में आए तभी बीमार थे या बाद में हुए ? क्या बीमारी थी ?" तीसरी ने दूसरी को इशारे से चुप कराकर अपना सवाल सामने रखा क्योंकि यह सवाल अधारभूत था। -"आप यहां आए कब थे ? किसी को पता नहीं।"

शेष स्त्रियों ने सिर हिलाकर अपने अज्ञान का स्पष्टीकरण दिया।

फिर एक बोली- ''मैं ऊपर 404 में हूं, ये आज वाक पर...''

दूसरी ने कहा- ''मैं नीचे 101 में हूं, मुझे सब पता चल जाता है, पर फ्लैट का ताला बंद करके और चाभी जेब में डालकर वह मूक खड़ी देखती रही। दरवाज़े से टेक लगाकर पुलिस से घिरे अपराधी की तरह। आखिरी सवाल सीधा था। किसी ने पूछा-''आपके पति थे ?'' यह सवाल सुनकर उसकी आंखें बंद हुई और होठ एक दूसरे से बिना नमी के चिपक गए। शायद चक्कर आने लगा तो उसने हाथ उठाकर बगल में खड़ी मंझोली को सहारे के लिए पकड़ना चाहा। पर वह घेरे से जाने क़ब निकल गई थी। बड़ी की निरीह आंखें उसे खोजने के लिए खुली। भला हुआ कि मंझोली तत्क्षण आकर उससे कहने लगी- चलो नीचे बुला रहे हैं।'' फिर उसका हाथ पकड़कर घेरे से बाहर निकाल लिया।

कोई जवाब न पाकर और अपनी जिज्ञासा को अधूरा छोड़कर स्त्रियां भी दोनों लिफ्टों की ओर तेज़ी से बढ़ने लगीं, तो बड़ी ने मंझोली को सीढ़ियों की तरफ खींचा। सिर्फ वे दो धीरे-धीरे कदम कदम सीढ़ियां उतरने लगीं।

सोसाइटी के आंगन में दिवंगत के लिए आरती पढ़ी जाने लगी थी। लोग हाथों में फूलपत्र लेकर आखें बंद किए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का, ओम जय जगदीश हरे। बड़ी के लिए शव के पांव की तरफ जगह बनाई गई। अब लोगों ने उसे ठीक पहचानना शुरू किया था। उसके खुरदुरे सूखे पर काले बालों से सूखे पपड़ाए पर सुंदर चेहरे से ठूंठ पेड़ जैसे ऊंचे कद से। उसकी निंदियाई सूझी आंखों में इस समय सबके प्रश्नों के उत्तर थे, पर प्रश्नकर्ता आंखें मूंद पूजाविधि में व्यस्त थे। वह अधखुली पलकों से सबको देख रही थी। पर उनमें से किसी को पहचान नहीं पा रही थी।

जाने किसी के कहने पर आरती रोक दी गई। मंझोली आई और बड़ी के कान में कुछ कहा। बड़ी के ढीले तन में जैसे किसी ने बिजली छुआ दी हो। उसने सिर पर पल्लू ठीक किया और झट से ऊपर फ्लैट में गई। दो मिनट में लौटी एक शॉल लेकर जो अर्थी पर फैला दिया गया। दो मिनट के व्यवधान से कई लोग खीजे और एक दूसरे से जाने क्या कहने लगे थे। पर केवल एक पुरुष वार्तालाप ऊंची आवाज़ में होने के कारण स्पष्ट सुनाई दिया-

''अरे अभी तक किसी ने क्यों नहीं बताया। अब कहां कहां ढूंढे गी बेचारी अबला!'' स्पष्ट था कि बड़ी का रहस्य अब उसके लिए सहानुभूति का कारण बन गया था।

''क्या जल्दी थी बॉडी को कॉरीडर में निकालने या यहां पाथवे में ले जाने की ?'' यह प्रश्न खाना पीना अधूरा छोड़कर आरती में शामिल होने के लिए आए दर और कपूर का था।

पर वार्तालाप आगे नहीं बढ़ सका और आरती आगे बढ़ी।

शव वाहन गेट के बाहर खड़ा था। अर्थी उठाकर ले जाई गई। थोड़ी देर में वाहन के पीछे शवयात्रा चल पड़ी।

अब स्त्रियां लौटने लगीं। बड़ी लड़खड़ा कर चल रही थी। उसे दो स्त्रियां सहारा देकर ब्लाक तक ले आईं। जिसका फ्लैट रास्ते में पड़ा वह उधर चली गई और जिसका इस ब्लाक से आगे था, वह सीधे आगे निकल गई। सिर्फ दो तीन स्त्रियां रह गईं जो बड़ी तथा मंझली को आगे ले गईं। पर ये लिफ्ट छोड़कर सीढ़ियां चढ़ने लगी। किसी ने आपत्ति नहीं की, बल्कि वे स्वयं लिफ्ट लेकर अपनी अपनी मंज़िल चढ़ गईं। एक दो पुरुषों ने अपनी घरवालियों को समझाया था कि दुखिता को जैसे तैसे रुला देना नहीं तो फट पड़ेगी। पर स्त्रियां आपस में इस मत की थीं कि अब तक रो लेती तो मृतक का जीव भी सुन के जाता। हम जब बैठी थीं तो इसे इंतज़ाम करने की पड़ी थी। अरे यह काम लड़के लड़की से करवाओ, खुद शोक मनाओ...अब पछताने दो, हम क्या कर सकते हैं।

अपने तल पहुंच कर बड़ी ने चाबियां मंझोली को दी। मंझोली ने दरवाज़ा खोला और कमरे के अन्दर चली गई। अन्दर फर्श पर धम्म से बैठ गई और सिसकने लगी–पापा! पापा!

बड़ी उसके पास बैठी। उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे समझाया– देखो बेटा काम अब शुरू हुआ है। पहले पोछा करना है फिर फर्श ठीक से बिछाना है। चद्दरें उठाकर झाड़ देनी है। दरवाज़ा खुला छोड़ देती हूं। चलो तुम यह करो मैं आटा गूंदती हूं। उठो वक्त कहां है। घंटे भर में ये लौटेंगे।

मंझोली बेबसी और गुस्से से लगभग चिल्ला कर बोली–''मम्मी! पापा ?''

बड़ी किचन में जा चुकी थी। अचानक उसके हाथ रुक गए। बाहर निकल कर मंझोली को खड़ा किया और खुद उसे ऐन सामने रहकर और सख्त चेहरा बनाकर कर्कश आवाज़ में कहा– ''रोने के लिए बहुत समय पड़ा है। सिर्फ इतना बता तू मुखाग्नि देने क्यों साथ नहीं गई ? मंझोली रोनी आवाज़ में बोली : जब गाड़ी चल पड़ी तो मैं भी चलने लगी। तभी कोई बाइक पर आया। बाइक बगल में खड़ी की और क्रिया की टोकरी लेकर चला गया, तो मुझे आगे जाने नहीं दिया गया। वह कौन था मम्मी। हमारा कोई रिश्तेदार तो हो नहीं सकता। होता तो कल रात आता, आज सुबह आता...

'हमारा कोई रिश्तेदार नहीं है इस शहर में कह कर बड़ी काम में जुट गई। सिर्फ इतना कहा–

'अभी परेशान मत हो। शोक भी नहीं मना। मनाने वाले अभी आ जाएंगे श्मशान से। उन्हें खिलाना पिलाना होगा। चल जल्दी हाथ उठा...।'

*

कहानी

अलाव में

❑ प्रो० किरण बख्शी

शकील अहमद कालीन झाड़ते हुए लगातार बोले जा रहे थे। सुना है, दिल्ली से कुछ बड़े लोग आए हैं। बहुत से लोगों से बातचीत करेंगे।

हमारी समस्यायों पर बात करेंगे, हमारे हालात को समझेंगे। इनसे लोग बड़ी उम्मीद लगाए हुए हैं। पर खुदा जाने हमारे हालात को समझेंगे, सुलझाएंगे या उन्हें और उलझा कर लौट जाएंगे। मैं किसी की नीयत पर शक नहीं करता, पर यह भी नहीं समझता कि उनके आने से वक्त बदल जाएगा। तुम कुछ कहती क्यों नहीं गुल जबीन, मैं ही बोले जा रहा हूँ।

अब की बर्फ़ गिरने से पहले का समय लम्बा खिंचा चला जा रहा था। घुटा हुआ माहौल, आसमान में हवा की कमी, और बिल्कुल सर के ऊपर तक आ गई नमी, अजीब सी कैफियत है। छाती पर दबाव सा महसूस हो रहा है, सुबह; सुबह, जैसी उजली नहीं। बल्कि ठहरी हुई सर्द शाम सी है। बेरौनक, निराश और खामोश। शकील अहमद ने फिर बात शुरू की, ''समझ नहीं आता, हमारी ज़िन्दगी की उलझने कब दूर होंगी। चलो, इन्हें भी देख लेते हैं, क्या नया लेकर आए हैं यह। हाल चाल तो पूछेंगे ही हमारा, हमदर्दी भी जरूर जताएंगे।'' शकील यह सब गुल को सुना रहे थे ताकि उसकी प्रतिक्रिया जान सकते, पर बात अम्मा के कानों से जा टकराई और उसने बोलना शुरू कर दिया– ''क्या कहा ? हमारा हाल चाल पूछेंगे ? कहना ठीक है हम, जी रहे हैं। गोशत 300 रु. बिक रहा है, मछली के भाव आसमान छू रहे हैं। साग सब्जी से काम चला रहे हैं। सेब अखरोट– सब पेड़ खाली हैं इस बार। मेरे जोड़ों के दर्द की दवा भी महंगी हो गई है। रोटी जुटाएं या महंगी दवाएं खरीदें। और यह भी कहना....।''

''अरे अम्मा आप क्या कह रही हो ? तुम्हें समझ तो कुछ आता नहीं, अपना ही राग अलापने लगती हो। शकील हँसते हुए बोले।''

''झूठ क्या कह रही है अम्मां। यह सब तो हमारी समस्याएं है ही और रहेंगी भी। किसी के आने से क्या फर्क पड़ता है। जहाँ से चलते हैं वहीं आ रुकते हैं हम। हम एक भुलावे में जी रहे हैं। एक भंवर में उलझे हैं। गोल-गोल घूमा रहे हैं उसी में। निकलने, निकालने की कोशिशें भले ही हो रही हों, पर हम है कि मुड़-मुड़ कर फिसल रहे हैं।

H.No. 59 L. No. 21-A, Tawi Vihar, Sidhra, jammu, Ph. No. 9796099000

कुछ ताकते हैं जो हमें उसी भंवर में फिर-फिर धकेल देती हैं। अब भी यही होगा-यह लोग जो आए हैं, मामले को सुलझाए बगैर ही चले जाएंगे। इनकी नीयत पर शक नहीं, पर इनके बस का भी तो कुछ होना चाहिए न। जब आईना ही धुंधला गया हो तो तस्वीर तो धुंधली दिखेगी न।''

शकील गुल जबीन की समझ पर भरोसा रखते हैं, पर हमेशा निराशा की बातें उन्हें अच्छी नहीं लगतीं, हालांकि वह खुद भी कुछ ऐसा जैसा ही सोचने लगे हैं। उन्हें घर के अन्दर रहना नागवार लगने लगा। सोचा बाजार से सौदा ही ले आए, वैसे भी नुक्कड़ के नानवाई की दुकान पर दो लोग मिल ही जाएंगे। सबके पास कोई न कोई खबर भी होगी। इस घुटन में शायद कोई उम्मीद दिल के बोझ को हल्का कर जाए। हाथ में दस्ताने पहने, गले में मफलर लपेट वह बाहर निकल आए। बाजार का लम्बा सा चक्कर लगाया यहाँ वहाँ से कई तरह की बातें सुनी और मन में उन पर विचार करते-करते वापिस घर आ गए। दो एक घन्टे की मटरगश्ती के बाद मन भी हल्का हो लिया। दोपहर ढलने वाली थी। ठंड का प्रकोप था। उन्होंने सब खिड़की दरवाजे बन्द किए और बुख़ारी में आग तेज़ कर दी। वह शाम के सब ज़रूरी काम कर लेना चाहते थे। कोई ठीक नहीं कब बत्ती चली जाए और सब कुछ अंधेरे में डूब जाए। ऐसे में जब तक रोशनी का कोई बन्दोबस्त हो अजीब डर और दहशत सी होने लगती है। ऐसी शामें और रातें बड़ी डरावनी होती हैं। पर जैसे ही सुबह अंधेरे की चादर को परे सरका सफेदी बिखेरती है तो सारा डर खत्म हो जाता है। लगता है उजालों का अस्तित्व हमारे जीवन में अभी बचा है। कहीं सुरक्षित है वे, लौटने के इंतजार में। उन्हें साल की पहली बर्फ़ का वह दिन बार बार याद आता है जो किसी उत्सव सा होता था। शीन मुबारिक, और वह ढेरों उजास, सफेद संगमरमरी माहौल। अब तो गए वक्त की यादें है। आज कल तो बर्फबारी भी कम होती है और उसका त्योहारी रंग तो कब का जा चुका है। सहसा उन्हें बेटियों की याद आ गई जो नई बर्फ का दिन बड़े जोश से मनाती थीं। बेटियों की तो क्या रौनक होती है। हर समय लगता है घर में बुलबुलें चहक रही हो या संतूर बज रही हो। वह फिर से उदास हो गए। अब भी आ जाती हैं तो घर महकने लगता है। उनके बच्चों की हंसी-खेल इस उदास घर को फिर से ज़िन्दगी में ले आते हैं। वरना इस घर में हंसना तो सब भूल गए हैं। अगर कोई भूले से हंस दे तो लगता है जैसे जून महीने में बर्फ़ आ गिरी हो। पहले वे सोचते थे कि लड़कियाँ परदेस चली गईं, अच्छा नहीं हुआ। पर अब लगता है कि कुदरत का फैसला हमारे भले के लिए होता है। रुबीना और अंजुम दूर सही पर खुश तो हैं।

शकील अहमद का शालों का कारोबार था। अब भी है पर जो मज़ा तिजारत में पहले था अब नहीं। हालांकि कश्मीर में कुछ लोग पहले से ज्यादा चमक-दमक में रह रहे हैं। उनके पास पैसा भी खूब है और सुख सुविधाएं भी। भरपूर जी रहे हैं। पर वह तो पिछले 20-22 सालों से इसी इंतज़ार में है कि कब उनकी छाती से उदासी का भार हटे और वह खुल कर सांस लें। कुछ लोगों की तरक्की सबकी तरक्की तो नहीं हो सकती सबके रोजगार

तो चमक नहीं रहे। हर साल लगता है इस बार कारोबार अच्छा रहेगा, पर कुछ ऐसे हालात बन जाते हैं कि सब कुछ ठप्प हो जाता है। रोज़ी-रोटी तो जैसे-तैसे चल जाती है। पर एक डरावनी अनिश्चितता का अहसास बना रहता है। अब तो गाँव के सीधे-साधे लोग भी अपने फायदे को रिश्तों से ऊपर देखने लगे हैं। सेब और अखरोट के बागों से आने वाली रकम दिनों-दिन कम होती जा रही है। पूछो तो वह उन लोगों का डर दिखाते हैं जो जिहाद के नाम पर ज़ोर जबरदस्ती कर फ़सल का बड़ा हिस्सा ले जाते हैं। इसमें कितना सच्च है और कितना झूठ वही जाने। पहले वह पंजाब और देहली में माल सप्लाई करते थे। सौ एक शाल लेकर निकलते थे। नकद कमाई होती थी। लोकल कारोबारी उधार पर माल उठाते हैं और कीमत भी अच्छी नहीं देते। अब उनका बाहर जाना मुमकिन नहीं। उन दिनों अब्बा थे जो पीछे देखते थे। अब किसके सहारे जाएँ वह। कहने को बेटा दिया है अल्लाह ने। तीस-बत्तीस साल का कड़ियल जवान पर न जिन्दों में न मुर्दों में उसका ध्यान आते ही एक लम्बी साँस हवा में तैर गई। उन्होंने सोचा था इमरान को खूब पढ़ाएंगे बड़ा अफ़सर बनाएंगे। पर सब धरा का धरा रह गया। बचपन से उसे पुलिस अफसर बनने का शौक था। सोचा था उसे आई०पी०एस० बनाएंगे। प्रेम जी मास्टर जो पड़ोस में रहते थे हमेशा कहते ''शकील भाई बेटियों को तो तुम ने खूब पढ़ाया, पर इमरान पर खास ध्यान देना। बड़ा होनहार है, ज़रूर कुछ बनेगा।''

मा० साहब बेटियों की परवरिश भी आपके हाथों हुई, इसको भी आप ही संवारेंगे। शकील प्रेम जी मा० सा० की इज़्जत करते थे। भरोसा था उन पर। अधिकार से कहते, ''इसे ऐसा तराशिएगा कि हर कोई सोचे कि कितना ज़हीन और सलीकामंद जवान है।''

मा० साहब शकील भाई का उन पर भरोसा देख कर खुश हो जाते। वह मुहल्ले के कई परिवारों के बच्चों को ऐसे पढ़ाते थे जैसे उनके अपने बच्चे हों। उनकी उस मुहल्ले में खास जगह थी। जब वह घाटी छोड़ कर जाने लगे तो पूरा मुहल्ला उदास था। इमरान तो अंदर से उदास था। उसे रुआँसा देख मा० सा० ने कहा-''कुछ ही दिनों की बात है- दूध का उबाल है, उतरेगा तो जल्द ही सब ठीक हो जाएगा। वह भी लौट आएंगे। अपने घरों से भला कोई कितनी देर दूर रह सकता है।''

दिन बीते-महीनों और फिर सालों पर बात गई। कोशिशें भी भरपूर हुईं, पर हालात का संवरना न हो सका। कुछ लोग बीच-बीच में लौटे भी पर अपने छूटे घरों को अपना न कह सके। आबाद न कर सके। पिछली दफ़ा जब मा० सा० वहाँ गए तो शकील भाई के यहाँ ही टहरे। गाँव से ज़मीन देख कर लौटे तो कहा-''शकील भाई फ़िज़ा में अब अपनापन महसूस नहीं होता। आपका बार-बार यह भरोसा दिलाना कि सब ठीक है, बाकि मुहल्ले वालों का भी मुझे बाहों में भर लेना यही तो जतलाता है कि हम यहाँ मेहमान ही तो हैं।'' सुनकर उदारा हो गए शकील। दूर आकाश में देखते हुए बोले-''ठीक कहते हो पण्डित। शायद ज़िन्दगी मुहल्ले तक महदूद नहीं होती। उसके आगे भी कई सरोकार रहते हैं। **और**

ज़िन्दगी सबसे बड़ी नेमत है। पर उम्मीद का दामन न छोड़िएगा। आज यहाँ तक आ पाए हैं-कल आगे भी सब ठीक हो जाएगा।''

''भगवान ऐसी ही करे। हम अपने पुरखों की ज़मीन पर साँस ले और चैन की नींद सोएं।''

''आमीन'', शकील भाई ने इस विश्वास पर मोहर लगाई। अगले दिन उन्होंने प्रेम जी भाई को जम्मू के लिए रवाना किया। दो एक साल बीत गए। एक दिन प्रेम जी मा० सा० का फोन आया। कहा कि उनकी गाँव की ज़मीन को देख आएं और अगर मुज़ारों से कुछ मिलता है तो भेज दें। मौजी बिमार है और पैसों की जरूरत है। यह भी कहा कि सुना है कि कुछ ज़मीन पर किसी ने कब्जा कर लिया है, मुज़ारों को डराया धमकाया जा रहा है कि एक तरफ हो जाए। पैसों का भी लालच दिया जा रहा है।

वक्त निकाल कर शकील भाई गाँव गए। उनकी अपनी ज़मीन भी वहीं थी। हालात कुछ सही न थे। दबंगों ने डरा धमका कर काफ़ी ज़मीन हथिया ली थी। एक कोने में मकान की बुनियाद भी डाल दी थी। मुजारे खुद डरे सहमे थे। उन्हें हुकम था, ''मुँह बंद रखो और अपने काम से काम रखो। तुम्हारी रोज़ी रोटी के लिए काफ़ी है-बाकि से तुम्हें क्या गर्ज़।'' एक मुजारे ने तो यहाँ तक कह दिया- शकील लाला आप प्रेम जी पण्डित से कह दो इधर का रुख न करें, कोई सर फिरा क्या कर डाले क्या पता।''

शकील भाई को चिंता लग गई। पण्डित को पैसे की दरकार है। परदेस में क्या करेगा। अभी-अभी तो बेटी की शादी की है, किराए के मकान में रहता है। बेटे को महाराष्ट्र सरकार ने सीट तो दी है, पर, खर्चा तो भेजना ही पड़ता होगा। दूसरी बेटी भी तो सर पर है। रिटायरमेंट का पैसा तो बड़ी बेटी के ब्याह में निकल गया होगा। ख़ैर जो है तो है। वह चलने लगे तो गुलामा काहवा लेकर आया। एक तोड़े में बादाम और अखरोट उन्हें थमाते हुए बोला, ''पण्डित जी तक पहुँचा सको तो मेहरबानी होगी।''

सारे रास्ते शकील अहमद सोचते रहे कि सदियों से आराम से रहते आए लोग ऐसे कैसे हो गए। यह उल्टी हवा कैसे और कहाँ से चली। उन्हें अपनी बीवी की बात याद आई कि कुछ लोगों को अपने लिए बहुत कुछ चाहिए होता है। पैसा, आराम, शौहरत और बेपनाह ताकत। यह लोग गिनती में चाहे कम होते हैं, पर होते बड़े खतरनाक हैं। दूसरों की ज़िन्दगियां जहर करने में इन्हें कोई वक्त नहीं लगता।

गुल जबीन है तो दसवीं पास पर बात बहुत पते की करती है। इसी अधेड-बुन में लाल चौक आ गया। वह बस से उतर गए। घर की राह ली कन्धे पर झौला काफी हल्का हो गया था। रास्ते में सुरक्षाकर्मियों ने तलाशी के दौरान, काफी सारे अखरोट-बदाम ले लिए थे, जो उन्होंने हंसते-हंसते दे दिए थे। वह सोचने लगे गुल जबीन से सलाह करके पण्डित को कुछ रुपये और सेब भी भेज देंगे। बन पड़ा तो खुद ही चले जाएंगे देने। आख़िर शाल

लेकर भी तो जाना है इस बार। पिछले साल गुलाम अहमद के हाथ कोई बीस-तीस भेजे थे। अपने तो उसने सौ तक बेच दिए पर मेरे पाँच ही निकाले। बाकि बापिस आ गए। खुदा जाने सच कह रहा था या झूठ, ''शकील भाई यार तुम्हारा काम लोगों को पसंद नहीं आया। बड़ी कोशिश की, बस दो चार पीस ही निकाल सका। तुम्हें एक मशवरा देता हूँ। अपने कारीगर बदल डालो और कढ़ाई के नमूने भी ज़रा नई तर्ज के बनाओ।'' शकील को उसकी बात अच्छी न लगी। उन्होंने मोजू बदलने की गर्ज से कहा- ''और सुनाओ घर में खैरियत है।'' हाँ सब ख़ैरीयत, अल्लाह का करम है।

''मिलते हैं फिर, खुदा हाफिज़।'' कह कर उन्होंने घर की राह पकड़ी रास्ते में सोचते रहे- कारीगर बदल दूं जिनकी कई पीढ़ियाँ हमारे साथ रही उन्हें बदल दूं। यह कैसे मुमकिन है। कुछ तो करना ही होगा बहुत सोचने पर उन्हें लगा कि काफी सालों से उन्होंने धन्धे पर ध्यान ही नहीं दिया। इमरान के साथ इतने उलझे रहे कि दूसरे किसी काम पर ध्यान ही नहीं दे पाए।

नवम्बर की एक शाम दो पेटियाँ सेब कुछ अखरोट और बादाम लेकर वह जम्मू में प्रेम जी मा०सा० के घर के बाहर खड़े थे। दरवाज़ा खुला तो दोनों देर तक एक दूसरे की बाहों में झूलते रहे थे। सामान बरामदे के एक कोने में रख भीतर कालीन पर बैठ गए। आँखों-आँखों में एक दूसरे के हालात की थाह ले रहे हैं जैसे खामोश एक दूसरे को देखते हुए से। शकील सोचते रहे कि इस डिब्बिया नुमा घर में कैसे गुज़र होती होगी इनकी। मौजी भी तो साथ है। बिमार को वैसे भी अलग कमरा चाहिए। प्रेम जी को लगता रहा कि शकील भाई परेशान है। वक्त से पहले बुढ़ा गए हैं। दोनों चुप थे और उनके बीच पसरी खामोशी शब्द तराश रही थी।

''यह सामान तुम्हारे मुज़ारों ने दिया है और यह रुपये भी।'' वह जेब में हाथ डाल ही रहे थे कि मा० सा० ने रोक दिया।

''बस-बस शकील भाई ज्यादा बनो मत। किसी ने कुछ नहीं दिया। वहाँ देने के हालात ही नहीं। तुम झूठ कह रहे हो। मुझे हीरालाल ने सब बता दिया है। वह पिछले हफ़्ते गाँव गया था। बेरंग लौटा है। आप यह सब अपनी जेब से दे रहे हैं।''

शकील अहमद निरुत्तर हो गए। सोच में गुम। बोले अच्छा, रख लो यह समझो कि बरसों-बरस तुमने मेरे बच्चों को पढ़ाया है। उसी का....मेरा मतलब है, हालात तो तुम्हारे अच्छे नहीं।

''आप और कितना छोटा करोगे मुझे। भीख देते तो भी ले लेता, बच्चों को पढ़ाने की उजरत, राम-राम, सोच भी नहीं सकता।''

शकील भाई को अपनी भूल पर पछतावा होने लगा। उन्हें इस स्थिति से उबारने के

लिए प्रेम जी ने घर की कुशलक्षेम पूछी तो वह बोले-"क्या बताऊं, बेटियां तो अपने घर में खुश हैं, पर इमरान....उसे तो हमने जैसे खो ही दिया है।"

"क्या वह अब भी...।"

नहीं अब तो वह आतंकियों के चगुंल से बच निकला है, पर है वह उसकी ताक में। इसलिए घर से निकलता नहीं। उस हादसे का उस पर बहुत गहरा असर पड़ा है। उसे मुखबिर समझ उन्होंने ऐसी यातनाएं दी कि उसकी रीढ़ की हड्डी में असर हो गया। डिप्रैशन में चला गया वह। घण्टों छत को देखता रहता है। उसे तो खिड़की से बाहर झाँकने में भी डर लगता है। ज़रा सी आवाज़ होती है तो सहम जाता है। कहते-कहते रोने लगे शकील। प्रेम जी ने उन्हों हौसला दिया, तो वह और बिखर गए। दस साल से बच्चे की यह हालत है। कई डाक्टरों को दिखाया पर वह जैसे नार्मल ज़िन्दगी में लौटना ही नहीं चाहता। इधर दुकान में भी घाटा हो रहा है। अकेले बने तो कैसे:..। वह चाय का खोसू हाथ में लेकर खिड़की से बाहर देखने लगे। प्रेम जी सोचने लगे कि इस आग में क्या-क्या जला, किस-किस को कितना झेलना पड़ा किसे कितने ज़ख्म मिले कौन-कौन कितना झुलसा, किसी के पास है इसका लेखा झोखा। नहीं न।

*

कहानी

पवित्तर-अपवित्तर

❑ आशा शैली

मीरा बहन के स्वभाव का ही असर था कि उनके बैठकघर में स्त्री-पुरुषों का जमघटा लगा रहता। हालांकि गाँव में अभी भी कुछ ऐसे पुरातन पंथी शेष बचे हुए थे जो उन्हें इस बात के लिए अक्सर ही जली-कटी सुनाते रहते कि उन्होंने ''नेम-धर्म को ताक पर धर दिया है। उनके घर की छूट के कारण हरिजनों के हौसले इतने बढ़ गए थे और वे हर किसी के घर को छूने की हिम्मत करने लगे हैं चाहे ब्राह्मण हो या राजपूत।''

कोई दूसरा बुजुर्ग बोल पड़ता, ''मीरा, बेटा हम सब का धर्म क्यों भ्रष्ट करने पर तुली हो ? तुम इन लोगों को घर में आने देती हो, चलो यह तो मान भी लें, पर इन्हें चाय-पानी भी पिलवाती हो। जूठ-परीठ...'' तो मीरा बहन का उत्तर होता।

''काका, अब हम चाय पीने लगे हैं तो ये हमारा मुँह देखें, वह क्या अच्छा लगेगा ? फिर वह धर्म ही क्या, जो ईश्वर के बनाए एक इंसान के छू लेने से भ्रष्ट हो जाए ? आप लोगों के इसी रवैये के कारण ही तो सरकार को कठोर निर्णय लेने पड़ते हैं। आप इन्हें भी अपने जैसा मनुष्य समझिए, फिर देखिए, आपको इन लोगों का कितना प्यार मिलेगा।''

कोई उत्तर न सूझ पाने के कारण बड़े-बूढ़े चुप लगा जाते, पर भीतर ही भीतर खौलते रहते। बड़े-बूढ़े ही नहीं, गाँव के नई पीढ़ी के कुछ लोग भी पुरानी सोच के मालिक निकल आते और मीरा से विनम्रता पूर्वक कहते, ''मैडम जी! और तो सब ठीक है लेकिन ये जो आप इन छोटी जात वालों को सिर पर चढ़ा रही हैं न, ये एक दिन आप ही के लिए सिरदर्द बन जाएँगे।''

मीरा बहन बड़े ध्यान से उनकी बात सुनती और हँस कर उत्तर देती, ''मैं तो भारतीय संविधान के अनुसार चल रही हूँ। आप लोग सोचते हैं कि मैं गलत कर रही हूँ तो अपने विधायक जी से कहिए, इस आशय का बिल पास करवा दें। तब मैं वैसा ही करूँगी जो संविधान में होगा। मेरी इन लोगों से रिश्तेदारी तो नहीं है, हाँ अपने देश के कानून से रिश्तेदारी अवश्य है। उसका पालन मेरे लिए बहुत आवश्यक है।''

कभी-कभी विनय भी कह देते, ''मीरा! क्यों सारे ग्रामीण क्षेत्र से पंगा लेती हो ? तुम्हें पता है, ये लोग तुम्हारे इस छुआ-छूत विरोधी कार्यक्रम के सख़्त विरोधी हैं।''

कार रोड, पो. लालकुआँ, जिला नैनीताल, 262402, मो. 09456711150 8958110859,
email-asha.shaili@gmail.com

''आप भी न...? इतना पढ़-लिख कर ....इतनी बड़ी पोस्ट पर रहकर...आप भी...?'' मीरा थोड़ी नाराज़गी दिखाती तो विनय उसे नम्रता से समझाने लगते, ''तुम गलत समझ रही हो। मुझे कोई ऐतराज़ नहीं। बल्कि मुझे तो अच्छा ही लगता है, जब तुम किसी की पेंशन लगवा देती हो, किसी के मकान के लिए लोन पास करवा देती हो, किसी की बेटी की शादी के लिए पैसा दिलवा देती हो। बहुत अच्छा लगता है जब लोग तुम्हें दुआएँ देते हुए अपनी आँखों के आँसू पोंछने लगते हैं, परन्तु सारे सवर्ण समाज का विरोध....'' वे बात अधूरी छोड़ देते और मीरा मुस्कुरा कर रह जाती।

उस दिन तो हद ही हो गई, जब गाँव की औरतों ने उसे सड़क पर घेर कर यह कह दिया कि ''मीरा बहन आप अब तक शहरों में रही हैं। गाँवों में सबके अपने देवी-देवता हैं। हमें बकरे काटकर घर शुद्ध करने पड़ जाते हैं। या तो आप इन डागियों (हिमाचल में छोटी जातियों के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला अपमान जनक शब्द) को अपने घर मत आने दें या हम आपके घर आना छोड़ देंगे।''

मीरा ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया था, ''आप लोग जैसा उचित समझें कर सकते हैं पर मैं अपने घर के दरवाज़े किसी के लिए बंद नहीं करूँगी।''

''यह मत भूलो, पंचायत का मेंबर भी तुम्हें हमने ही बनाया है। वह भी बिना चुनाव लड़े।'' एक महिला तुनक गई।

''आप लोगों ने मुझमें कोई योग्यता देखी होगी, वरना क्या मेरे सींग लगे हैं जो मुझे मेंबर बना दिया ? अब मैं इस योग्यता का भरपूर लाभ लूँगी भी और दलित समाज की सेवा भी करूँगी और आप लोगों ने यदि फिर से इस सवाल को उठाया तो मैं आप सब लोगों को सबक भी सिखा सकती हूँ, याद रखिएगा।'' और वह भिन्नाती हुई घर आ गई। परन्तु उसका गुस्सा बहुत जल्दी ही ठण्डा भी हो जाता था, सो घर की एक कप चाय से ही काम चल गया।

औरतें कोई कड़ा कदम उठातीं कि गाँव के पुरुषों ने उन्हें कानून का भय दिखाकर चुप करा दिया किन्तु वे भीतर ही भीतर कुढ़ती जरूर रहती थीं। इस पर भी काम पड़ने पर मीरा बहन उनके किसी भी काम के लिए मना नहीं करती थी। वह पंचायत की सदस्या जो थी। किसी के बच्चे के दाखिले के फार्म पर हस्ताक्षर करने हैं, किसी के घर में सुलभ शौचालय स्वीकृत कराना है। कहीं गोबरगैस का प्लांट लगना है। कहीं खण्ड विकास कार्यालय जाकर खाद, बीज और सेब, खुबानी के पेड़ों की पौध लानी है, कहीं कुछ तो कहीं कुछ।

मीरा बहन जहाँ जाकर खड़ी हो जाती, किसी की मजाल नहीं थी कि उनके काम को मना करदे, क्योंकि उनका कोई काम गलत होता ही नहीं था। बल्कि सच तो यह था कि हर उस शोषित-पीड़ित को, कि जिसका काम धनाभाव अथवा भ्रष्टाचार के कारण अटका होता उसे मीरा बहन के घर का रास्ता दिखाई दे जाता। चाहे वह सवर्ण हो अथवा दलित, मीरा बहन

के घर के दरवाजे सब के लिए खुले रहते। हाँ, जहाँ दलित समुदाय के लोग एक आस और विश्वास के लिए उनके पास आते, वहीं ब्राह्मण या राजपूत सोचते-झिझकते आते, कहीं मीरा बहन उनके काम को मना न करदें परन्तु ऐसा होता नहीं था। गाँव के समृद्ध और प्रतिष्ठित राजपूत परिवार की बहू-बेटी मीरा तो छुआछूत के विरोध में खड़ी थी, वह ऐसा कैसे कर सकती थी।

नियमानुसार उस दिन भी मीरा बहन की बैठक में बहुत भीड़ थी। कुछ लोगों के वृद्धावस्था के पेंशन फार्म भरने थे तो किसी की विधवा अथवा विकलांग पेंशन का। तीन दिन बाद पंचायत की बैठक होने वाली थी। पंचायत सदस्य होने के नाते ये सारे फार्म बैठक में पंचायत सविच के पास जमा कराने थे। हरिदास और पूरन फार्म भरकर आगे बढ़ाते जा रहे थे और मीरा बहन एक-एक फार्म को बड़े ध्यान से देखतीं, फिर हस्ताक्षर करके सरनू की तरफ सरकाती जा रही थीं। बीच-बीच में जहाँ उन्हें संदेह होता तो वे प्रार्थी से उसके विषय में पूछ भी लेती।

सारे फार्म निपट गए तो सरनू ने आवाज़ लगाई, ''कोई रह तो नहीं गया ? किसी का फार्म रह गया हो तो आ जाओ, फिर मत कहना।''

''नहीं सरनू भाई, अब कोई नहीं रहा।'' किसी ने पीछे देखते हुए कहा।

''चलो ठीक है, सरनू! सारे कागज़ उठाओ और बैग में रखकर घर ले जाओ। अब हम पंचायत की बैठक में मिलेंगे।''

''ठीक है मीरा बहन।'' हरिदास और पूरन भी उठ खड़े हुए, ''परसों मिलते हैं।''

''अरे बैठो भाई। चाय नहीं पियोगे क्या ? इतना थकने के बाद एक कप चाय तो बनती है न ?'' मीरा ने खड़े होकर शरीर को थोड़ा-सा इधर-उधर मरोड़ा और सामने दीवार घड़ी पर नज़र गड़ाते हुए बोली, ''अरे, बाप रे! पूरे तीन घण्टे हो गए बैठे हुए। सच में चाय तो बनती ही है।''

''नहीं मीरा बहन! गेहूँ की बुवाई के दिन हैं। आप जानती हैं, एक-एक पल कीमती है। चाय फिर किसी दिन ...'' हरिदास अब तक कागज़ समेट चुका था, ''चलो भाई पंचो। अब मीरा बहन को भी आराम करने दो।''

मीरा बहन, हरिदास, पूरन चन्द और सरनू राम, चारों ही पंचायत के सदस्य थे और अक्सर ही एक स्थान पर बैठकर अपना काम पूरा कर लेते थे। अब मीरा बहन की बैठक से अच्छी जगह कहाँ मिलती उन्हें ? हरिदास और सरनू राम दलित सदस्य थे और पूरन चन्द राजपूत बिरादरी से थे। पूरन चन्द के घर पर यह काम हो नहीं सकता था, ऐसा करने पर उनकी पत्नी हंगामा खड़ा कर देती और हरिदास या सरनू के घर सवर्ण लोग अपनी अर्जी लेकर आते तो उनकी नाक नीची नहीं हो जाती। अब रह गया मीरा बहन का घर, जो सबके लिए सहज सुलभ भी था और देर तक काम करने पर मीरा बहन का गोरखा चाय भी बिना

कहे ही ले आता था। आज तो भीड़ अधिक थी, सो गोरखा भीड़ छंटने की प्रतीक्षा कर रहा था परन्तु एक-एक करके सब बाहर निकलने लगे तो मीरा बहन ने भी पीछे मुड़कर खिड़की बंद कर दी। सामने रखी मेज़ को एक तरफ सरकाकर वे बाहर निकलने ही लगी थीं कि उनकी नज़र कोने में लाठी पकड़े खड़ी एक वृद्धा पर चली गई। मीरा बहन ठिठक कर खड़ी हो गई और आश्चर्य से उस वृद्धा को देखने लगी।

लम्बे कद की उस महिला ने ठेठ बुशहरी लिबास पहन रखा था। पूरी बाजू के कुर्ते पर मटमैले रंग का जीर्ण-शीर्ण दोहडू (लोई) जो उसको दायें कंधे और सीने से पैरों तक ढके हुए था। उस कम्बल को कसने के लिए कमर पर कसकर लपेटे हुए बदरंग गाची के कपड़े से कहीं-कहीं लाल रंग झलक रहा था। सिर पर उतना ही बदरंग दाठू (रूमाल), कानों के ऊपर झलकते सफेद उलझे बाल वृद्धा को और भी दयनीय बना रहे थे। हाँ कमर थोड़ी ही झुकी थी। अब मीरा बहन उसे हैरत से देख ही रही थी कि उस वृद्धा के होंठ थरथराए पर बोल नहीं फूटे। मीरा बहन ने वृद्धा के निकट आते हुए पूछा।

''कहिए।''

''मैं...मैं....'' वह कुछ बोल नहीं पा रही थी। तो मीरा बहन ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए फिर पूछा, ''आप कब से खड़ी हैं यहाँ ? आज भीड़ ज्यादा थी, मैं आपको देख नहीं पाई। पर आप खड़ी क्यों हैं, बैठ जाइए और बताइए मैं आपके किस काम आ सकती हूँ ?''

अब वृद्धा हाथ की लाठी को एक तरफ रखकर नीचे फर्श पर ही बैठ गई। वह सचमुच थक गई थी, पता नहीं कब से पीछे खड़ी थी। मीरा भी उसके समकक्ष फर्श पर ही बैठ कर बोली, ''बताइए माँ जी, अपनी बेटी ही समझिए।''

''म...म...मुझे चौहान की घरवाली ने तेरे पास भेजा है।''

''कौन चौहान ?''

''वह शाह...शाह गाँव के चरणसिंह चौहान की....छेउड़ी (घर वाली), वह रिश्ते में मेरी बहू लगती है। उसने कहा है कि मेरा काम तुम ज़रूर कर दोगी।''

''हाँ...हाँ....कहिए। क्या काम है ?''

''मेरी बुढ़ापा पिंसन...।''

''पर अब तक मैं वही तो कर रही थी, आप पीछे क्यों खड़ी रह गई ?''

''ये डागी...(वे हरिजन...)...'' वृद्धा के मुँह से रोकते-रोकते भी निकल ही गया। मीरा बहन के चेहरे पर तनाव उभर आया। मन तो किया कि बुढ़िया को धक्के देकर बाहर

निकाल दे, परन्तु उसका हुलिया देखकर मीरा को उस पर दया आ गई। फिर पति की बात याद आ गई।

...उस दिन भी उसे ऐसी ही किसी बात पर गुस्सा आ गया था तो विनय मुस्कुराते हुए सामने आ खड़े हुए, ''मीरा, मीरा गुस्सा थूक दो। तुम समाज सेविका हो, इस तरह क्रोध करना तुम्हें शोभा नहीं देता।'' मीरा के कुछ न बोलने पर वे पास आ खड़े हुए और उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, ''तुम इसे इस तरह से सोचो न, कि जाने कितनी सदियों से कुरीतियों के बंधनों में जकड़े ये लोग क्या इतनी आसानी से इनसे बाहर निकल पाएँगे ?'' और मीरा ने गुस्सा थूकते हुए एक फार्म उठा लिया और वृद्धा से पूछ-पूछकर भरने लगी। फार्म भरकर मीरा बहन ने वृद्धा को पकड़ा दिया।

''माँ जी, पटवारी से उलझना मेरे बस का नहीं है, यह फार्म मैंने भर दिया है। अब पटवारी से दस्तखत आप करवा लाइए। आगे का काम मैं करवा दूँगी। यदि पहले दे दिया होता तो बाकी फार्मों के साथ आपका फार्म भी चला जाता। अब ये पटवारी वाला काम आप कराके ले आएँ।'' वृद्धा फार्म लेकर लाठी टेकती बाहर निकल गई।

इस घटना को लगभग एक महीना गुज़र गया और मीरा बहन इस प्रकरण को लगभग भूल भी चुकी थीं कि एक दिन, दिन ढले वही वृद्धा लाठी टेकती मीरा बहन के घर की चढ़ाई चढ़ रही थी। लाठी के सहारे और हाथों से पहाड़ी को टटोलती, सीढ़ियाँ चढ़ती वृद्धा को देखकर मीरा बहन ठिठक कर खड़ी हो गई। वृद्धा टटोलती हुई ऊपर तक तो आ गई परन्तु आखिरी सीढ़ी पर उसका संतुलन बिगड़ गया, वह निश्चित ही लुढ़कती हुई पहाड़ी से सड़क पर जा पहुँचती यदि मीरा बहन ने उसे लपक कर पकड़ न लिया होता, ''सँभल कर माँ जी, सँभलकर।''

आँगन में पहुँचकर वृद्धा वहीं फर्श पर धम्म से बैठ गई तो मीरा बहन ने पूछा, ''इस समय कहाँ स आ रही हो, माँ जी ? आपको कम दिखाई देता है क्या ? सुबह आ जाती।''

''दिखाई ही कहाँ देता है बेटी, पटवारी के पास गई थी। कागज़ पर दस्तखत कराने।''

''तो पैदल क्यों आ रही हो ? बस तो कब की निकल गई है।'' पहाड़ी गाँवों की यही तो विडम्बना है, यहाँ भी पटवारखाना उस गाँव से 16 किलोमीट दूर था। इस गाँव के लोगों ने पंचायत प्रधान को वोट नहीं दिया था, सो प्रधान ने उन्हें सज़ा देने के लिए उनका पटवार सर्कल इतनी दूर करवा दिया था। वहाँ तक जाने के लिए बस का किराया बुढ़िया के पास नहीं था।

''पैसे होते तो क्यों जाती पैदल। आँख से अंधी हूँ इसलिए सुबह ही चली गई थी और अब वापस आ रही हूँ।''

''हो गए दस्तखत, लाइए।'' मीरा बहन ने हाथ आगे बढ़ाया तो बुढ़िया ने तह किया हुआ कागज़ कुर्ते की जेब से निकाल कर पकड़ा दिया।

''यह क्या, इसमें पटवारी के हस्ताक्षर तो हैं ही नहीं।''

''वह एक बोतल दारू माँग रहा है। इतने पैसे होते तो मैं अंधी 16 मील पैदल क्यों जाती, बस मं न जाती।'' और वृद्धा रोने लगी।

''चलिए कोई बात नहीं। मैं देख लेती हूँ पर अब रात होने वाली है आप जाएँगी कहाँ ? मेरा घर तो छुआ हुआ है। वरना आप यहाँ भी रह सकती थीं।''

''नहीं बेटी, मेरी आँखें खुल चुकी हैं। तुम्हारा घर तो मन्दिर से भी ज्यादा पवित्तर है। अपवित्तर तो हम लोग हैं, जो आदमी से नफरत करते हैं। मैं तुम्हारे घर रह तो सकती हूँ पर मेरे कपड़े तो बहुत गंदे हैं। मैं कब से नहाई भी नहीं हूं। तुम्हारा घर गंदा हो जाएगा, मैं जैसे-कैसे गाँव तक चली जाऊँगी।'' कहते हुए वृद्धा उठ खड़ी हुई।

''गाँव में आपके रिश्तेदार हैं क्या ?''

''हाँ बेटा! हैं तो।''

''तो रुकिए, मैं गोरखा आपके साथ भेजती हूँ।'' कह कर मीरा बहन ने गोरखे को आवाज़ दी, ''बहादुर! माँ जी को गाँव तक छोड़ आओ।''

मीरा बहन ने आँखों में आए आँसू पोंछे तो देखा, सामने बरामदे में खड़े विनय उसे प्रशंसा भरी आँखों से देख रहे थे। संध्या हो गई थी और वे बाहर बत्ती जलाने आए थे।

*

कहानी

मोम की मरियम

❑ गौरीशंकर रैणा

प्रकाश, पिछले दो घंटों से सम्मान उलट-पलट रहा था। अब तक उसने अलमारी का सारा सामान निकाल कर पूरे कमरे में फैला रखा था। किताबें, बहुत से पेन, पुराना टाइम-पीस, पुराने गैग्ज़ीन, स्मारिकारों ग्रीटिंग-कार्ड, फोल्डर्स, कुछ वाइन की बोतलें, कॉर्क, ओपनर करेक्टिंग फ़्लूड की छोटी-छोटी शीशियाँ-जिनका फ़्लूड सूख गया था, विदेशी सम्मेलनों में सम्मिलित होने हेतु दर्जन भर प्रवेश-पत्र, पुराने सिनेमा मैग्ज़ीन और....! सब फालतू।

उसने सारे कमरे में बिखरे पड़े सामान पर नज़र दौड़ाई। अपनी ढीली बनियान से ऐनक साफ की। अपने उलझे धूसर बालों में उँगलियाँ फेर लीं। फिर अपने पायजामे की दाहिनी जेब में से सिगरेट की डिबिया और लाइटर निकाला। सिगरेट सुलगाया। ऐश ट्रे ढूंढने लगा। ऐश्ट्रे तो नहीं मिली मगर अलमारी से निकाले गये समान से, बच्चों को कभी इनाम में मिला हुआ, कप दिख गया। उसी में राख डालता गया और सिगरेट पीते हुए कुछ सोचने लगा। फिर किसी खोई हुई चीज़ को शिद्दत से ढूंढने में तल्लीन हो गया।

कमरे के एक कोने में तीन अटैचियाँ रखी थीं। एक के ऊपर एक। बहुत बड़ी, उससे छोटी और बिल्कुल छोटी ब्रीफकेस जितनी। उसने सिगरेट बुझाया। एक-एक कर अटैचियां हटाने लगा। पहले सबसे छोटी, फिर बड़ी और आखिर में सबसे बड़ी जो एक ट्रंक के समान थी। पुरानी, मज़बूत और भारी। उसने इसे खोलना चाहा। इसलिए वह चाभी ढूंढने लगा। एक बड़ा सा चाभी का गुच्छा की-होल्डर से लटक रहा था। एक सुंदर छल्ले में चाभियाँ ही चाभियाँ थीं। उसने अटैचियाँ खोलनी शुरू कीं। ऊपर वाली अटैची में कोई खास सामान तो था नहीं मगर कुछ पुराने एल्बम रखे थे। उसने सोचा चलो कुछ पुरानी तस्वीरें ही देख लें। मगर फिर न जाने क्या सोच कर वे एल्बम वापिस उस अटैची में रखे और अटैची का ढक्कन बंद करके उसे एक तरफ रख दिया। दूसरी अटैची खोली तो उसमें छोटे तौलिए, ऐप्रन, दस्ताने आदि रखे हुए थे। इस अटैची को भी एक तरफ रखा। फिर गुच्छे में से सबसे नीचे वाली बड़ी अटैची की चाभी ढूंढने लगा। कोशिश के बाद चाभी मिल गई। ढक्कन उठाया तो देखा कि अटैची ऊपर तक कपड़ों और साड़ियों से भरी हुई है। उसने एक साड़ी हाथ में उठाई। वह इस साड़ी को लिफाफे में से निकालने ही लगा था कि सामने उसकी पत्नी उषा प्रकट हो गई, "क्या कर रहे हो। क्यों खोल रहे हो इसे। खराब हो जायेगी। अभी कुछ दिन पहले ही ड्राइक्लीन करा के रखी है। तुम्हें याद है, यह साड़ी खरीदने हम एक-साथ गये थे।"

''कुछ याद नहीं आ रहा है।''

''तुम्हें तो कुछ भी याद नहीं रहता। याद करो ना। यह साड़ी तुमने ही पसंद की थी। लखनऊ में।''

''वहाँ क्यों ?''

''क्योंकि कहाँ तुम्हारे छोटे भाई रहते थे, उन दिनों, और हम उनसे मिलने गये थे।''

''हाँ-हाँ याद आया। मगर इनको पहना भी तो करो न। नई की नई रखी है और यह इतने अच्छे-अच्छे सूट इन्हें कब पहनोगी ?''

''पहनूँगी, सब पहनूँगी। नाती-नातिन वाली हूँ। आये दिन कोई न कोई तीज-त्योहार होता ही है। अब देखो ना नातिन का पहला जन्म दिन आने वाला है उस दिन क्या पुरानी साड़ी पहन कर जाऊँगी ?''

''नहीं, मैंने कब कहा।''

''कल को बेटे की दुल्हन देखने जाऊंगी, तब ?''

''तब भी नई साड़ी पहनना। इतनी तो है इस अटैची में और उस कबर्ड में भी। पूरी अलमारी भरी पड़ी है कपड़ों से।''

''मगर सभी चीज़ें अपने लिए नहीं है। बाँटने के लिए भी रखी हैं। ये जो पीले लिफाफों में किस्म-किस्म के नये सूट रखे हैं यह सब उपहार में देने के लिए रखे हैं। साल भर में पूरे गिफ्ट निकल जायेंगे। फिर यह अटैची एक तरह से खाली ही हो जायेगी। फिर जो मेरी तीन-चार साड़ियाँ रहेंगी उन्हें कबर्ड के हैंगरों में टाँग दूँगी।''

''और फिर तुम फिर से चाँदनी चौक जाओगी और यह अटैची फिर से भर दोगी। जानता हूँ तुम्हारी दरियादिली को। सबके पास गिफ़्ट लेकर पहुँच जाती हो।''

''तो इसमें बुरा क्या है ?''

''मैंने कब कहा। अपनों को अपने उपहार न दें तो कौन देगा। मैं जो कपड़े पहनता हूँ वह भी तुम ही खरीद कर लाती हो। कितना ख्याल रखती है तू सबका, मेरी मरियम।''

उषा थोँड़ा मुस्कुराई, थोड़ा शरमाई और फिर दूसरे कमरे में चली गई। प्रकाश ने डिबिया में से एक और सिगरेट निकाला।

उसे सुलगाया और कमरे में बिखरी हुई चीज़ों को देखने लगा। रात के साढ़े-ग्यारह बज रह थे। अपार्टमेंट के लगभग सभी फ़्लैटों की रोशनी बुझ गई थी। बाहर अमावस का सा अंधेरा था।

उसकी नज़र एक ट्रैवल-मैग्ज़ीन पर पड़ी। उसने सिगरेट के दो-तीन कश लिये और मैग्ज़ीन को उठाया। बल्ब की रोशनी में मैग्ज़ीन के पन्नों पर कई सुन्दर, रंगीन झिलमिल टूरिस्ट डेसटिनेशन दिख रहे थे। वह पृष्ठ पलटता रहा। एक पृष्ठ पर हॉलीडे पैकेज का एक बड़ा-सा विज्ञापन दिया था- सिंगापुर पाँच दिन का टूर। चार रात सिंगापुर में, ब्रेकफास्ट, सिटी टूर, एयरपोर्ट ट्रांसफर। योरुप पैकेज, इकस्कलूसिव टूर पैकेज। दूसरा विज्ञापन डोमस्टिक हॉलीडेज का था। गोवा, केरल, कश्मीर, शिमला-मनाली, दारजीलिंग...। ''हाँ यह ठीक रहेगा। इस बार मैं ऊषा को दारजिलिंग जरूर ले जाऊँगा। कल ट्रैवल एजेंसी को फोन करूँगा और दफ्तर से आते ही उषा को सरप्राइज़ दूँगा...वह सोचने लगा। उसने ओठों में दबा सिगरेट निकाल कर इनामी-कप में बुझाया। शेल्फ से लेटर-पैड उठाया पेन ढूंढ़ा और टूर एजेंसी का नम्बर व पता नोट करने लगा। फोन नम्बर लिख ही रहा था कि पीछे से बेटे की आवाज़ सुनाई दी।

''पापा, अभी तक सोये नहीं।''

''हाँ यह नम्बर लिख लूँ'' प्रकाश ने अपने बेटे राजू से कहा, जो अब सामने खड़ा था।

''यह आपने कमरे का क्या हाल कर रखा है। पूरा सामान बिखरा पड़ा है। और यह, यह मम्मी की अटैचियाँ क्यों खोल रखी हैं ?''

''मैं उससे पूछ रहा था कि...''

''किससे ?''

''तुम्हारी मम्मी से।''

''बट शी इज़ नो लॉगंर अलाइव। वह इस दुनिया में है ही कहाँ।''

'' हाँ मगर...''

''कोई, मगर नहीं, उसको गये हुए उसका अंतिम संस्कार भी...''

प्रकाश, बेटे की तरफ देखता रहा। निरुत्तर। ऐनक के पीछे, अन्दर धंसी हुई, आँखों से झरझर आँसू बहने लगे।

*

कहानी

विरेचन

❑ रजनी कुमारी

सुबह-सुबह आँखें मलते हुए लगभग नींद में ही सुरिन्दर कमरे से बाहर निकला और शीला को पुकारने लगा।

'शीलाऽ.... ओऽ.... शीला (इधर-उधर ताकते हुए) कहाँ मर गयी। (अंतिम शब्द जो सुरिन्दर ने लगभग मुँह में ही चबाए थे, शीला के कान में पड़ ही गए)'।

''क्या कहा आपने ? आप तो दिल से चाहते हैं कि मैं मर जाऊँ मगर खाल खींचने वालों के कहने से भैंसें मर तो नहीं जाया करती।'' (शीला पूरे होशोहवास में रसोईघर से बाहर निकली थी)

''उफ, उफ, उफ, सही बात तो तुम्हारे कान पर भी नहीं रेंगती और मैंने अगर मज़ाक में थोड़ा कुछ कह दिया वो भी धीरे से, उसे कैच करने में तो तुम धौनी की स्पीड को भी मात देती हो। और जब तुम अच्छे से जानती ही हो कि मुझे इस तरह की कहावतें बिल्कुल भी पसन्द नहीं, जलातीं है मुझे ऐसी बेहूदा उक्तियाँ तो क्यों तुम बार-बार इन्हें हथियार बनाती हो ?''

शीला तपाक से बोली-

''ताकि, तुम जलो। जितना मैं कुढ़ती हूँ तुम भी उतना ही कुढ़ो।''

सुरिन्दर हतप्रभ खड़ा है। शायद उसे ऐसे उत्तर की बिल्कुल भी आशा नहीं थी। थोड़ा नरम पड़ते हुए केवल इतना ही कह पाया-''शीला आखिर तुम क्या चाहती हो। मुझसे भूल कहाँ हो जाती है। मैं खुद क्यों नहीं समझ पाता हूँ अपनी गलतियों को।''

शीला ने गुस्से में सिर्फ इतना कहा-

'अपनी गलतियाँ किसी को नहीं दिखती' और धनधनाती चली गई।

पी.एच.डी. शोधार्थी, जम्मू विश्वविद्यालय, मोबाईल-8715840064

एक बार भी सुरिन्दर की बात नहीं सुनी जो कहना चाह रहा था कि–'तुम्हें भी तो नहीं दिखती अपनी गलतियाँ।' खैर बात को तूल देने का कोई फायदा नहीं यह सोचकर सुरिन्दर पास पड़ी कुर्सी पर ही बैठ गया। अपने कमरे में निकलकर वह शीला को क्या बोलने वाला था यह भी भूल गया।

आजकल उसे भूलने की तो जैसे बीमारी-सी होती जा रही है। कक्षा में पाश्चात्य काव्यशास्त्र पढ़ाते समय प्लेटो का अनुकरण सिद्धान्त अरस्तु के अनुकरण सिद्धान्त में चला जाता है और अरस्तु का प्लेटो में। विरेचन की तो बात ही मत पूछिए। आजकल पढ़ाते-पढ़ाते एकदम भावुक हो उठते हैं।

बच्चों से पूछते है-बताओ विरेचन सिद्धान्त क्या है ?

कोई बोलता–'सर मनोविकारों का उचित शुद्धिकरण।'

मनोविकार शब्द सुनते ही चिढ़ जाते हैं एकदम। फिर गुस्से में बोल पड़ते हैं 'कौन करेगा इन मनोविकारों का शुद्धिकरण।'

कुछ देर तक सर के गुस्से को देखकर कोई नहीं बोलता, फिर अचानक कोई बोलता है– 'सर काव्य', इस पर सर जी पूरे दार्शनिक हो उठते हैं-'अज्ञानी हो तुम सब, एक अकेला काव्य क्या करेगा। किताबों में जो है वही रहेगा। असल ज़िन्दगी में नहीं उतरता तुम्हारा यह काव्य। नालायको विरेचन एक सिद्धान्त है, सिर्फ एक सिद्धान्त, बस और कुछ नहीं। जब तक विरेचन के साथ सिद्धान्त जुड़ा रहेगा तब तक तुम सब भी सिर्फ इसे इतना ही समझोगे।'

सब बोल उठते–'सर क्या मतलब।'

सर की आवाज़ कहीं दूर गहराई से आती सुनाई देती–

'यह दर्शन की बातें हैं तुम्हारी समझ में नहीं आएँगी अभी।'

'पर सर हम तो काव्यशास्त्र पढ़ रहे हैं यह दर्शन क्या है।'

तब जाकर सुरिन्दर को एहसास होता कि मैं फिर उलझ गया।

उफ यह उलझने! क्यों मुक्त नहीं हो पाता वह इन उलझनों से। जितना वह उलझा हुआ है उतनी ही तो शीला भी उलझी है, उसको भी तो चैन नहीं। घर से दफ्तर के लिए निकलती है तो उसकी सारी कुढ़न उसके साथ हो लेती है और फिर इसी कुढ़न को प्रसाद की तरह सबको बाँटती फिरती है। एक दिन तो हद ही हो गई, अपनी कलीग प्रभा से ही उलझ पड़ी। प्रभा का दोष सिर्फ इतना था कि उसने शीला का हाल-चाल पूछते हुए इतना भर कहा कि –

'घर में सब ठीक तो है न ?'

बस फिर पता नहीं इस बात में से कौन सी बात उसे चोट कर गई, फिर जलती हुई लकड़ी की तिड़कन की भांति तड़, तड़, तड़ फूटने लगी– 'ठीक है का क्या मतलब है, सभी तो अपने–अपने घर अपने तरीके से ठीक ही होते हैं। वैसे प्रभा तुम मेरा हाल पूछना चाहती हो या फिर घर का। अगर जानना ही चाहती हो तो अच्छे से कान खोलकर सुन लो। हाल ज़िन्दा चीज़ों का पूछा जाता है मरी हुई चीज़ों का नहीं। घर ज़िन्दा नहीं होता समझी तुम।'

सभी देखने–सुनने वाले हैरान रह गए। सब साथ मिलकर काम करते थे किन्तु शीला का ऐसा रूप आज तक किसी ने नहीं देखा था और न ही आज का शीला का यह 'दर्शन' ही किसी की समझ में आ पाया था। सभी मक्खियों की सी भिनभिनाहट करते हुए अपने–अपने काम पर मंडराने लगे थे। कुछ एक की भिनभिनाहट थोड़ी–थोड़ी शीला के कान में पड़ रही थी कि 'लगता है आजकल झगड़कर आती है घर से ?'

अब ऐसा भी नहीं है कि सुरिन्दर और शीला आपस में प्यार नहीं करते। इसी प्यार की खातिर तो दोनों एक सूत्र में बंधे थे। आज शादी के सात साल बाद भी वे उतना ही चाहते हैं एक दूसरे को। किन्तु गड़बड़ कहां है, कैसे हो जाती है, क्यों हो जाती है यह दोनों में से एक को भी नहीं मालूम। कभी–कभी तो बिल्कुल छोटी सी बात पहाड़ बन जाती है। जबकि वे आपस में झगड़ना नहीं चाहते हैं फिर भी जब झगड़ने लगते हैं तो ऐसा लगता है फिर कभी बात नहीं करेंगे।

अभी कुछ ही दिन पहले की बात है सुरिन्दर और शीला का एक साथ घर जाने का प्रोगाम बन गया था। सुरिन्दर छुट्टी के बाद स्कूटर लेकर सीधा शीला के दफ्तर पहुँच गया। दोनों हंसते बतियाते घर पहुँचे और हाथ–मुँह दोकर फ्रेश हो गए। अब चाय की बारी थी। बहुत बार सुरिन्दर भी चाय बना दिया करता है पर आज शीला चाय बनाने लगी थी। सुरिन्दर पंखे का बटन दबाकर बैड पर लेट गया। शीला किचन में और सुरिन्दर बैडरूम में फिर भी दोनों आपस में बतियाते जा रहे थे। तभी शीला ने आवाज लगाई –'सुनो ज़रा इधर आना ?

उधर से आवाज़ आई–'क्या है ?'

'डिब्बे में चीनी खत्म हो गई है, ऊपर ताक पर पड़े टीन में से निकाल दो न।'

फिर आवाज़ आयी–'खुद निकाल लो न ?'

'आपको पता तो है कि मेरी पहुंच से बाहर है ?'

'तो नीचे कुर्सी या मेज़ रखकर निकाल दो न।'

'तो अगर आप एक मिनट के लिए उठ जाओगे तो कुछ बिगड़ जाएगा क्या ?'

'जब मैं घर में नहीं होता हूँ तो कैसे निकाल लेती हो।'

'अब जब आप घर में हो तो आप घिस जाओगे क्या'?। फिर इस मैं-मैं, तू-तू में मायके और ससुराल तक को घसीटा गया। न जाने कब तक बहस चलती रही। चाय की बात छोड़िए, रात का खाना तक नहीं खाया। दोनों भूखे पेट एक ही बैड पर पड़े रहे परन्तु दुश्मनों की तरह दो मोर्चों पर। एक बैड दो मोर्चे।

कभी सुरिन्दर के मोबाइल की घण्टी बजती तो उसके दिमाग का बोझ हल्का होने लगता। जेब से फोन निकालते-निकालते सोचने लगता कि किसी दोस्त का होगा या फिर किसी विद्यार्थी का। दोस्त हो तो उसके दिल का बोझ हल्का हो और यदि विद्यार्थी का होगा तो और भी अच्छा क्योंकि उसके सिद्धान्तों का बाहर निकलना भी तो जरूरी है।

पर जब कभी शीला का फोन आ जाए तो देखते ही चिड़चिड़ा-सा हो उठता है। दिल से तो नहीं चाहता है फिर भी न जाने क्यों ऐसा होता है।

फोन उठाते ही बोल उठता- हाँ बोलो! क्या है, फोन क्यों किया। जब तुम्हें मालूम है कि मैं व्यस्त होता हूँ तो बार-बार फोन करने की क्या आवश्यकता। जब कोई जरूरी काम हो तभी फोन किया करो।

वह फोन काटना भी चाहता है पर शीला की बात सुने बिना काट भी नहीं पाता। फिर पूछ लेता-'अब बोलो भी ?' शीला सब सुनने के बाद इतना ही कहती-'कुछ नहीं' और तड़ाक से फोन रख देती। तब सुरिन्दर को लगता मानो शीला ने फोन उसके कान पर ही पटक दिया हो। तब वह मन ही मन कसम खाता की आइंदा वह शीला से अच्छे से बात करेगा। लेकिन कुछ ही दिनों में सब पहले जैसा हो जाता।

रात को पाश्चात्य काव्यशास्त्र की किताबें पढ़-पढ़ कर सुरिन्दर थक चुका था उसकी नींद भी पूरी नहीं हो पायी थी और सुबह उठते ही शीला की फटकार सुनकर कुर्सी पर बैठा, सुरिन्दर ख्यालों में डूबते-उतराते टेबल पर गर्दन रखकर नींद की नदी में गहराता जा रहा है। शीला की बातें और पाश्चात्य काव्यशास्त्र दोनों गडमड होते जा रहे हैं। नींद के उस पार गहरे गह्वर में से सुरिन्दर बोल रहा है और इस पार से शीला। आज सुरिन्दर के सामने उसके विद्यार्थी नहीं शीला है बीच में क्लासरूम नहीं एक गहरी नदी है।

शीलाऽ ओ शीला! सुनो तो ज़रा, इस लड़ाई झगड़े में क्या रखा है ज़िन्दगी जीने के लिए बार-बार नहीं मिलती। विरेचन करते हैं मनोविकारों का उचित शुद्धिकरण।

क्या कहा आपने-सच! मैं यही तो चाहती हूँ। अब भी समय है सुरिन्दर, अब नहीं

तो कभी नहीं। उम्र का सूर्य ढलने के बाद तुम्हारे इस विरेचन का कोई मतलब नहीं रहेगा। सुना आपने ?

सुरिन्दर को जैसे झटका लगा हो।

'हाँ-हाँ पर शीला कौन करेगा इन मनोविकारों का शुद्धिकरण।'

'मैं करना चाहती हूँ, तुम भी चाहते हो न।'

'हाँ क्यों नहीं। कौन नहीं बसाना चाहता अपना घर, पर शुरुआत कौन करे ? कैसे करे ? तभी दोनों के चेहरे पर उलझन की लकीरें खिंचने लगती हैं। एक दूसरे की उपस्थिति का एहसास किए बिना सोचने की मुद्रा में व्याकुल होकर दोनों बड़बड़ाने लगते हैं। पता ही नहीं चलता कि कौन क्या बोल रहा है सिर्फ शब्द ही गूंजते सुनाई पड़ते हैं- 'विरेचन, विरेचन उफ यह विरेचन।'

'नहीं, नहीं यह सिद्धान्त है'

'नहीं, नहीं दर्शन है'

'नहीं सिद्धान्त, नहीं दर्शन'

'सिद्धान्त'

'दर्शन'

अचानक रसोई में शीला के हाथ से कोई बर्तन छूटने पर सुरिन्दर का सपना भी टूट गया। पसीने से लथपथ सुरिन्दर चारों ओर निगाह घुमाता है-वही बेजान घर, विरेचन कहीं नहीं है, दर्शन कहीं नहीं है। चारों तरफ दीवारों के सिद्धान्त ही सिद्धान्त हैं।

*

अध्यक्ष मंडल

डॉ० संजना कौल :-

इस कहानी गोष्ठी की पहली कहानी रजनी कुमारी की कहानी थी। 'विरेचन'। यह मेरे लिए बड़ा सुखद आश्चर्य है कि बड़ी कसी हुई भाषा में अपनी छोटी सी उम्र में उन्होंने बता दिया कि दर्शनशास्त्र जब हमारी जिंदगी से दूर हो जाता है तो क्या होता है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि, इसी कहानी से स्पश्ट हो जाता है कि जो कुछ हम पढ़ें, दर्शनशास्त्र पढ़ें, काव्यशास्त्र पढ़ें, या भावनाओं की शुद्धिकरण पर विरेचन सिद्धांत पढ़ें। उसे सिर्फ सिद्धांतों में न देखें बल्कि उसे अपनी जिंदगी में भी उतारें। कहानी बहुत अच्छी थी। भाषा बहुत सधी हुई है। इसलिए मैं लेखिका को अपनी ओर से सलाह दूंगी कि वह पढ़ाई-लिखाई जारी रखें। किताबें पढ़ना जारी रखें। उर्दू के जाने-माने लेखक हैं, काज़ी अब्दुल सत्तार। कोई दो साल हुए मैंने उनका इन्ट्रव्यु पढ़ा था। उन दिनों वह दारा शिकोह पर उपन्यास लिख रहे थे। उस साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि मैं पहले हजार जुमले पढ़ता हूं उसके बाद एक सौ जुमले लिखता हूं। लेखिका को मेरी ओर से बधाइयां और मुझे उम्मीद है कि वह आगे भी इसी प्रकार कहानियां लिखेंगी। गौरीशंकर रैणा ने कहानी पढ़ी 'मोम की मरियम'। चित्रात्मक शैली है। सबसे बड़ी खासियत है गौरी शंकर रैणा की कहानी में कि एक के बाद एक तस्वीरें हमारे सामने आती हैं। चित्रात्मक शैली कहेंगे। हिन्दी कहानी में बहुत कम लोग इस शैली का प्रयोग करते हैं। मध्यम वर्ग का परिवार है। एक के ऊपर एक अटैचियां जैसे अपने घरों में भी हम देखते हैं। पुराना एलबम है। पुरानी तस्वीरें हैं। पुरानी यादें हैं, स्मृतियां हैं। एलबमें दूर हो रही हें। बल्कि कैद हो रही हैं अलमारियों में किताबों की तरह क्योंकि उनकी जगह मोबाइल कैमरे आ गये हैं। यह शैली बहुत अच्छी लगती है। विज्ञापन है वहां पर। यानि किस प्रकार सब कुछ अपने अंदर लपेटता हुआ बाजार है। गौरीशंकर रैणा ने किसकी तरफ इशारा किया है। लेकिन कहानी अंत में अतिनाटकीयता का शिकार हुई है। इसकी तरफ गौरीशंकर रैणा ध्यान दें। कुल मिलाकर कहानी अच्छी है। कहानी में पठनीयता भरपूर है।

आशा शैली ने कहानी पेश की 'पवित्र-अपवित्र'। यह हमारे समय की बहुत बड़ी विडंबना है। अपनी आंखों से कई बार देखा है। लेकिन कहानी में भारतीय संविधान है। छुआछूत का विरोध है। धनाभाव एवं भ्रष्टाचार से छुआछूत नहीं फैलता। उसके कई कारण हैं। और यहां एक बार फिर प्रेमचंद की याद आती है। प्रेमचंद आज भी छुआछूत और अस्पृश्यता को लेकर उतने ही बड़े समाजशास्त्री हैं। उतने ही बड़े मनोविज्ञानिक हैं। जितने अपने समय में होते थे। लेखिका को मेरा सुझाव है कि वो अंतर्दृष्टि से काम लें। अंतर्दृष्टि का अभाव कहानी को खत्म कर देता है। कहानी अतिविस्तार का शिकार हो गयी है। लेकिन एक कोशिश है। इन्सानियत की कहानी है। इन्सानी सरोकारों की कहानी है। इसके लिए उन्हें बहुत-बहुत मुबारकबाद।

प्रो० किरण बख्शी की कहानी 'अलाव में' सबने सुनी। किरण जी जब कुछ लिखती हैं। दिल से लिखती हैं। वो जागीरदारों पर लिखती हैं। दिल से लिखती हैं। यहां पर उन्होंने, आप सबने सुन लिया होगा। प्राकृतिक दृश्य है। और बढ़ती हुई महंगाई है। इसके साथ ही एक और चीज़ है तरह तरह के दृश्य हैं। कहानी में Ecology आ गयी है और हिन्दी में आजकल एक और अध्ययन शुरू हो गया है Eco-criticism. ecology Criticism. ecology के साथ आज साहित्य भी आ गया है और यह कहा जाता है कि साहित्य में जब Ecology आ जाती है तो वो साहित्य बहुत समृद्ध बन जाता है। पूरी कहानी माहौल में डूब कर लिखी गयी कहानी है। एक-एक चीज को बड़ी बारीकी से जांचा गया है। देखा गया है। शाल का कारोबार जो करते हैं इसे वही समझ सकते है। कश्मीरी शाल का कारोबार किस प्रकार तबाह हो गया। उसके विस्तार में जाने का यहां पर समय नहीं है। अपने समय से मुठभेड़ की है किरण जी ने इस तरह से नहीं कि कोई चिप्पी लगाई। यह उस कहानी से फूट पड़ती है अपने आप। यही एक खासियत है इस कहानी की। उपदेश न देना बल्कि कहानी से फूट पड़ना। जो अपने आप फूट पड़ती है कोई भी चीज़, वो कहानी सफल कहानी होती है और हमारे समय का एक जलता हुआ सवाल। सदियों से साथ रहते हुए लोग अलग हो गये। बिछुड़ गये उसी तरह जिस तरह 1947 में पंजाब की संस्कृति तबाह हो गयी। बंगाल की संस्कृति तबाह हो गयी। यह कहानी एक खतरे की घंटी की तरह उभर कर आती है कि कहीं हम दूसरे देश विभाजन की ओर तो नहीं जा रहे। लेखिका को बहुत बहुत बधाइयां! प्यार! क्योंकि यह मेरी बहुत ही अच्छी व प्यारी दोस्त हैं।

शांत साहब के क्या कहने। हम जब कालेज में पढ़ा करते थे। शांत साहब उस से भी कहीं पहले से लिख रहें हैं। शांत साहब को श्रीनगर का वह काफी हाऊस जरूर याद होगा। यहां वो, हम यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी और हरे कृष्ण जी कौल बैठते थे और शांत साहब से बहुत कुछ सीखते थे। उनसे हमने बहुत कुछ सीखा। इसलिए अध्यक्ष मण्डल की गरिमा को बनाए रखते हुए मैं जो कुछ भी कहूंगी इसे आप मेरी टिप्पणी ही समझें और गुरु शिष्य के बीच का परिसंवाद भी समझें। क्योंकि शांत साहब गुरु हैं और गुरु रहेंगे। शांत साहब की कहानी थी ''एक बैठक की शव परीक्षा''। ''दिल्ली में एक मौत'' जो कमलेश्वर ने कहानी लिखी थी जब महानगर में कोई मौत होती है तो कितनी संवेदनहीनता देखने को मिलती है। यह उसी कहानी की याद दिलाती है और उसी थीम पर शांत साहब ने नये ढंग से कहानी लिखी। एक आदमी इस दुनिया से चला गया है। तीन औरतें है और कुछ लोग हैं जो आपस में बातचीत कर रहे हैं। जैसे कुछ हुआ ही नहीं और इसके बाद अपने कपड़ों के बारे में बात करना या यह जो विडंबना है कि यह जो कमरा है इसका Dimention कितना है। गह महानगर की प्रकृति होती है वहां पर लोग इसी प्रकार संवेदनहीन हो जाते हैं। वहां छोटे शहरों की मुहल्लेदारियां नहीं होती। अब तो वह चीजें छोटे शहरों से भी गायब हो गयी हैं। इसके इलावा महानगरों में रहने वाले मध्यम वर्गीय लोगों का पाखण्ड। आरती उसके बाद फूलों की माला यह भी जरूरी है क्योंकि अपनी जड़ों से अलग होना

इतना आसान नहीं होता। इसे आडम्बर कह सकते हैं या अपने संस्कारों से आसानी से मुक्ति न पाने की मजबूरी। शांत साहब की भाषा चुस्त दुरुस्त भाषा है जो वर्षों के तजुरबे और बरसों की चलती रही कलम का नतीजा है। चुटकियां भी ली हैं शांत साहब ने वहां की सामाजिक व्यवस्था पर। वहां के लोगों पर। लेकिन भाषा में चुटीलापन नहीं आया इसके साथ ही भाषा में जो हिन्दी कहानी का एक बड़ा संकट बन गया है। भाषा में पठनीयता का अभाव है और यह शांत साहब की परेशानी नहीं हमारी परेशानी है। क्या वजह है कि शांत साहब जैसे दिग्गज चुटीली भाषा का इस्तेमाल न करें और उनकी कहानी में वो पठनीयता न हो। जो ''दिल्ली में एक मौत'' में हमें मिलती थी। गुस्ताखी माफ शांत साहब।

डॉ० ओम गोस्वामी :-

कल कुंजी भाषण में भाई नरेन्द्र मोहन ने कुछ महत्त्वपूर्ण बांतों पर प्रकाश डाला। इस संभाषण के अंत में उन्होंने कामना व्यक्त की थी मंटो आए और आज के परिदृश्य पर दुबारा कहानियां लिखे। इस विषय में मैं मानता हूँ कि जो भी लेखक कहानियां लिख रहे हैं वो मंटो का अनुसरण कर रहे हैं। हर एक लेखक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक शोषन मुद्दों को कहानियों में उठाता चला आया है। मेरी दृष्टि में और भी और मेरी समझ में भी जिन लेखकों ने कहानी कहने के लिए कलम उठाई है उन लेखकों ने सदा मंटो होने का जोखिम उठाया है। हर एक कहानीकार अदृश्य सत्य को उभार रहा है। लेखक के समक्ष एक स्पश्ट अभिप्राय होता है जो उसका कथानक बन कर सामने आता है। भाषा मात्र माध्यम होती है। हिंदी हो या उर्दू, डोगरी हो या पंजाबी, गोजरी हो या कश्मीरी। मंटो उर्दू के कहानीकार थे। जबकि प्रेमचंद पूरी समर्थ से दो भाषाओं में कलम चलाते थे। उर्दू और हिन्दी में। मैं तो कहता हूँ कि मंटो आए तो प्रेमचंद भी आए। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी भी आए, सच्च को सच्च कहने वाले कहानीकारों की लम्बी कतार है। वे सब आएं। नयी कहानी को आंदोलन का रूप देने वाले कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेंद्र यादव भी आएं। मैं मानता हूँ कि यह तमाम गणमान्य कथाकार चाहे शारीरिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं किंतु वैचारिक दृष्टि से वे आज के कहानीकारों की पीढ़ी के समक्ष प्रेरक स्तंभ बन कर खड़े हैं।

यह नयी पीढ़ी के लोग उसी विरासत और प्रेरणा को लेकर आगे बढ़ रहे हैं जिसे हम भारतीय कहानी कहते हैं। आज का कहानीकार उस आमूल्य विरासत का आलम्बरदार है। यह लोग जो परम्परा की कड़ियां हैं वस्तुतः प्रेमचंद और चंद्रधर गुलेरी की। विरासत की बात करें तो हम भारतीय कहानी की उस परंपरा और अतीत को कैसे भूल सकते हैं जब कथा सरित सागर की रचना हुई थी। कथा सरित सागर मेरे जैसे कथा प्रेमियों का प्रेरणा बिंदु है। हजारों वर्ष पूर्व रची गयी वह पुस्तक जो कहानियों का समुद्र है। आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी तब रही होगी। आप उसकी कहानियों के पात्रों के नाम जो चूंकि प्रायः और संस्कृत और पिशाचीनिष्ठ हैं बदलकर आज के जमाने के नाम रख दें तो आपको पहचानना मुश्किल

हो जाएगी कि यह कहानी आज लिखी गयी है या तब लिखी गयी थी। बहुत से अजीब-अजीब नाम हैं। चित्रकारी, कालरात्री यह महिला पात्रों के नाम है। इन नामों को बदलकर आज के नाम रख लें तो आपको लगेगा कि आज के Short Story Writer ने यह कहानियां लिखी हैं किसी दूसरे ने नहीं। पूरे सरोकार हैं, वही समस्याएं हैं जो आज हैं। कमाल की किताब है। वही समाजिक समस्याएं है जो आज भी हम देखते हैं। उस दौर में भी थी और सोमदत्त भट्ट ने उन्हें कितनी निपुणता से निभाया था। उन कहानियों में रोचकता का अंश आज की कहानियों से कम नहीं है। कुछ कद्र ज्यादा ही होगा इसलिए मैं नरेन्द्र मोहन की बात को आगे बढ़ाते हुए यही कहूँगा कि सोमदेव भट्ट भी आएं। आएंगे जरूर आपके और दूसरे कहानीकारों के रूप में। बुद्धिजीवियों का यह काफिला यूँ ही चलता रहेगा। मित्रों इन वर्षों में जम्मू के लेखन ने तेजी से विकास की यात्रा की है। सिर्फ यही नहीं कि इसमें पुस्तके अधिक आने लगी हैं बल्कि उनका स्तर भी ऊपर उठा है। खुशी की बात है कि कुछ मील के पत्थर भी स्थापित होने लगे है। चंद महीने पहले जम्मू की कहानीकार योगिता ने जब अपने एक कहानी संग्रह पर ज्ञानपीठ का युवा पुरस्कार प्राप्त किया तो हमारा सिर गर्व से ऊंचा उठ गया। इस प्रकार जब चंद रोज पहले पद्मश्री पद्मा सचदेव ने सरस्वती सम्मान पाया तो यह बात स्पष्ट हो गयी कि जम्मू का लेखक अब ज्ञानपीठ और बिड़ला फाऊंडेशन के पुरस्कारों के भव्य भवन पर दस्तक देने लगा है। पद्मा सचदेव डोगरी एवं हिन्दी की प्रतिष्ठित लेखिका हैं। कविता के लिए उन्होंने डोगरी को चुन रखा है तो साक्षात्कार और कहानी के लिए हिन्दी को। बल्कि मैं तो मानता हूं कि योगिता जी और पद्मा जी को मिले पुरस्कार जम्मू-कश्मीर की प्रतिभा को मान्यता मिलने के प्रमाण हैं। प्रेमचंद, गुलेरी, और मंटो इन्हीं लेखक-लेखिकाओं के रूप में साहित्य जगत का सम्मान बढ़ा रहे हैं। ऐसी मेरी मान्यता है।

आज की कहानी गोष्ठी में पढ़ी गयी कहानियों के विषय में मैडम रीटा जितेन्द्र जी बोलेंगी। मैं कहानियों की समालोचना नहीं करता। मुझे कहानियां पसंद आईं। प्रयास अच्छा लगा उस लड़की का, रजनी का जिसने कहानी पढ़ी। उसका प्रयास श्लाघ्य प्रयास है। प्रो० रत्न लाल शांत और गौरी शंकर जी से मैं कहता हूँ कि अजब सी बात है कि इन दोनों विषयों पर मैंने वर्षों पहले कहानियां लिखी हुई हैं। तरीका अलग है लेकिन समस्याएं वहीं है। मुझे बैठे हुए अच्छा लग रहा था। आपने अच्छी कहानियां बुनी हैं। शैली जी की जो कहानी थी उसमें मुझे थोड़ी, आकर्षक लग रहा था। प्रो० किरण बख्शी की कहानी भी बहुत सधी हुई कहानी थी। यह कई वर्षो से लिख रही हैं। मैं इन्हें कई वर्षों से कह रहा हूँ कि पुस्तक प्रकाशित करवाएं। लेकिन मैडम का आज तक कोई संग्रह नहीं आया है। Over due हो गया है। जब हम हिन्दी की सेवा कर रहे हैं तो हमारा दायित्व बनता है कि पुस्तक छपवाएं। इन्ही शब्दों के साथ में अपना संभाषण समाप्त करता हूं। धन्यवाद!

*

अध्यक्षीय वक्तव्य

प्रो० रीटा जितेन्द्र :-

संजना जी ने बहुत अच्छी बातें की हैं मैं कुछ खास कह न सकूंगी। मैं कहानी के विषय में यह कहना चाहती हूं जैसे अभी यह नाम ले रहे थे गोस्वामी जी। कहानी तो दो लफ्जों की भी होती है और यह कहानियां नानियां, दादियां भी सुनाती थी। 'मां कह एक कहानी, बेटा समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी।' मेरी नानी ने जितनी कहानियां मुझे सुनाई जब मैं उनके पांवों को दबाती थी। उन पर आधारित मेरे कई प्ले हुए। हम इंसान जो हैं सब एक जैसे हैं। यहां मंटो की भी बात हो रही थी। मंटो से जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा था 'भाई तुम इतना अश्लील क्यों लिखते हो ? ऐसी बातें क्यों करते हो'। उसने कहा मैं तो समाज की अक्कासी करता हूँ। मुझे अच्छा समाज दे दो मैं अच्छा लिख दूंगा। उसने साफगोई से काम लिया था। जो उसने देखा था वही तो लिखता था। कहानी यहां तक मैं समझती हूँ जैसे पिस्तोल से आप गोली मारते हैं न, वो चाहें कितनी दूर भी निशाने पर जाती है, लेकिन जाती तो सीधी ही है और फिर लक्ष्य पे पहुंचती है। कई बार शर्रे इधर उधर हो जाते हैं, और जब तक लास्ट शर्रा वहां तक पहुंचता है तो वह इतना इफैक्टिव नहीं रहता। हमारे अंदर कभी-कभी यह लालच आ जाता है कि चलो यह भी डाल लेते हैं, चलो यह भी डाल लेते हैं। इससे कहानी कमज़ोर होती है। नाक की सीध में जाने से बहुत अच्छी रहती है shorestest story of the world। कहते हैं न-क्या आपको भूतों में विश्वास है और सामने वाला गायब हो गया। अब इसमें सब Element हैं, स्टोरी भी है, कैरेक्टर भी है, संवाद भी है, वातावरण है। एक लाइन में सब कुछ है और लांग शार्ट स्टोरीस भी होती है जो नाबलेट और उसके बीच की होती हैं। कहानियों की जब बात करते हैं तो इन्होंने नाम लिया प्रेमचंद का तो मेरी दुखती रग क्या सुखती रग पे हाथ रख दिया। मैंने उस पे बहुत काम किया हुआ है। मैं समझती हूँ शाश्वत है। वो बात और है कि उनकी बात हमें पचास साल बाद पता चलेंगी। लेकिन चलेगी। प्रेमचंद वो है जो मनमोहन सिंह की सरकार में भी था और जो नरेन्द्र मोदी की सरकार में भी है। वह शाश्वत है। पिछले दिनों इंतजार हुसैन आए हुए थे पाकिस्तान से मैंने उनकी इंट्रव्यु सुनी वो कहते मैंने सारी दुनिया की Short Stories का अध्ययन किया है और मैं इस नतीजे पर पहुंचा था कि 'कफन' सारे World की Best कहानी है। अब मैं दुबारा आया हूँ और मैंने दुबारा से फिर Revise की सब कहानियां और अब में इस निश्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि 'पूस की रात' बैस्ट

है यानि प्रेमचंद थे घेरे से बाहर नहीं गए इंतजार हुसैन भी। 'पूस की रात' अगर आप किसान की बात करते हैं तो क्या आज किसान मर नहीं रहे हैं। सब कुछ वही है।

एक जो उस बच्ची ने पढ़ी है कहानी। कहानी अच्छी थी लेकिन उसमें कथोपकथन ज्यादा थे। कथोपकथन केवल कथोपकथन के लिए नहीं होने चाहिए। कथानक को बढ़ाने वाले होने चाहिये। कहानी में कहानी होनी चाहिये। Narrative मुझे उसमें थोड़ा Missing लगा। नाटककार के मुकाबले कहानीकार को काफी छुट्टी होती है कि वो बीच में आता जाता है। हम जो नाटक लिखते थे तो हमें जो कुछ कहना है पात्रों के माध्यम से कहना है। संवाद भी आए लेकिन Narrative आने चाहिये।

आशा शैली जी की कहानी ''पवित्र-अपवित्र'' उन्होंने बहुत अच्छा Title दिया था। लिखा भी वैसे ही था। लेकिन यह बातें बहुत हो चुकी हैं। मुझे लगा कि उसमें अभी भी कुछ थोड़ी सी इम्प्रूवमेंट की जरूरत है।

किरण जी की कहानी में वातावरण बहुत अच्छा हैं और जो वहां का इन्होंने जो स्टडी किया हुआ है बहुत अच्छा है। मैं इन्हें एक और Suggestion देना चाहूँगी। वो Belong करती हैं पुंछ से, अगर उसको ले के लिखें तो जी हुई कहानी होती है। जो आपने लिखा स्टडी करके लिखा। बहुत अच्छा लिखा। लेकिन जो भोगा हुआ यथार्थ होता है वो अलग ही Charm रखता है।

शांत जी की कहानी में कुछ शब्द आए हैं जैसे- ''कब मरे ?'', ''आज रात''। आज शब्द नहीं आता है उसमें रात। आज, आज जो आने वाली वो रात होती है। हो सकता है वो कैरेक्टर को इतना पता न हो वो बोलते। लेकिन हम अकसर कहते हैं न आज रात को बड़ी गर्मी लगी। वो रात को गर्मी लगती है। आज तो अभी आना है। मुझे ऐसा लगा। दूसरी जगह आपने लिखा-'मुर्दा लेटा हुआ था।' मुर्दा थोड़े लेटता हैं। आदमी लेटते हैं शव तो पड़ा हुआ होता है। एक ओर Suggestion देना चाहूंगी कि इस टाइटल Post Mortom ही सही है। उससे बहुत कुछ Convey होता है। जैसा मुझे लगा। आपकी कहानी की सबसे अच्छी बात यह लगी कि आप अपने व्यंग्य के सामर्थ्य से उस Situation पे लोगों को हंसने पे मजबूर कर रहे थे। श्रोता सोचने पे मजबूर हो जाते हैं कि ऐसा भी होता है। ऐसे लोग भी होते हैं। आपने अपनी बात बड़ी सशक्त व्यंग्य शैली में कही। और आपकी Presentation भी बहुत अच्छी थी। आप सब का बहुत-बहुत शुक्रिया।

*

धन्यवाद प्रस्ताव

अरविंदर सिंह 'अमन'

कल तकरीबन 10 बजे इस दो रोजा कान्फ्रेंस का उद्घाटन हुआ था। माननीय डॉ० पवन कोतवाल जी, प्रो० वेद कुमारी घई जी और श्री नरेन्द्र मोहन जी ने अपने वक्तव्यों में इस कान्फ्रेंस के बारे में जो भविष्यवाणियां की थीं आज इस वक्त जब यह कान्फ्रेंस अपने आखरी मरहलों को छू रही है क्योंकि अंतिम सत्र का अध्यक्षीय भाषण हो चुका है। रस्मी तौर पर आप सबका आभार व्यक्त करने के लिए मैं यहां पर आया हूँ। जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेज़िज तैह् दिल से आप सबकी शुक्रगुजार है। उन सभी साहित्यकारों विद्वानों का बहुत बहुत धन्यवाद जिन्होंने उद्घाटन सत्र से लेकर अब तक इस कान्फ्रेंस को कामयाब बनाने में भरपूर साथ दिया। जिसमें पत्र वाचक हैं, कवि हैं, कहानीकार हैं, अध्यक्ष मंडल में बैठने वाले विद्वान हैं और आप सभी विद्वान साथियों का बहुत-बहुत आभार। इस कान्फ्रेंस में हमसे कुछ गलतियां भी हुई होंगी। इतनी देर रात का बैठना सुबह 10 बजे से लेकर शाम सात आठ बजे तक हो सकता है। हम आपका उस तरह से ख्याल न रख पाए हों। मैं अपनी ओर से और अपने Collegues की ओर से माफी चाहता हूँ।

इस सत्र में अध्यक्ष मंडल में बैठे हुए संजना कौल जी, डॉ० ओम गोस्वामी जी, प्रो० रीटा जितेन्द्र जी का और हाल में बैठे हुए सभी विद्वानों का बहुत बहुत आभार।

इस कान्फ्रेंस के सफलतापूर्वक समापन पर आप सभी को बहुत-बहुत मुबारकवाद एवं हार्दिक धन्यवाद।

*

28 मई, 2016

अंतिम सत्र : हिन्दी कहानी रंगमंच

मंचित कहानियां : रावी पार, आदाब, खौफ, विरसा,

कविताओं के नरेटर : बलविंद्र सिंह

कलाकारों के नाम : श्री मदन रंगीला, श्रीमती गुरमीत जम्वाल, श्री विजय गोस्वामी, प्रदीप शर्मा, सीमा भट्टी, आर्यवीर सिंह 'जिन्द्राहिया', नीरज मंगोत्रा

संचालन एवं निर्देशन : भूपेन्द्र जम्वाल

धन्यवाद : डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'

संगीत : सुरेन्द्र मन्हास, भूपिन्द्र सिंह

लाइट : श्री पंकज शर्मा

साऊंड : लोकेश चन्द्र, दिनेश डोगरा, मनोज भट्ट।

सत्र की रिपोर्टिंग : यशपाल निर्मल

कहानी रंगमंच
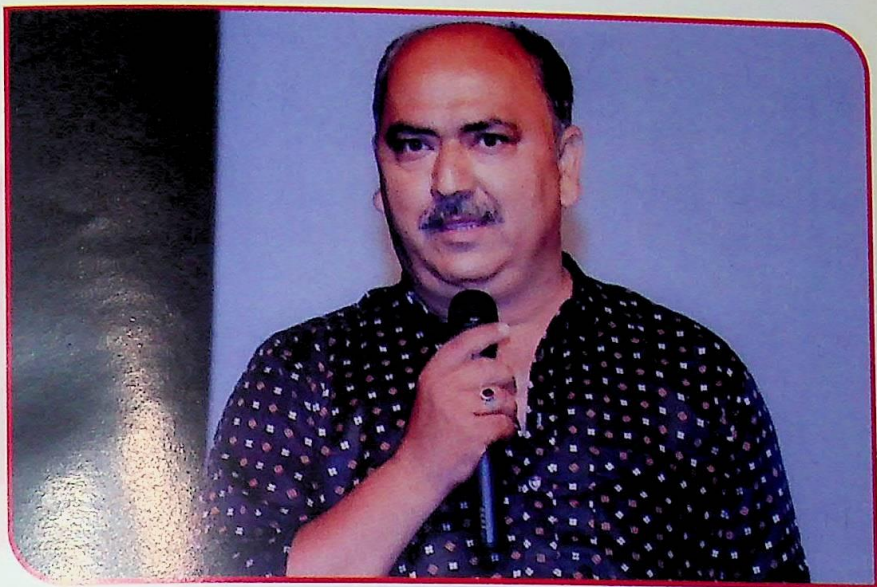
निर्देशक भूपिन्द्र जम्वाल
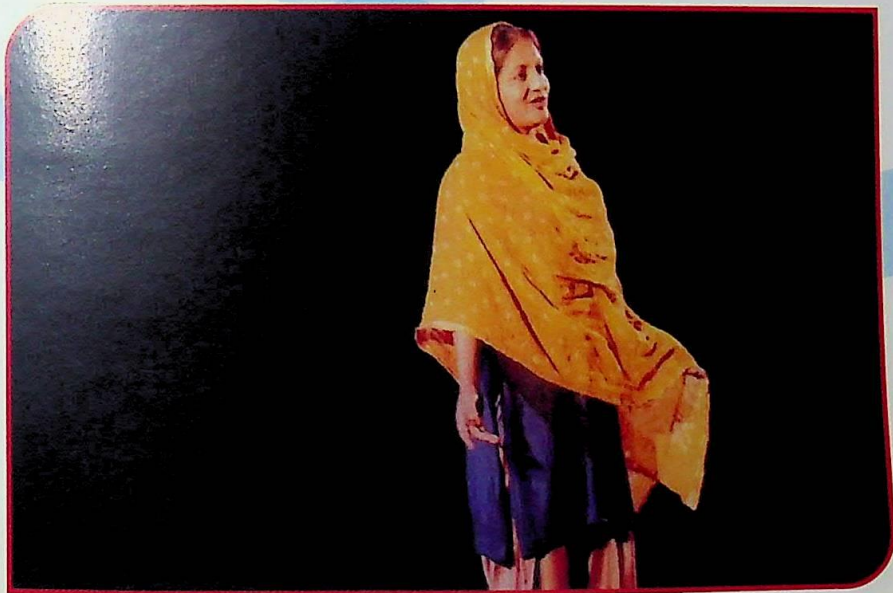
अभिनय प्रतिभा का प्रदर्शन करती कलाकारा
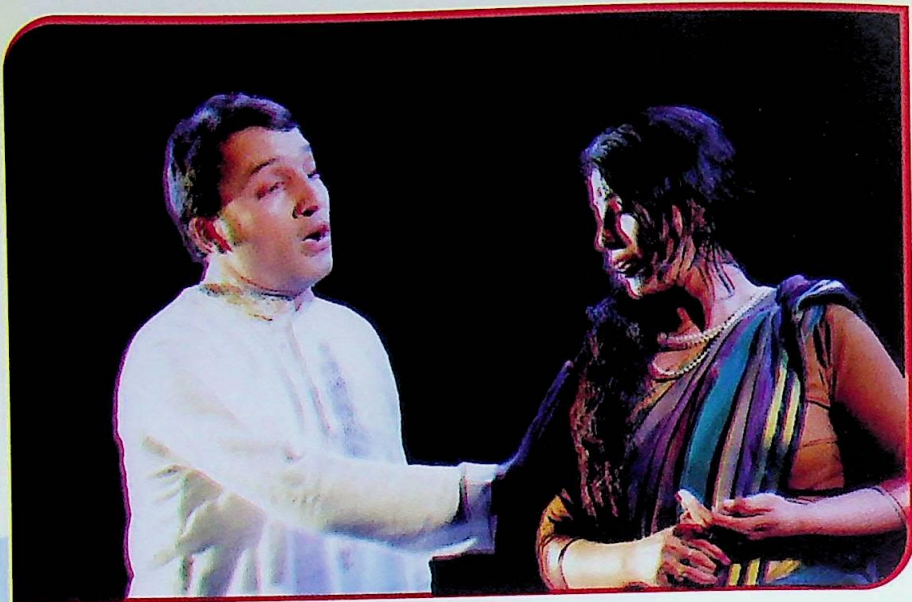
कहानी रंगमंच

अभिनय प्रतिभा का प्रदर्शन करते कलाकार
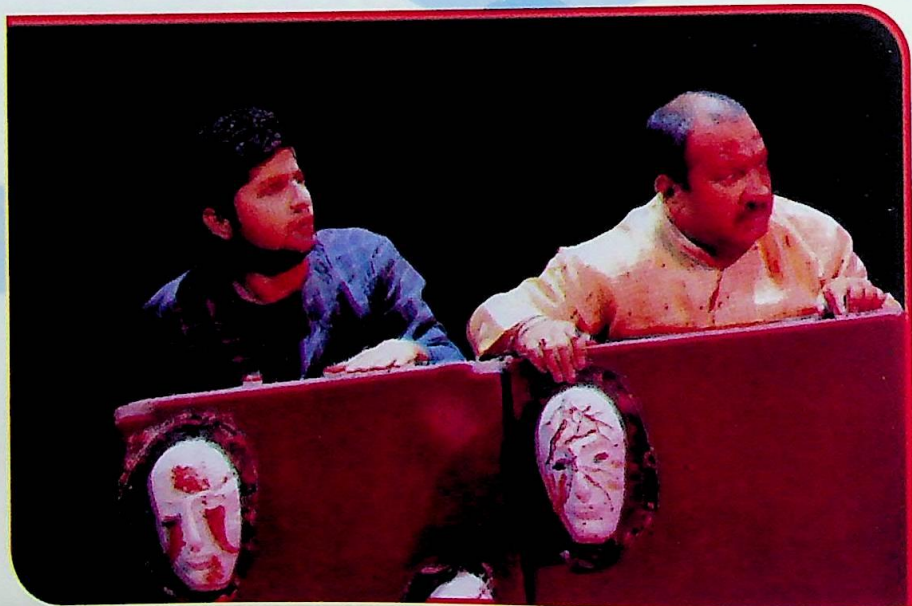
कहानी रंगमंच

कहानी रंगमंच के प्रतिभागी, सम्माननीय अतिथियों एवं अकैडमी परिवार के साथ

धन्यवाद प्रस्ताव : डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन' (अतिरिक्त सचिव)

धन्यवाद प्रस्ताव

❑ डॉ० अरविंदर सिंह 'अमन'

हिन्दी लेखक सम्मेलन का यह अंतिम सत्र था। मैं ज्यादा कुछ नहीं कहूंगा। मैं जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी की ओर से और इस हाल में बैठे हुए सभी अदीब दोस्तों की तरफ़ से इन सभी कलाकारों का शुक्रिया अदा करना चाहूंगा। जिन्होंने अपनी कला के जौहर से इस कान्फ्रैंस का समापन इतने खूबसूरत तरीके से किया कि यह यादगार बन गयी है और एक Historical Moment बन के रहेंगे इस कान्फ्रेंस के लिए। मैं इन सभी कलाकारों का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करता हूँ अकैडमी की ओर से। जैसा कि आप सभी जानते हैं इन सभी कलाकारों के बारे में। इनकी जिंदगी का एक इतिहास है, एक लम्बा इतिहास जो इन्होंने रंगमंच खासकर जम्मू के रंगमंच को दिया। आज जम्मू के रंगमंच की जो बात हुई, पर्चों में, जो भी जिक्र हुआ शायद ही कोई ऐसा जिक्र होगा जो इनकी Performance जां भागीदारी के बिना हुआ होगा। इसलिये यह हमारे लिए बहुत माननीय है। अकैडमी इनका आभार व्यक्त करती है। मैं अपने साथी भूपिन्द्र जी को भी मुबारक देना चाहूंगा और धन्यवाद करना चाहूंगा कि इतने कम समय में इन्होंने इतना खूबसूरत नाटक तैयार किया। आप सभी साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों का बहुत-बहुत धन्यवाद।

जम्मू-कश्मीर

कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी, जम्मू

द्वारा

"वर्तमान युग और हिन्दी साहित्य"

दो दिवसीय अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन

का आयोजन

अभिनव थियेटर में 27-28 मई 2016 को किया जा रहा है।

जिसका उद्‌घाटन **मुख्य अतिथि**

डॉ० पवन कोतवाल, आई.ए.एस

मण्डल आयुक्त, जम्मू

27 मई 2016 को प्रात: 9: 30 बजे करेंगे

आप सादर आमंत्रित हैं।

दूरभाष
0191-2577643
0191-2579576

अज़ीज़ हाजनी
सचिव

कार्यक्रम

27 मई , 2016

उद्घाटन सत्र	–	9: 30 बजे
1. दीप प्रज्वलन	–	9: 35 बजे
2. स्वागत भाषण : सचिव, अकैडमी	:	9: 40 बजे
3. विषय प्रवर्तक : डॉ. नरेन्द्र मोहन	:	9: 50 बजे
4. मुख्य अतिथि वक्तव्य : डॉ. पवन कोतवाल	:	10: 20 बजे
5. अध्यक्षीय वक्तव्य : प्रो. वेद कुमारी घई	:	10: 40 बजे
6. धन्यवाद प्रस्ताव : अतिरिक्त सचिव		

जलपान

पत्रवाचन सत्र : 11: 30 बजे

अध्यक्ष मंडल : डॉ. चंचल डोगरा, गौरी शंकर रैणा, प्रो. परमेश्वरी शर्मा

1. जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता और युवा कवि : कमलजीत चौधरी
2. राष्ट्र भाषा हिन्दी : समस्यायें एवं समाधान : डॉ. रजनी बाला
3. हिन्दी साहित्य और ई-पाठक : डॉ. सतीश विमल

भोजनावकाश : 1:30 बजे

द्वितीय सत्र : कवि गोष्ठी : 2:00 बजे

अध्यक्ष मंडल : संगीता गुप्ता (प्रिंसिपल कमिश्नर इंकम टैक्स विभाग), डॉ. अग्निशेखर, आशा शैली, माधव कौशिक

द्वितीय दिवस 28 मई 2016

1. प्रथम सत्र :पत्रवाचन : 9:00 बजे

अध्यक्ष मंडल : डॉ. पी.एन.त्रिछ्ल, प्रो. शिव निर्मोही , प्रो. परविंदर कौर

1. मुख्यधारा में प्रादेशिक हिन्दी कहानी : योगिता यादव
2. हिन्दी साहित्य और अनुवाद : प्रो. राज कुमार

जलपान : 11:00 बजे

2. द्वितीय सत्र : पत्रवाचन : 11:30 बजे

अध्यक्ष मंडल : प्रो. रत्न लाल शांत, डॉ. निर्मल विनोद, डॉ. सतीश विमल

1. हिन्दी बाल साहित्य संभावनायें एवं महत्व : पवन चौहान :
2. जम्मू-कश्मीर का हिन्दी रंगमंच : वंदना ठाकुर :

भोजनावकाश : 1:00 बजे

3. तृतीय सत्र : कहानी गोष्ठी : 1:30 बजे

अध्यक्ष मंडल : प्रो. रीटा जितेंद्र, डॉ. संजना कौल, डॉ. ओम गोस्वामी

कहानीकार : प्रो. रत्न लाल शांत, प्रो. किरण बक्शी,
आशा शैली, गौरीशंकर रैणा, रजनी कुमारी

जलपान : 4:00 बजे

4. अंतिम सत्र : हिन्दी कहानी रंगमंच : 4:30 बजे

प्रस्तुति : जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी, जम्मू
(निर्देशन: भूपेन्द्र जम्वाल)